देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

9 772395 711007

Impact Factor
7.523

ISSN : 2395-7115
February 2023
Vol.-17, Issue-2

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. बिन्दु भसीन

सह सम्पादक :
डॉ. अशोक कुमार व्यास, डॉ. मुदिता पोपली

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 17 ISSUE- 2 (फरवरी 2023) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादक :

डॉ. बिन्दु भसीन

बीकानेर, राजस्थान।

सह–सम्पादक :

डॉ. अशोक कुमार व्यास, डॉ. मुदिता पोपली

बीकानेर, राजस्थान।

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

फरवरी 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. बिन्दु भसीन	9-9
2.	श्रीतुलसी-महाकाव्यम् में राजस्थान के नगरों का वर्णन	डॉ. श्यामा अग्रवाल	10-14
3.	राजस्थान में महिला मानवाधिकार की स्थिति	डॉ. मैना निर्वाण	15-19
4.	मारवाड़ शासक मालदेव का स्थापत्य कला के प्रति रूझान	डॉ. बिन्दु भसीन	20-24
5.	SANITATION MANAGEMENT IN LATE NINETEENTH AND EARLY TWENTIETH CENTURY BIKANER CITY	Dr. VINOD SINGH	25-29
6.	19वीं सदी में राजस्थान का सामाजिक ढांचा राजस्थान का परंपरागत सामाजिक ढांचा	डॉ. मंजू वर्मा	30-34
7.	बीकानेर में गैर सरकारी संगठनों की गतिविधियां	डॉ अशोक कुमार व्यास	35-40
8.	भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बीकानेर के पुष्करणा ब्राह्मणों का योगदान	डॉ. मुकेश हर्ष	41-47
9.	राजस्थान में पर्यटन का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव	डॉ. अनिशा यादव	48-52
10.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति	डॉ. योगेश कुमार यादव	53-57
11.	लोक कथा : राजस्थानी साहित्य संपदा	डॉ. लालसिंह पुरोहित	58-61
12.	राजस्थान में स्टार्ट-अप की रूपरेखा चुनौतिया एवं सुझाव	डॉ. मधुसूदन प्रधान	62-66
13.	सतत विकास एवं लक्ष्यों के प्रति राजस्थान की प्रतिबद्धता	डॉ. ललित कुमार पुरोहित	67-71
14.	रेबारी समाज की सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिम्ब - वेशभूषा एवं अलंकरण	डॉ. श्रुति अग्रवाल	72-80
15.	Translation of Vijay Dan Detha's Rajasthani Stories : An Overview	Dr. Sudhir Kumar	81-88
16.	शेखावाटी का सीकर ठिकाना प्राचीनता से नवीनता की ओर	डॉ. पूनम शर्मा	89-93
17.	भारत का दृश्यमान संगीत	रश्मि आर्य	94-96
18.	भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णिम इतिहास	डॉ. राकेश कुमार किराड़ू	97-101
19.	राजस्थान में पशुधन एवं डेयरी विकास का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. वेदप्रकाश	102-112
20.	राजस्थान में उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण पद्धति का मूल्यांकन	डॉ. सुमन जोशी	113-115

21.	MICROWAVE ASSISTED SYNTHESIS AND MEDICINAL EVOLUTION OF Pr (III) COMPLEXES WITH QUINOLINE DERIVATIVE LIGANDS	NARESH KUMAR HARSH, N. BHOJAK	116-121
22.	आधुनिक समाज में जनसंचार माध्यमों के प्रभाव का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	सीमा बिस्सा, डॉ. आर.के. सक्सेना	122-126
23.	Internet of Things (IoT) and Security Along with Private Privacy	Mr. Ram Kumar Vyas	127-130
24.	Legal Aspects of Environmental Protection Act.	Mr. Narendra Sharma	131-135
25.	अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में सांस्कृतिक वैविध्य	भूपेन्द्र कुमार सिंह, डा० निर्मला जोशी	136-140
26.	समय के साथ बदलती पत्रकारिता	डॉ. अशोक कुमार मीणा	141-144
27.	विकासशील एवं प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का देश भारत	डॉ. महेन्द्र कुमार खारड़िया	145-151

सम्पादक की कलम से.......

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के उन्नयन में राजस्थान अपना अलहदा स्थान रखता है। राजस्थान का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक योगदान स्वयं में अनुपम है। राजस्थान की धरती के कण–कण में लोक कलाओं, संस्कृति और परंपराओं का जो रूप देखने को मिलता है, वैसा कहीं नहीं मिलता।

इस रिसर्च जर्नल को राजस्थान के विशेष संदर्भ में भी रेखांकित किया गया है। इसी रूप में बोहल शोध मंजूषा का यह अंक आपके हाथों में हैं। इस अंक में संकलित शोध आलेख विभिन्न विषयों से संबंधित हैं। ये सभी आलेख विभिन्न शोधार्थियों और अपने विषय के निष्णात विशेषज्ञों द्वारा लिखे गए हैं। इन सभी विचारों को आकलन के पश्चात् ही जर्नल में प्रकाशित किया गया है। इस जर्नल में प्रकाशित सभी आलेखों के लेखन मुद्रण एवं संपादन की दृष्टि से त्रुटि रहित करने का मेरा प्रयास रहा हैं। इसके साथ ही ये जर्नल आने वाले शोधार्थियों को दशा एवं दिशा प्रदान करने का कार्य करेगा, इसका अथक प्रयास भी किया गया हैं। इसके साथ ही मैं इस के संपादकत्व में साथ देने के लिए सह संपादकों की भी आभारी हूं जिन्होंने इस अंक को ये रूप प्रदान कराने में महत्ती भूमिका का निर्वहन किया है।

–**डॉ. बिन्दु भसीन,** प्रधान सम्पादक

सह सम्पादक की कलम से.......

साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता हैं। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करने तथा लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता हैं। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा–बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है।

समाज और साहित्य का संबंध अटूट है साहित्य की विभिन्न विधाओं में शोध मानव ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भंडार को विकसित एवं परिमार्जित करता है। इस बोहल शोध मंजूषा में विभिन्न विषयों पर शोधार्थियों द्वारा की जा रही शोध को स्थान दिया गया है जो कि किसी न किसी रूप में मानव मात्र के लिए उपयोगी है।

बोहल शोध मंजूषा के वर्तमान अंक के लिए हमें बड़ी संख्या में आलेख प्राप्त हुए थे जो शोधार्थियों की सृजनशीलता एवं शोध परकता को रेखांकित करती हैं, यद्यपि स्थानाभाव के कारण सभी रचनाओं को इस अंक शामिल करना संभव नहीं हुआ तथापि हमने अधिकाधिक रचनाओं को इस अंक में शामिल करने का प्रयास किया है। सभी रचनाकारों के सहयोग के बिना पत्रिका प्रकाशन का यह कार्य संभव नहीं था। आशा है भविष्य में इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा। हम कुशल मार्गदर्शन के सभी शिक्षाविदों को धन्यवाद अर्पित करते है।

–**डॉ. मुदिता पोपली**, सह सम्पादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 10-14

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रीतुलसी-महाकाव्यम् में राजस्थान के नगरों का वर्णन

डॉ. श्यामा अग्रवाल

सह आचार्य (संस्कृत), राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.) 334001

संस्कृत साहित्य की एक महनीय विधा है– महाकाव्य। राजस्थान प्रदेश का एक अति प्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य है– श्रीतुलसी–महाकाव्यम्। इसके रचयिता है– आशुकवि पं. रघुनन्दन शर्मा। इस महाकाव्य में राजस्थान की संस्कृति व सभ्यता का यत्र–तत्र वर्णन प्राप्त होता है। इन्हीं के प्रसंग में कवि ने राजस्थान प्रान्त के अनेक नगरों का विशद वर्णन किया है।

श्री तुलसी–महाकाव्यम् में यथास्थान विविध नगरों का रुचिर वर्णन प्राप्त होता है। चरित नायक आचार्य तुलसी जैन मुनि होने के नाते निरन्तर विहार करते रहते थे। उनके विहार के प्रसंग में ही कवि ने विभिन्न नगरों का वर्णन किया है। कुछ नगरों व ग्रामों का मात्र नाम–निर्देश मिलता है कि श्री तुलसी वहाँ–वहाँ गये परन्तु उन स्थानों की विशेषताओं का विवेचन प्राप्त नहीं होता। महाकाव्य के प्रारम्भ में प्रथम सर्ग में ही लेखक ने लाडनूं नामक नगरी की चर्चा की है जो कि तुलसी की जन्म भूमि है।

तस्या विभागैकमरुस्थलीस्था,
या लाडनूं नाम पुरी चकास्ति ।। 1/18।।

राजस्थान के एक भाग में अवस्थित मारवाड़ के अन्तर्गत लाडनूं नामक एक सुन्दर नगरी है। इस नगरी की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्वच्छ और सुवासित वस्त्र धारण करने वाले, मधुर बोलने वाले, हँसमुख, प्रसन्न, सुशिक्षित, सम्पत्तिशाली अनेक श्रेष्ठ वैश्य निवास करते हैं–

स्वच्छं सगन्धं वसनं वसानैः,
प्रियंवदैः स्मेरमुखैः प्रसन्नैः।
विद्यावतां वित्तवत्तां व वर्य्यै–
र्य्यैनेकैः प्रणिवास्यमाना।। 1/16।।

तत्पश्चात् इस नगरी में रहने वाले ओसवालों का विशद वर्णन किया गया है।

मरुभूषण बीकानेर नगर का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यहाँ बुद्धिमान् नरेन्द्र श्री गंगासिंह जी द्वारा निर्जल भूमि में भी गली–गली में जल धारा बहाई गई–

गंगादिसिंहेन नरेश्वरेण,
सुधीमता भुव्यपि निर्जलायाम्।

रथ्यासु रथ्यास्वपि वाह्यमानां,

ददर्श धारां सलिलस्य तत्र ।। 14/30।।

बीकानेर में अनेक प्रकार की चित्रकारी से सुसज्जित गगन चुम्बी अट्टालिकाएँ हैं–

अट्टालिकाभ्यो वियति स्थिताभ्य–

श्चित्रैरनेकै–र्बहुभूषिताभ्यः।। 14/31।।

बीकानेर की ये सुप्रसिद्ध अट्टालिकाएँ आज विश्व–विख्यात हैं। इनमें पत्थरों पर की गई बारीक खुदाई की चित्रकारी देखने देशी–विदेशी पर्यटक यहाँ निरन्तर आते रहते हैं। रामपुरियों की हेवली इनमें प्रमुख है। कवि ने इन्हीं की ओर संकेत किया है।

बीकानेर के समीप में भक्तिरत गंगाशहर, भीनासर नामक शहर स्थित हैं। इनके बारे में लेखक का मत है कि यद्यपि ये तीनों (बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर) नाम से भिन्न–भिन्न हैं परन्तु सब बातों में एक जैसे हैं, जैसे पूजनीय ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम से पृथक्–पृथक् होते हुए भी वस्तुतः एक ही हैं। ये तीनों शहर साधु–चर्या–निर्वहण के लिए अनुकूल हैं–

विभिन्नसंज्ञा पि पुरत्रयीय–

मेकैव सर्वस्थितिभिः स्वकाभिः।

मूर्त्तित्रयीवार्च्य–विधातृविष्णु–

महेशरूपा श्रमणानुरूपा।। 20/12।।

सत्रहवें सर्ग में राजस्थान की राजधानी जयपुर का अतीव रुचिर वर्णन है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि गुलाबी नगरी जयपुर को नगरों की पटरानी कहा जाता है। कवि जयपुर के प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत होकर कहते हैं कि जहाँ बाँसों के छिद्रों में प्रवेश कर वायु मधुर वंशी बजा रहा है, जिनकी शाखाएँ वायु का संसर्ग पा संक्षुब्ध चलायमान है, ऐसे वृक्ष रूपी विट–नट जहाँ नृत्य करने में लगे हैं, स्वयं विकसित, सुरभित पुष्पों के बहाने जो मन्द हास्य कर रहे हैं–नन्दन वन के तुल्य ऐसे पृथक्–पृथक् उद्यान जिस नगर में हैं–

प्रविश्यान्तर्वंशं मरुति वरवंशीं निनदति,

विसंक्षुभ्यच्छाखै–र्विटविटपिभिर्नृत्यनिरतैः।

मनोनीतैः शुद्धैः सुरभितसुमैर्मन्दहसितैः,

विविक्तैरुद्यानैः सततसदृशैर्नन्दनवनैः।। 17/4।।

प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न होने के साथ ही जयपुर स्थापत्य कला में भी बेजोड़ है। वहाँ की स्थापत्य कला की प्रशंसा कवि मुक्त कण्ठ से करते हैं–

चमत्कृत्यैः काचैर्विरचितकुटीकुट्टिमतलै–

विचित्रैर्वा चित्रैः खचितलषितैरट्टविकटैः।

वरद्वारालिन्दैर्वितत–बहुवातायनयुतैः,

स्पृशद्भिर्देवौको विविधभवनैर्निर्मितसमैः।।

ज्वलद्विद्युद्दीपैरभिगतसमीपैः सितविभैः,
संमाक्रान्ता नल्पप्रथित–चतुरङ्गापणपथैः।
निषिक्तैः पानीयैरनवरतधौतैरकुटिलै–
र्मिथो रथ्यासार्थैः सविधि मिलितैर्दूरतरगैः।।
समेते व्यापारप्रथमसदने भूरिविभवे,
महाविद्यागारे विविधविबुधैरर्पितपदे।
नृपाणां जातानां विनिहितशिरः कीर्तिकलशे,
समायादाचार्यो जयपुरपुरे पूज्यतुलसीः।। 17/5–7।।

अर्थात् जहाँ के भवन बनावट में एक जैसे हैं, जिनके कमरों का आँगन चमकते हुए काँच का बना है, जिनकी भित्तियाँ विचित्र एवं सुसज्जित चित्रों से शोभित हैं, जिनके द्वार और देहलियाँ सुघड़ रूप में बने हैं, जिनमें बड़े–बड़े गवाक्ष–झरोखे हैं, जो आकाश को मानो छू रहे हैं। जिसमें एक दूसरे के आस–पास उज्ज्वल ज्योति वाले बिजली के दीपक (बल्ब) लगे हैं, जिसके बाजारों में लम्बे–चौड़े चौराहों वाले मार्ग बने हैं, अनवरत छिड़के जाते पानी से जो मार्ग धोये जाते हैं, जो बिल्कुल सीधे हैं, दूर–दूर पर उपयुक्त रूप में जो गलियों से मिलते जाते हैं। जो व्यापार का मुख्य केन्द्र है, अत्यन्त वैभवमय है, जो विद्या का महान् समुद्र है, जहाँ अनेक विद्वान् निवास करते हैं, जिसके अतीत कालीन राजाओं के मस्तक पर यश का कलश रखा है– ऐसा है जयपुर नगर।

इस प्रकार कवि ने जयपुर नगर जो राजस्थान का शिरमौर है, का विस्तृत वर्णन किया है। शिखरिणी छन्द में रचित यह नगर वर्णन पाठक के मन को झंकृत कर देता है। प्रकृति के मानवीकरण को द्विगुणित सौंदर्य प्रदान करती अनुप्रास की छटा अतीव रोचकता उत्पन्न करती है। भवन, मार्ग आदि का सचित्र वर्णन सा आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

जयपुर नगर के समीप ही वनस्थली नामक कन्या विद्यापीठ है, जिसके अत्यन्त विशाल विद्यालयों में कन्याओं का नवीन शिक्षण विधि के अनुरूप निर्बाध शिक्षण चलता रहता है–

नवीनो नारीणां भवति विविधः शिक्षणविधि–
र्निराबाधं यस्या बहुविततविद्यालयगतः।
वनस्थल्यां तस्यामविशत ततो भैक्षवगणी,
न हीना यद्दृष्टिर्लषति पुरुषार्धे पि वपुषि।। 17/36।।

जयपुर के अतिरिक्त कवि ने सरदारशहर, रतनगढ़, छापर, सीकर आदि शहरों का यथास्थान वर्णन किया है। यद्यपि धार्मिक यात्रा के सन्दर्भ में यत्र–तत्र अनेक ग्रामों व नगरों का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु विशिष्ट वर्णन न होने के कारण उन सबकी चर्चा यहाँ नहीं की जा रही है, केवल कुछ नगरों का वर्णन ही यहाँ किया जा रहा है यथा–सरदारशहर। सरदारशहर धनी व्यक्तियों का नगर है। धन लक्ष्मी सरदारशहर में निवास करती है, उसके निवास का एक रोचक कारण कवि ने बताया है कि विष्णुप्रिया–लक्ष्मी समुद्र में सोने के कारण मानो जल से कुछ उन्मनी हो गई और जल रहित देशों की आकांक्षा करने लगी। ऐसा प्रतीत होता है–इसी कारण

मानो वह अपने पति विष्णु की उपेक्षा कर, जिसकी चरण–धूलि में स्वतंत्रतापूर्वक शयन करती है, वह है सरदारशहर नामक नगर–

उन्मानसा सलिलतो जलधौ शयित्वा,
देशाञ्जलेन रहितानभिकांक्षमाणा।
विष्णुप्रिया स्वपतिविष्णुमुपेक्ष्य यस्य,
पादोत्थपांसुषु सदा स्वपिति स्वतन्त्रा।। 15/2।।

सरदारशहर में लक्ष्मी नित्य निवास करने लगी, इसका एक और कारण कवि की दृष्टि में देखिए–

शैलैरसंख्यैः स्थपुटैरगम्यै–
र्दुर्गैः परैर्बालुमयैर्विचित्रैः।
वृक्षैर्महा कण्टकिभिर्बदर्याः।
घासैरशेषैः परदेशदक्षैः।।
आगृह्यमाणा कमला वराकी,
परत्र गन्तुं विवशा भवन्ती।
यत्रैव वासं वितनोति नित्य–
मुपास्यमाना धनिकैरनेकैः।। 16/9–10।।

अर्थात् बालू के बने असंख्य विचित्र ऊँचे–नीचे अगम्य पर्वतरूप दुर्गों, झाड़ी के अत्यन्त कँटीले वृक्षों, दूसरों को डसने में निपुण घास इनसे आगृहीत होने पर पकड़े जाने पर लक्ष्मी बेचारी अन्यत्र न जाने के लिए विवश हो गई अतएव सरदारशहर के धनिकों द्वारा उपासित होकर नित्य निवास करने लगी।

इस प्रकार ओसवालों की घनी आबादी वाला सरदारशहर कवि के मत में एक ऐसा नगर है, जहाँ धर्मोपासक धनिकों का बाहुल्य है। राजस्थान का ही रतनगढ़ एक ऐसा नगर है, जहाँ बालू के विशाल पर्वतों को चीरकर चारों ओर रेल की पटरियाँ बिछी हुई हैं, जो सबके आकर्षण का केन्द्र है, इस विशेषता की जानकारी पण्डित जी इस प्रकार देते हैं–

चतसृभ्यो पि यद्दिग्भ्यो,
ग्रस्तं रेलपथैरथ।
निर्मितैर्बहु विच्छिद्य,
विशालान्पांशु–पर्वतान्।। 15/39।।

शेखावाटी अंचल का छापर एक ऐसा शहर है, जहाँ विष्णु प्रिया लक्ष्मी, सरस्वती के गले में हाथ डाल स्वतन्त्रता से घूमती हैं अर्थात् जहाँ लक्ष्मी और सरस्वती दोनों आपसी दुराव भूल कर एक साथ निवास करती है–

विष्णुप्रिया यत्र गिरो गले पि,
निधाय हस्तं भ्रमति स्वतन्त्रा।

तत्राययौ छापरनामपुर्यां,
गणी चतुर्मासविधिं विधातुम्।। 16/1।।

मरुभूषण कंटालिया नामक गाँव का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यह गाँव तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु की जन्मभूमि है। इसकी धूलि में वे कण हैं जिन्होंने आचार्य भिक्षु जैसे व्यक्ति का निर्माण किया इसलिए तेरापन्थ धर्मावलम्बियों के लिए यह एक पवित्र स्थान है। क्योंकि इस गाँव ने भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म का शुद्ध मार्ग, जिसे स्वार्थी लोगों ने कण्टकित बना दिया था, का सम्मार्जन करने के लिए तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु को उत्पन्न किया–

श्रीवर्द्धमानोद्भव–शुद्धपद्धतिं,
प्रायः कृतां कण्टकितां जनाधमैः।
कण्टालिया मार्जयितुं नरोत्तमं,
प्रासोष्ट या तेरहपन्थनायकम्।। 25/3।।

इस प्रकार श्री तुलसी–महाकाव्यम् में राजस्थान के नगरों व ग्रामों का कवि ने यत्र–तत्र वर्णन किया है। मरुभूमि के वर्णन में कवि का मन अतीव रमता है कारणयह भूमि चरित नायक की जन्म भूमि है तो स्वयं कवि की कर्मभूमि।

मो. 8239842989
E-mail : ashyama2@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 15-19
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में महिला मानवाधिकार की स्थिति

डॉ. मैना निर्वाण
सह –आचार्या, राजनीति विज्ञान, राज. डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के आकलन का आधार यह है कि उसमें व्यक्ति को अपने बहुमुखी विकास के अवसर कहाँ तक प्राप्त होते है? व्यक्ति इन अवसरों का उपभोग अपने वास्तविक जीवन में किस स्तर तक कर पाता है? इस दृष्टि से मानवाधिकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाते है। आज विव के सभी राष्ट्र मानवाधिकारों को लागू करने की बात स्वीकारते हैं। लोकतांत्रिक राष्ट्रों में तो यह सत्ता की वैधता का सबसे बड़ा आधार है।

मानवाधिकार व भारतीय संविधान :–

मानवाधिकार वे अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते है। यह नैसर्गिक अधिकार है जो मानव को अपनी क्षमताओं को विकसित करने के लिए सर्वोत्तम भूमि और जलवायु उपलब्ध कराते है। इनमें धर्म, जाति, लिंग या सामाजिक व आर्थिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान तथा अभेद्य अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार है। सभी मनुष्य गरिमा और अधिकारों में स्वतंत्र और समान पैदा होते है। इस प्रकार मानव अधिकार मानवीय जीवन की ऐसी दशाएं है, जो महिला और पुरुष दोनों को समान रूप से जीवन जीने, स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और समान व्यवहार की प्राप्ति का अधिकार प्रदान करती है।

भारतीय संविधान महिला पुरुष के भेद के बिना सभी नागरिकों को अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 21, 23, 24, 25 से 28, 32, 39, 325 तथा 326 के तहत सभी को समान अधिकार व सुविधाएँ प्रदान करता है। संविधान नागरिकों में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं करता है, वरन् महिलाओं की विशेष सामाजिक व आर्थिक स्थिति को देखते हुए महिलाओं हेतु विशेष प्रावधान करता है। जैसे अनुच्छेद 40 के तहत 73 वें –74 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायत स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था, अनु. 42 द्वारा महिलाओं के लिए सवैतनिक प्रसूति अवकाश, अनु. 51 द्वारा महिलाओं की गरिमा व सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं के त्याग का निर्देश आदि।

महिलाएं व मानवाधिकार :–

संविधान प्रदत इन अधिकारों का उपभोग महिलाएँ वास्तव में कर सके, इस हेतु संविधान में अनेक अधिनियम बनाये गये है जिनकी एक लम्बी सूची है और यह सूची निरंतर लंबी होती जा रही है। फिर भी महिलाएं आज कहीं भी सुरक्षित नहीं है, न घर में और न बाहर। अब तो हम यह कहने की स्थिति में भी नहीं है कि महिला माँ के गर्भ में सुरक्षित है। 2011 में किये एक शोध के अनुसार भारत में पिछले 30 वर्षों में कम से कम 40 लाख बच्चियों की भ्रूण हत्या की गयी।यानि हर साल करीब 1–3 लाख बच्चियां गर्भ में मार दी गयी। अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

'द लैंसेट' में छपे इस शोध में दावा किया गया है कि ये अनुमान ज्यादा से ज्यादा 1 करोड़ 20 लाख भी हो सकते है। भ्रूण हत्या वाले राज्यों की सूची में राजस्थान भी शामिल है। लोक डाउन में जब जिंदगी पूरी तरह रुक गयी, राजस्थान में कन्या भ्रूण हत्या तब भी निरंतर जारी रही। हालात यह है कि पिछले पांच साल के आंकड़े देखते हैं तो 2020 और 2021 में कन्या भ्रूण हत्या और बच्चियों को लावारिस फेंकने के मामलों में वृद्धि हुई है। वर्ष 2018 में नवजात शिशु को फेंकने के 56 मामले सामने आये, जबकि कन्या भ्रूण हत्या के 124 मामले दर्ज किये गए। वर्ष 2019 में ये आंकड़े क्रमशः 84 व 151 मामले दर्ज किये गए। वर्ष 2020 में नवजात शिशु को फेंकने के 64 मामले सामने आये, जबकि कन्या भ्रूण हत्या के 151 मामले दर्ज किये गए। वर्ष 2021 में नवजात शिशु को फेंकने के 59 मामले सामने आये, जबकि कन्या भ्रूण हत्या के 124 मामले दर्ज किये गए। वर्ष 2022 जनवरी माह में नवजात शिशु को फेंकने का 1 मामला सामने आये, जबकि कन्या भ्रूण हत्या के 11 मामले दर्ज किये जा चुके हैं। यानि एक महिला के जन्म लेने व जीवित रहने का अधिकार भी इस समाज ने छीन लिया। जब उसे जीवित रहने का ही हक़ नहीं है तो अन्य अधिकारों की तो कल्पना करना ही व्यर्थ है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदात मूल अधिकारों में अनु. 21 द्वारा प्रदात प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार सबसे अहम अधिकार है। महिलाओं के सन्दर्भ में ये दोनों ही अधिकार दूर की कौड़ी बनते जा रहे है।द्य "महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुद्दा दुनियाँ भर के मानवाधिकारों के उल्लंघन के सबसे व्यापक रूपों में से एक है।" आज यौन हिंसा में जितनी महिलाओं की हत्याएँ हो रही है, पहले कभी नहीं हुई। संयुक्त राष्ट्र मादक पदार्थ एवं अपराध कार्यालय (UNODC) द्वारा जारी विश्वव्यापी रिपोर्ट होमोसाइड (जेंडर रिलेटेड किल्लिंग ऑफ़ विमेन एंड गर्ल्स) के अनुसार 2017 में दुनियाँभर में लगभग 87000 महिलाओं की जानबूझ हत्या कर दी गई। यानि ज्यों–ज्यों दवा का मर्ज बढ़ता गया। भारत में 2012 के निर्भया हत्याकांड के बाद तो स्थिति विस्फोटक हो गयी।

निर्भया हत्या कांड के बाद भारत में महिलाओ के खिलाफ होने वाले अपराधों की प्रक्रति में तीन बड़े बदलाव आए :–

1. निर्भया हत्या कांड के बाद भारत में बलात्कार के मामलों में भारी वृद्धि हुई।
2. इसके बाद बलात्कार की ज्यादात्तर शिकार महिलाएँ नाबालिग है। इनमें छः माह की अबोध बच्चियां तक शामिल है।
3. बलात्कार के बाद पीड़िता की हत्या या हत्या के प्रयास बढ़ गये।

राजस्थान में महिलाएँ व मानवाधिकार :–

राजस्थान में महिला मानवाधिकारों की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। महिलाओं के खिलाफ अपराध के आंकड़े निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की ओर से जारी किए गए आंकड़ों के मुताबिक, साल 2020 की तुलना में 2021 में महिलाओं के खिलाफ अपराध में 15–3 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। जहां साल 2020 में 3 लाख 71 हजार 503 मामले दर्ज हुए थे। वहीं, साल 2021 में 4 लाख 28 हजार 278 मामले दर्ज किए गए हैं। राजस्थान में स्थितियां और भी ख़राब है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने एक बयान में कहा कि बीते एक साल में राजस्थान में महिलाओं के खिलाफ़ अपराधों के कथित रूप से 80 हज़ार मामले दर्ज किए हैं। इनमें से 12 हज़ार से अधिक मामले बलात्कार से संबंधित है। राजस्थान में दुष्कर्म और महिला हिंसा को लेकर अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि राजस्थान पिछले तीन साल से महिला

हिंसा के मामलों में पहले नंबर पर है। प्रदेश में जनवरी, 2020 से अप्रैल, 2022 तक दुष्कर्म के 13,890 मामले दर्ज हुए हैं। इनमें से 11,307 दुष्कर्म की घटनाएँ नाबालिग लड़कियों के साथ हुई है। दो से 12 साल तक की उम्र की 170 लड़कियों से दुष्कर्म के मामले सामने आए हैं। ज्यादात्तर मामलों में जहाँ बलात्कार की शिकार छोटी बच्चियाँ रही, अपराधियों द्वारा उनकी हत्या कर दी गई ताकि अपराध का सबूत ही ख़त्म हो जाये।

राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडब्ल्यू) को वर्षभर (फरवरी 2022 तक) में मिलने वाली शिकायतों के आधार पर जारी इस रिपोर्ट में राज्यवार घरेलू हिंसा, गरिमा हनन समेत कई तरह के मामले शामिल हैं। रिपोर्ट में उत्तर प्रदेश 15,828 शिकायतों के साथ पहले और दिल्ली 3336 शिकायतों के साथ दूसरे नंबर पर है। राजस्थान से आयोग को मिली 1130 शिकायतों में से सबसे ज्यादा 338 गरिमा हनन की हैं। इसके बाद घरेलू हिंसा की कुल 217 शिकायतें हैं। इसके अलावा साइबर क्राइम, यौन उत्पीड़न, दहेज प्रताड़ना समेत कई अन्य मामलों को लेकर भी शिकायतें दर्ज कराई गई हैं। ऐसे में प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है। जहाँ महिला को अपनी इच्छानुसार जीवन जीने तथा अपने शरीर पर स्वायत्ता नहीं वहां अन्य सभी अधिकार बेमानी हो जाते है। अनु. 21 कहता है "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा, अन्यथा नहीं।" यह अनु. स्पष्ट करता है कि प्राण का अर्थ केवल पशुवत् अस्तित्व या जीवित रहना नहीं है। इसके अंतर्गत मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार है और जीवन के वे सब आयाम है जिनसे मनुष्य का जीवन सार्थक, सम्पूर्ण और जीने योग्य बनता है। एक अबोध बच्ची जो बलात्कार के बाद जीवित बच जाती है वो कैसे अपने जीवन को सार्थक और सम्पूर्ण बनाएगी, जबकि वो हर समय डरी और सहमी रहती है, वो कैसे जीवन का आनंद ले पायेगी। उस महिला के लिए इन संवैधानिक शब्दावलियों का क्या कोई महत्व रह जाता है?

अनु. 16 कहता है कि सभी महिला पुरुष समान योग्यता के आधार पर राज्य के अधीन सरकारी पदों को समान रूप से प्राप्त करने के अधिकारी है। ये बात निचले स्तर पर चयन तक तो ठीक प्रतीत होती है, किन्तु पदक्रम जैसे–जैसे ऊपर की बढ़ता है, सर्वोच पदों की ओर बढ़ता है, महिलाएं पिछड़ने लगती है। राजस्थान के 72 सालों के इतिहास की पहली कतार देखें तो –अब तक सर्वोच्च 10 पदों पर 8 महिलाएं ही रही है। इन वर्षों में 25 बार सरकारें बदली, लेकिन गृह मंत्री, वित्त मंत्री, और स्वास्थ्य मंत्री जैसे ताकतवर विभागों में भी कभी महिला कतार नहीं बना सकी। वसुंधरा के अलावा इन विभागों में कोई महिला कैबिनेट मंत्री नहीं बनी। 34 डीजीपी, 37 सीजे पुरुष ही बने, इस कतार में महिलाएँ कभी नहीं आई। अब तक 34 डीजीपी रहे है लेकिन महिलाओं को कतार में जगह नहीं मिली। जबकि प्रदेश में 27 महिला आईपीएस है। 1985 से 1989 बैच के 10 सीनियर आईपीएस को लांघकर 1989 बैच के निरंजन आर्य सीएस बने लेकिन समान बैच की आईपीएस नीना सिंह को मौका नहीं मिला।

प्रदेश में 37 चीफ जस्टिस बने, पर आज तक कोई महिला यहाँ नहीं पहुँची। राजस्थान में अभी 23 जज है। इनमें अकेली महिला न्यायमूर्ति सबीना है। मानवाधिकार आयोग का गठन 2000 में हुआ। इसकी कमान जस्टिस कांता भटनागर को सौपी गयी। हालाँकि कुछ माह बाद ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया। उसके बाद अब तक कोई महिला मानवाधिकार आयोग की अध्यक्ष नहीं बनी। क्योंकि ये है समानता का सच राजस्थान में कुल कर्मचारी है 5,22,369 इनमे महिलाएं है 77,422, कुल डॉक्टर 46,253, महिला डॉक्टर है 1387, कुल विधायक

200, महिलाएँ 25, कुल सांसद 25, महिलाएँ 3, कुल राज्य सभा सांसद 10, महिलाएँ 0, कुल शिक्षक 4,37,355, महिलाएँ 1,42,370, कुल आईएएस 245, महिलाएँ 57 कुल आईपीएस187, महिलाएँ 27 है। ये सभी आंकड़े मार्च, 2021 तक के है। प्रश्न ये है कि ऐसे हालत में तस्वीर बदलेगी कैसे?

बात पदों तक पहुंच की ही नहीं है। समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक भी एक बड़ा मुद्दा है महिलाओं के सामने। भारतीय संविधान सभी नागरिकों को लिए समान कार्य के लिए समान वेतन पाने का अधिकार देता है। ये बात केवल सरकारी सेवा क्षेत्र पर ही लागू होती है जबकि समाज का एक बड़ा वर्ग सरकारी क्षेत्र के बाहर असंगठित क्षेत्र व गैर सरकारी क्षेत्र से आजीविका प्राप्त करता है। ये दोनों ही ऐसे क्षेत्र है जहाँ समान कार्य के बावजूद महिला व पुरुषों के पारिश्रमिक में बड़ा भारी अंतर पाया जाता है और महिला श्रम का निरंतर शोषण हो रहा है, जो महिलाओं के मूल अधिकारों का हनन है।

महिलाओं की समस्याओं का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब समाज की मानसिकता नहीं बदलती। महिलाओं को एक वस्तु या भोग्य के रूप में न देख कर एक इंसान के रूप जब तक नहीं स्वीकारा जाता तब तक संवैधानिक और क़ानूनी प्रावधान की क्रियान्विति सम्भव नहीं है क्योंकि समाज को कानून के डंडे से नहीं हांका जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि समाज में जागरूकता लायी जाये। समाज को लैंगिक आधार पर संवेदनशील बनाया जाये और इस कार्य की शुरुआत घर से ही हो सकती है। घर से ही बच्चों में बाल्यवस्था से ये संस्कार पड़े कि महिला भी इस सृष्टि का एक अनिवार्य व मूलभूत घटक है, बिना महिलाओं के ये संसार नहीं चल सकता। उसकी स्थिति और स्थान इस दुनियाँ में वैसा ही है जैसा किसी अन्य मानव का, यानि कि वह भी एक मानव है। जब ऐसी भावनाए और संवेदनाएँ, जीवन का आवश्यक संस्कार बन जायेंगी तब केवल महिलाओं का ही नहीं बल्कि मानव मात्र का सम्मान स्वतः होना शुरू हो जायेगा। शिक्षा इसका सबसे सबल माध्यम हो सकती है बशर्ते शिक्षा केवल सूचनाओं का संग्रह मात्र न हो और शिक्षा का उद्देश्य मात्र नौकरी पाना न हो वरन् शिक्षा जीवन जीने की कला हो। शिक्षा हमें जीवन का उद्देश्य समझाए व उसे जीने का तरीका सिखाये। अन्यथा हम देख ही रहे हैं कि अपराधियों में पढ़े लिखे लोग का अनुपात भी कम नहीं है।

समाज के साथ—साथ राज्यों को भी अपनी भूमिकाओं में सुधार करना होगा। समाज का नियमन व नियंत्रण मात्र कानून बना देने से ही नहीं हो जाता। इसके लिए आवश्यक है कि इससे जुड़े हर घटक की भूमिकाएँ स्पष्ट हो तथा उत्तरदायित्व सुनिश्चित हो। अपने कर्तव्य में कोताही बरतने वालों के खिलाफ बिना भेदभाव के सख्त से सख्त कार्यवाही की जाये। ऐसे बहुत से उदाहरण हम आये दिन देखते है जहाँ सक्षम अधिकारी या कर्मचारी अपनी भूमिका ठीक से नहीं निभाते और समस्याएँ विकराल रूप ले लेती है। कई अच्छी योजनाएँ व कानून प्रशासनिक उदासीनता तथा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाते है। अतः आवश्यक है कि महिलाओं के साथ कोई घटना घटती है तो प्रशासन संवेदना के साथ शीघ्र कार्यवाही करे व अपराधी को शीघ्र और सख्त दंड दे ताकि समाज के सामने एक नजीर पेश हो कि है 'राज सोता नहीं' बल्कि चुस्त और मुस्तेद है, ऐसे में अपराधी अपराध करने से डरेगा।

प्रशासन अपनी भूमिका का सफल निर्वहन तभी कर पायेगा जब कार्यभार के अनुपात में पर्याप्त कर्मचारी हो। अतः सरकार को चाहिए कि वह सभी विभागों में रिक्त पदों को शीघ्र भरे। इसके दो फायदे होंगे एक तो समाज बेरोजगारी की कुंठा से बचेगा और अपराध स्वतरू काफी कम हो जायेंगे। दूसरा सम्बन्धित विभाग भी

अपनी पूरी क्षमता से कार्य करेगा और शीघ्र न्याय प्रदान करवाने में सफल होगा। पुलिस की कार्य प्रणाली में बदलाव करते हुए प्रशिक्षण व अन्वेषण में नई तकनीक का प्रयोग किया जाये ताकि पुलिस महिलाओं के साथ उचित व संवेदी व्यवहार करे।

अतः हम कह सकते है कि राजस्थान में महिला मानवाधिकार की स्थिति अच्छी नहीं है। महिला मानवाधिकार हनन के मामले में राजस्थान एक नंबर पर है किन्तु सरकार, प्रशासन व समाज मिलकर कार्य करे तो इस स्थिति को बदला जा सकता है। जरूरत है समाज में जागरूकता लाने, प्रशासन को मुस्तैद करने तथा सरकार को संवेदनशील व पूर्ण इच्छा शक्ति से कार्य करने की तभी महिलाएं खुल कर जी सकेगी तथा समाज निर्माण में अपनी महत्ती भूमिका का निर्वहन कर सकेगी।

संदर्भ :-

1. ब्रज किशोर शर्मा, भारत का संविधान रू एक परिचय, एच पी अल लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010, प्रष्ठ, 67
2. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, संयुक्त राष्ट्र महासभा, 10 दिसम्बर,1948
3. अनुछेद 1, संयुक्त राष्ट्र चार्टर और मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा।
4. https://www.bbc.com/hindi/india/2011/05/110524-lancet-girls.da
5. https://www.india.com/hindi&news/rajasthan/female&feticide&cases&increased&during&lockdown &due&to&corona&in&rajasthan&here&are&stats&5474514/
6. https://www-unodc-org/documents/data&and&analysis/GSH2018/GSH18&Gender&related&killing&of& women&and&girls-pdf
7. देखे, महिला सुरक्षा : सरकार और समाज, DIFFERENT DIMENSIONS OF HUMAN SECURITY AND GOVERNANCE, IMRANKHAN (EDITOR), INTERD ISCIPLINARY INSTITUTE OF HUMAN SECURITY & GOVERNANCE, New DELHI, 2022, PAGE, 199
8. https://www-amarujala-com/jaipur/ncrb&report&17&rape&cases&registered&every&day& in&rajasthan& 6337&rape&cases&registered&in&2021
9. https://www-jagran-com/rajasthan/jaipur&rajasthan&number&one&in&the&country&in&abused&and& violence&against &women&ncrb&report&released&23026742.html
10. https://www-abplive-com/states/rajasthan/know&the&condition&of&rajasthan&in&the&case&of&women& crime&up& i s&number&one&and&delhi&on&second&place&ann&2056810
11. वुमन/सिटी फ्रंट, बीकानेर, दैनिक भास्कर, सोमवार, 8 मार्च, 2021

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 20-24

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मारवाड़ शासक मालदेव का स्थापत्य कला के प्रति रूझान

डॉ. बिन्दु भसीन
सह आचार्य, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान।

मनुष्य के विकास और पतन को यर्थाथ रूप में प्रकट करने का एक श्रेय स्थापत्य कला को दिया जा सकता है। इस कला के विकसित रूपों में मनुष्य के विकास के अनवरत प्रयासों को खोजा जाता है जिससे उसके सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के प्रति विचार, जीवन के प्रति दृष्टिकोण की रूचि हमें पता लगती है। स्थापत्य कला के नमूनों में किले, महल, स्मारक, मंदिर और जलाश्य आदि है।[1]

शेखसादी के अनुसार वह व्यक्ति कभी नहीं मरता जो अपने पीछे मंदिरों, जलाशयों और यात्रियों के लिये सराय आदि जनहित के कार्य पूर्ण करके जाता है। यह कथन राजा और महाराजाओं पर शत–प्रतिशत खरा उतरता है।

मारवाड़ के शासक मालदेव द्वारा अनगिनित निर्माण कार्यों के अब खण्डरों को देखने और प्राचीन ग्रन्थों में उनके वर्णनों से उस समय की कला का अनुमान लगाया जा सकता है।

स्थापत्य कला की विभिन्न शैलियाँ मालदेव के काल में प्रचलित थी। राजस्थान में राजपूत स्थापत्य कला की शुरूआत मंदिरों से प्रारम्भ होकर नागरिक शाही भवनों तक हुई।[2] मध्यकालीन हिन्दू शासकों के भवनों की पद्धति मुस्लिम भवनों से ली गई है[3] इसलिए हिन्दू और मुस्लिम स्थापत्य कला का मिश्रित रूप मालदेव के समय में स्पष्ट देखने को मिलता है।

मालदेव द्वारा निर्मित स्मारक भवन :–

1. राव गांगा का देवल :–

मालदेव से पूर्व राजा महाराजाओं का दाह संस्कार मंडोर से कुछ दूर स्थित पंच कुंड के पार होता होगा।[4] इसके दक्षिण में स्थित खंडित इमारत को गांगा देवल कहा जाता है।[5]

यह देवल रानियों की छतरियों और पंच कुंड के मध्य स्थित है। इसके ऊपर का भाग टूट गया है। यह एक मंजिल का गोल कोने दार भवन है। इसका दरवाजा जमीन से कुछ ऊँचा है। मालदेव की सबसे अधिक सज्जित शिल्प कला की यह कृति है और उत्कृष्ट नक्काशी का एक उदाहरण है।[6] विभिन्न आकार के पत्थरों से निर्मित चबूतरे के ऊपर गांगा का देवल बना है। कुछ पत्थरों पर कारीगरी भी देखने को मिलती है। चबूतरे के ऊपर चारों तरफ डिजाइनों और कटाव से मुख्य देवल प्रारम्भ हुआ है। पहली पंक्ति के बाद चारों तरफ एक डिजाइन की पंक्ति है जो शेर के मुँह से प्रतीत होते है और इसके ऊपर की पंक्ति में चारों ओर हाथी बने हुए है। इसमें दो हाथी अपनी सूंड़ों को परस्पर मिलाए खड़े हैं। इससे ऊपर की पंक्ति में घोड़े और गणेश और कुछ

अन्य देवी देवताओं की मूर्तियाँ है। बीच में 4 देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। फिर कटावदार छोटे स्तम्भ बने हैं। देवल के सामने द्वार और तीन तरफ फूल–पत्तियों से युक्त छोटी खिड़कियाँ बनी हुई हैं इसलिये देवल बाहर से जैन मंदिर के समान प्रतीत होता है।

देवल के सामने के द्वार पर चारों ओर देवताओं की खड़ी और बैठी मुद्राओं में मूर्तियाँ है जिनके दोनों ओर स्त्रियाँ खड़ी है। देहली पर भी छल्लेदार फूलों का डिजाइन है।

शेरशाह से हुए युद्ध में जोधपुर के किले की रक्षा करते हुए जो लोग मारे गए थे उनकी छत्तरियाँ लखणपोल के नीचे चढ़ते हुए बाएँ हाथ की मस्जिद के आगे है।

मालदेव द्वारा निर्मित परकोटे :–

शत्रु सीधे नगर में प्रवेश न कर सके और सुरक्षात्मक युद्ध करने के लिये परकोटों का अत्यधिक महत्त्व है।

जोधपुर शहर का परकोटा –

मालदेव ने शहर का विस्तार कर चारों तरफ परकोटा बनवाया। इसमें फूलेराव के ऊपर एक पोल दूसरे पुराने चांदपोल पर तीसरे पुराने मेड़तीया दरवाजे पर चौथे पुराने नागौर दरवाजे पर पांचवा ब्रह्मपुरी की मरीम पोल मालदेव के समय की है।[7] पुराने दरवाजे और पूरा परकोटा बड़े–2 आकार के चौकोर लाल पत्थरों को जोड़ कर बनाया गया है। जोधपुर किले में स्थित झरण का परकोटा भी प्रसिद्ध है।

राणीसागर के चारों ओर का परकोटा :– राणीसागर की पोल और चारों तरफ का परकोटा मालदेव ने बनवाया था। पोल ऊपर से तिकोनी है। इस पर 1556–58 ई. के मालदेव के (नाम स्पष्ट नहीं है) दो लेख है। सम्भवतः इसी समय इस परकोटे का निर्माण भी हुआ होगा।

जोधपुर किले के चारों ओर का परकोटा :– किले का पुराना परकोटा कहीं–कहीं नजर आता है। सम्भवतः उस समय राणीसागर भी किले का ही भाग समझा जाता होगा अतः जो परकोटा उसके पास से जा रहा है वही पुराना परकोटा रहा होगा।

चौकेलाव तालाब का परकोटा :– 1535 ई. में मालदेव ने सेवकों के लिए यह बनवाया था।

मालदेव ने नाडौल के चारों तरफ भी परकोटा बनवाया था जिसमें 35000/– लगे।[8] यह नौकदार पत्थरों या मलबे के पत्थरों से निर्मित छोटी सी दीवार है, इसमें दरवाजे भी हैं।[9]

मालदेव द्वारा निर्मित सोजत किले के चारों ओर परकोटे के कुछ कंगूरे चौड़े और कम कटाव के हैं और शेष लम्बे और गहरे कटाव के हैं इसमें बने दो छिद्र जो बाहर से कम चौड़े और अन्दर से अधिक चौड़े होते थे, जो खड़ी फौज को देखने और बन्दूक चलाने के काम में आते थे। सभी परकोटे लाल रेतीले पत्थर के चौकोर टुकड़ों से बने हुए हैं। अन्दर की तरफ बनी पगडन्डी पर आक्रमण के समय सैनिक चलते थे।

मालदेव द्वारा निर्मित मंदिर :–

सोजत के किले में एक देवी के मंदिर के खंडर मिले है। इसके दो द्वार है– एक परकोटे के समीप और दूसरा मंदिर के पीछे। मंदिर में लम्बे और ऊपर से गोलाई लिये हुए झरोखेहैं और उनके ऊपर कमल दल के समान फूल बने हुए है। मंदिर के अंदर कई आलखियाँ (मुकुटनुमा आले[10]) बने हैं। मंदिर के ऊपर का गुम्बज पठान स्थापत्य कला के गुम्बजों जैसा है। यह मंदिर अधिक कला पूर्ण नहीं रहा होगा, सभी मूर्तियाँ खंडित हो

गई है।

मालदेव द्वारा जोधपुर किले में चमन्डा देवी का मंडप बनाया है[11] परन्तु आज इसका स्वरूप इतना परिवर्तित हो गया है कि कहीं से भी प्राचीनता की झलक नहीं मिलती।

मालदेव द्वारा निर्मित किले :–

आक्रमणकारी सरलता से किसी भी प्रदेश पर अधिकार नहीं कर पाते यदि दुर्ग, किले सामरिक दृष्टि से बनाए गए हो। मालदेव ने भी अपने अधिकृत प्रदेशों में किले बनवाए।

1. **सोजत का किला :–** इस किले के नीचे घुड़साल बना हुआ है। इस घुड़साल के चारों ओर बना परकोटा अब नहीं रहा। इस किले का प्रवेश द्वार कुछ ऊँचाई के बाद तिरछे चलने पर आता है जो गणेश पोल के नाम से जाना जाता है। पोल के ऊपर एक खुला बरामदा है जिसमें सम्भवतः कभी नगाड़ा बजाया जाता था। किले के चारों ओर सुदृढ़ प्राचीर है। मालदेव के समय में नीचे से पानी ऊपर किले तक पहुँचाने के लिये, अरहठ[12] लगा हुआ था। इस पानी को किले के अन्य भागों में प्रवाहित करने के लिये किले में पक्की नालियाँ है। पानी को संग्रहित करने के लिये 2 बड़े होज़ बने हुए है जिनमें इन नालियों से पानी पहुँचाया जाता था।

किले के अन्य खंडहरों जिनके नाम दरीखाना जनानी ड्योढ़ी बताया जाता है, ये सभी भवन साधारण बने हुए है। इसमें कारीगरी नाम मात्र की है।

2. **फलौदी का किला :–** हमीर द्वारा निर्मित फलोदी के प्राचीन किले की नींव पर ही मालदेव ने नया कोट[13] और पोल बनवाई।[14] इस किले की दीवार 40 फीट ऊँची है और यहाँ एक छोटी रक्षक सेना के रहने की व्यवस्था है। किले के मध्य में एक गहरा और क्षमतापूर्ण पानी का संग्राहलय है। किला एक पहाड़ी से 5600 गज की दूरी परहै।[15] इस किले को बनवाने में 11,00,000 (फदिये)[16] लगे थे।[17]

3. **पोकरण का किला :–** मालदेव ने सातलमेर का किला तोड़कर उसी मलबे से पोकरण में किले की पहली नींव पर नया कोट (किला) बनवाया।[18] पोकरण नीचे धरातल पर है, इसके पूर्व में ऊँचाई पर छोटा और मजबूत किला बना है।

4. **रियां (मेड़ता का किला) :–** रियां गांव की पहाड़ी पर छोटा सा किला 35000 फदिये से बनवाया। सम्भवतयाः यह किला मालदेव के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में ही बन गया होगा।

5. **कुंड़ल (मेड़ता) का किला :–** मेड़ता की सुरक्षा के लिये शहर से बाहर कुंडल की पहाड़ी पर 1,80,000 फदिये में नया किला बनवाया।

6. **रायपुर में मालगढ़ :–** रायपुर में मालदेव ने अपने नाम पर गाँव बसाया और किला बनवाया।[19]

7. **पीपलोद में मालकोट :–** सीवाणा से 2 कोस दूर पीपलोद (पीपलाणा) गाँव की पहाड़ी पर मालदेव ने 15000 रु. से मालकोट और कोठयार बनवाए। आज भी इस कोट की पोल और दीवार के खंडहर, घुड़साल दिखते हैं। कारीगरी कहीं भी नहीं है।

8. **भाद्राजण में कोट किला :–** भाद्राजण का ऐतिहासिक नाम सुभद्रा–अर्जुन नगर है। सम्भवतः यहां एक छोटा सा किला मालदेव द्वारा बनाया गया।

मालदेव द्वारा निर्मित कोटडियाँ– (छोटे किले)

गुदवों (गुंदोज) में 2000/[20] में और दुनाड़े (धुनाड़ा) की 3200/– में कोटड़ी बनवाई।

मालदेव द्वारा निर्मित जलाशय :-

1. सीवाणा के पीपलाणा नामक पहाड़ पर एक तालाब बनवाया जिसमें 10 महीने पानी रहता है।[21]
2. सिवाणा के गढ़ी नामक गांव की पहाड़ी पर गागल नया बनवाया।
3. जोधपुर किले में पानी के लिये रानीसागर और पतालिया बेरा।[22]
4. चौकेलाव तालाब में 4 महीने पानी रहता है। इस छोटे से तालाब के चारों तरफ लाल पत्थर का चबूतरा बना है।
5. पुराने नागौरी दरवाजे के समीप मालबावड़ी बनवाई।
6. जोधपुर गढ़ के ऊपर चौपड़ भुरज के आगे तालाब नीवासर जिसमें 6 महिने पानी रहता है, बनवाया।
7. गढ़ के नीचे 20 घड़ा पानी वाला झरण है। इसके आगे का कुंड मालदेव ने बनाया जो बरसात के पानी में भरता है। कुंड की दीवार के कुछ खंडित भागों को देखने से पता लगता है कि दीवार लाल पत्थर की थी।
8. रानीसर के कोट के अलावा 4 कुएँ भी बनवाए।

मालदेव द्वारा निर्मित भवनों की विशेषता :-

1. भवनों की सुदृढ़ता है। अधिकांश इमारतों और नगरों के चारों ओर परकोटे बनाए गए थे।
2. लाल रेतीले पत्थरों का उपयोग सभी भवनों को बनाने में किया है।
3. गांगा के देवल के अतिरिक्त अधिकांश भवन सादगी लिये हुए हैं।
4. अधिकांश किलों का क्षेत्रफल बड़ा नहीं है। केवल उपयोगी भवनों का ही निर्माण किया गया।
5. किलों में पानी की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वर्षा का पानी एकत्र करने के लिये बावड़ी और टांको के अतिरिक्त मालदेव ने पानी ऊपर चढ़ाने के लिये अरहट भी लगवाए।[23]

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. प्रकाश सत्य–राजस्थान कन्ट्रीब्यूशन द रिसर्चर, भाग – 1, पृ. 37, 38।
2. गुरे,– राजपूत आर्केटेक्चर, पृ. 1 – पोपुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1968
3. ब्राउन, परसी– इण्डियन आर्केटेक्चर (इस्लामिक पीरियड), पृ. 117–डी.बी. तारापोरवेला (Tarapoevalla) सन्स एण्ड कम्पनी, बाम्बे।
4. डॉ. ओझा, गौरी शंकर हीराचन्द– जोधपुर राज्य का इतिहास भाग– 1, पृ. 24–25–राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर।
5. आर्किलियोजिकिल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग–23, पृ. 75, नई दिल्ली।
6. वही।
7. परगनां री विगत, परिशिष्ट ''क'', पृ. 56।
8. परगनां री विगत, भाग–1, पृ. 562 ; मालदेव की तवारिख, पृ. 116
9. भण्डारी, प्रयागदास की ख्यात, पृ. 19
10. डॉ. प्रकाश सत्य – स्थापत्यकला सम्बन्धी – राजस्थानी शब्द रिसर्चर, भाग 3,4, पृ. 90
11. परगना री विगत, भाग–1, पृ. 560
12. कुएं से पानी निकालने का विशेष यंत्र।
13. मालदेव की तवारिख, पृ. 116

14. परगना री विगत, भाग–1 पृ. 562
15. इंडियन एन्टीक्वेरी, भाग–5, पृ. 82
16. चौहानों के ह्रास काल से लेकर 1540 ई. तक चलने वाली राजस्थान की स्वंतत्र मुद्रा शैली।
17. मालदेव की तवारिख, पृ. 116
18. मालदेव री बात परम्परा, भाग–11 पृ. 75; अथराठौड़, वंशावली पृ. 112; खेजड़लां री ख्यात, पृ. 9, 18
19. नीवाज री बही की नकल पृ. 41; मालदेव की तवारिख पृ. 116; भंडारी, प्रयागदास जी की ख्यात, पृ. 19
20. परगना री विगत, भाग–1, पृ. 662; राव मालदेव की ख्यात, पृ. 321
21. जोशी पोकरदास जी रे डग सूँ क्रमग किला रा वागियां तिण री नकल, पृ. 3–4
22. डॉ. रस्तौगी, साधना–मारवाड़ का शौर्य युग, पृ. 187, धनेश लक्ष्मी प्रकाशन, जयपुर।

9414430224
dr.bindubhasin.bikaner@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 25-29
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SANITATION MANAGEMENT IN LATE NINETEENTH AND EARLY TWENTIETH CENTURY BIKANER CITY

Dr VINOD SINGH
Associate Professor (Geography), Govt. Dungar College, Sagar Road, Bikaner.

1. INTRODUCTION :-

Sanitation management refers to public health management through providing clean and safe environmental services. An urban place poses challenges in the field of sanitation management because compared to rural landscape an urban landscape is marked by high concentration of population in a comparatively limited area, intensive land use, higher income and consumption levels, greater production of goods and services per unit area. All this leads to greater generation of liquid and solid wastes from the residential, industrial, institutional and market areas. Such a concentrated generation of wastes puts heavy pressure on the local administration in terms of sanitation management infrastructure and services.

This paper outlines the evolution of modern sanitation services in the City of Bikaner - established in medieval age in 1488 AD in a near-desolate desert on a mound about 736 feet above sea (Anonymous, 1908) - from late 19th century when it was a small walled town (Area 2.67 square kilometres; TPD, 2002) through the early 20th century. The city of Bikaner (Mean rainfall hardly 25 cm) is a major city of Thar Desert region of India situated in Rajasthan State, with a population topping 7 lakhs now.

2. OBJECTIVE & INFORMATION SOURCES :-

The objective of this study is to highlight the background of modern-day sanitation management in Bikaner city since late 19th century to early 20th century. The study is based on various secondary sources of information, and includes the resources available at State Archives Department, Bikaner.

3. FACTORS AFFECTING SANITATION IN BIKANER :-

Concentration of denizens in an urban place requires sufficient supply of water for drinking and for proper disposal of sewage and liquid wastes. The deserts of the world are naturally hampered in this respect. The development of Bikaner city and, hence, its sanitation management had also been subjected to this limiting factor for a long time, until the Himalayan waters arrived through Canals.

Evolution of an organised, modern sanitation management depends directly on the size of population in a city, the resulting demand as well as its access to sanitation services and clean environment. Growth rate of the city, affected mostly by in-migration, is another determinant of sanitation management there. Further, the financial condition of the local administration determines its technological capabilities and infrastructural provision capacity, leading to good or bad sanitation condition in a city.

In late 19th Century, in 1881, the population of Bikaner stood at 33,154. Most of them lived inside the fort, surrounded by a wall 3.5 miles in circumference, 6 feet thick and 15 to 30 feet high (Neilson, 1898). The Census year 1901 reported the population of Bikaner city at 53 thousand, reaching about 56 thousand in 1911, showing a decadal growth rate of only 5.18%. The City showed decadal growth rates of 24.33 and 23.80 percent through the next two decades. In 1941, it crossed the level of one lakh, reaching 1.27 lakhs in 1941, exhibiting an all-time high decadal growth rate of 48.06 percent. It was due to the efforts of Maharaja Ganga Singh of Bikaner state that the City was connected with the country through rail line, leading to greater in-migration caused, in turn, by increasing revenue generation of Bikaner through ushering of Gang Canal in parts of the Kingdom. The period 1941-51 recorded the all-time low decadal growth of just 2.41%, however, attributable to out-migration of population to Gang Canal and Bhakra Canal irrigated areas due to allotment of agricultural lands, as well as stressed migration due to partition of India in 1947. After 1951, people of other States started to come to the City through incursion of employees and armed personnel. Thus, being a border district Bikaner grew in strategic importance, resulting into stationing of Army, Air Force and BSF. It was not until the arrival of Indira Gandhi Canal waters that another period of fast urban growth in Bikaner city came into being (Area in 1971 22.56 square kilometres; TPD, 2002).

In 1881, population density was already a high of 3194 persons per square kilometre. It rose steeply to 4835 in a decade. In 1931, it was 5873. Due to advent of people from other states after 1951, the area of the City began to grow rapidly. However, the population density showed a decline, falling to 3957 in 1961. This pattern is due to the fact that before incoming of people from outside, the localites preferred to stay inside or near the ramparts of the walled city. For e.g., in 1931, 52.1 % population lived inside the walled City, 36.2% outside the City walls and remaining outside the municipal limits (COI, 1931). As a consequence of this, the population increase in the City gradually led to build up of a high population density upto 1951.

4. SANITATION MANAGEMENT IN PREVIOUS CENTURIES :-

Sanitary management is essential for a densely populated settlement which an urban place is. Upto as late as 1879, there were practically no such arrangements in Bikaner city. It was usual for the people of the city and its outskirts to throw rubbish and to relieve themselves wherever they liked (Neilson, 1898). In the middle of the 19th century, various diseases broke out in the city and took

epidemic form, calling for arrangements for effective control of the situation. Concerned about the potential spread of the diseases, the British colonial rulers influenced upon the local rulers to set up local administrative institutions, and to ensure sanitation and cleansing of the towns (Rajpurohit, 1998).

Consequently, the Sanitary Department of Bikaner city was set up in 1879. These arrangements were taken up by the Municipal Committee, established on July 16, 1889. The streets were generally kutcha and remained buried under a deep layer of sand. Whenever the rainfall occurred, it only worsened the situation. Almost all the drains were kutcha in nature and many of them flowed according to the slope. These drains were let out of the city via outlets below the walls of the fort.

Until that time, there was no provision for toilets in the houses and palaces. It was claimed that people, especially women, used earthen vessels as night stools and emptied them in the streets from housetops in morning without any consideration for the passers-by (Powlett, 1932). Otherwise streets were used for the purpose. As is usually the practice in the vast rural India, here too many amongst the menfolk used to go outside the old city for the purpose. This served additional purpose of morning walk, bath and prayers too. There were private 'bagichis' (gardens) outside the walled city, where the people used to take bath in 'kunds', 'baoris', and 'talais' or small tanks (all rainwater harvesting structures) after the morning chores, and offered prayers in the temples situated therein (Rajpurohit, 1998). Water is essential for sanitary management, which was in short supply in this desert city. May be that's why Powlett (1932) wondered whether the great majority of the citizens of Bikaner washed at all. Joshi (2004), however, claims to have counted at least 69 big and small tanks (called 'talabs' and 'talais'), majority of them extinct now, and estimates their number to be more than 100 in the first half of 20th century. He, thus, prefers to call old Bikaner as 'the city of tanks'. The ground water of Bikaner city, obtained from deep wells, was reported by Powlett to be somewhat hard due to excess of lime. Besides this, the scarce water resource was called by him as 'most excellent'. One-quarter of a century later, a chemical analysis report categorised all well water in the city as unfit for potable purposes, and as having smell of hydrogen sulphide (Neilson, 1898).

The Sanitary Department was started in 1879 with a small workforce of 15 sweepers, who were paid by parish holders instead of the King. A second category of sweepers, called 'bhirat' cleaned the streets. They were paid by the households and were put under the control of Police Kotwal and not the Sanitary Department. In order to control the prevailing messy sanitary conditions, kutcha toilets began to be built inside the houses. This increased the pressure on the latter category of sweepers to clean these kutcha household toilets. The job gradually became hereditary, and the typical Indian sweeper community evolved, who had to carry boxes of night soil on their heads (Rajpurohit, 1998). The supervision of sanitation, later on, was withdrawn from Kotwal and given to Hospital Assistant. With effect from 1886, Sanitary Officer began to look after the sanitation services. With

the establishment of Municipal Committee, the Sanitary Department was handed over to it in 1889. Since 1889, Bhirat sweepers cleaned private toilets, under the supervision of Municipal Committee, along with sweeping of small streets and lanes, whereas large streets and public roads were swept by Safai Sweepers, also employed by the Committee.

Kutcha toilets were built at public places inside and outside the walled city by the Municipality. In order to prevent water from spreading on the roads, tanks were built below the overflow pipes on major roads and streets. The daily accumulation of water was removed in iron barrel carts. The municipality also established two garbage disposal or dumping sites at a distance of mile each from the city. The garbage was carried to these sites by wooden and iron carts. Earlier on, the wastes of Bikaner town were being burnt. Reuse of garbage as manure in agriculture was ruled out because there was no agriculture in the area. Malarial fevers accounted for 8.5% of all the diseases which was attributed to insufficient clothing especially at night. The large diurnal temperature range in most part of the year, use of tanks instead of wells for water by majority of the people, accumulation of garbage near the houses and a general debility due to hot weather (Nielsen, 1898). However, Powlett (1932) quoted Moore to emphasise that contrary to what appeared, the city of Bikaner was more than an ordinary healthy place for its citizens. This was attributed to a pure air, good water, a well-off population due to existence of various profitable employments, and the willingness of the poorer sections to resort to healthy 'famine' foods (like dried-up Khejri Beans or 'Sangri', 'Kair', 'Ber' etc) made available by the natural vegetation in the countryside.

In the Bikaner city of yore, there was no drainage problem until piped water supply was introduced. The drains were first constructed in the third decade of 20th century in KEM Road area, just outside the walled city in front of Kote Gate. The waste water system of Bikaner has been based on different man-made and natural drains, which collected rainwater and domestic sullage, and discharged them into open bigger 'nallahs'. Even sewage was let into these nallahs. The direction and flow in these drains and nallahs was determined by the slope of the land. The old, walled City, about 800 acres in area, is situated on a mound made of 'Kankar' or calcrete. Drains naturally flow radially outside from this mound, following its slope and carrying the waste water. In the absence of sewerage system, sewage disposal in the newly developed areas of the city has traditionally been managed through septic tanks or underground wells, or even open drains. Sewerage system was provided to a part of the city, 18 square kilometres in all, only as late as 1982-83 (TCE, 2003).

5. CONCLUSION: CONTINUITY & CHANGE :-

The waste water and garbage management has followed the same pattern of waste collection and dumping, as is seen in a typical urban place of the developing world. Only recent years of 21st century have seen new initiatives, like extension of sewerage facility, sewage treatment and door-to-door garbage collection.

The various factors affecting growth of a city, viz., in-migration, availability and accessibility to basic necessities like water, connectivity and economic opportunities have also been responsible for the growth and development of Bikaner city, along with its sanitary conditions, during the study period.

REFERENCES :-

1. Anonymous (1908). The Imperial Gazetteer of India, Vol. VIII, Berhampore to Bombay. Clarendon Press, Oxford, p. 421.
2. COI (1931). Census of India 1931, Delhi.
3. Joshi, Brij Ratan (2004). Jal Aur Samaj (Hindi). Pustak Sansar, Jaipur, p. 96.
4. Nielson, W. H. (1898). Medico-Topographical Account of Bikaner. Office of the Superintendent of Government Printing, Calcutta.
5. Powlett, P. W. (1932). Gazetteer of the Bikaner State. Originally Published in 1874. Government Press, Bikaner, 1932 (Reprint).
6. Rajpurohit, S. (1998). Rajasthan Patrika. Bikaner (Newspaper).
7. TCE (2003). Master Plan for Wastewater Management in Bikaner city (Unpublished). TCE Consulting Engineers Ltd., Mumbai. Sponsor: Rajasthan Urban Infrastructure Development Project, Jaipur.
8. TPD (2002). Bikaner Master Plan 2001-2023. Town Planning Department, Government of Rajasthan, Jaipur, p. 55.

Address: C-70, Kanta Khaturia Colony, Behind Joiya Market, Bikaner-334003

Mobile- 9983653498

E-mail: vinodsn2000@rediffmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 30-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

19वीं सदी में राजस्थान का सामाजिक ढांचा

राजस्थान का परंपरागत सामाजिक ढांचा

डॉ. मंजू वर्मा

सह आचार्य इतिहास, श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय सीकर –332001

19वीं सदी के प्रारंभ में राजस्थान का परंपरागत सामाजिक ढांचा अपना अस्तित्व बनाए हुए था। सामाजिक संगठन में प्रत्येक जाति की अग्रता उस जाति की वंश उत्पत्ति तथा उसके द्वारा अंगीकृत व्यवसाय पर निर्भर थी। एकमात्र आर्थिक संपन्नता कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती थी। विशुद्ध व्यवस्थाओं को अपनाने वाली जातियों को सामाजिक संगठन में उचित स्थान प्राप्त था चाहे आर्थिक दृष्टि से वह निर्धन ही क्यों ना हो। इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने पर भी अशुद्ध व्यवसाय को अपनाने वाली जातियों को निम्न स्थान प्राप्त था।[(1)]

सामाजिक संगठन के अनुशासन को बनाए रखना प्रत्येक जाति का कर्तव्य माना जाता था। इस कर्तव्य का पालन करवाने का दायित्व संबंधित जाति पंचायतों का था जिन्हें अपने कर्तव्य पालन में राज्य सरकारों का संरक्षण प्राप्त था।[(2)]

जाति पंचायतें अपनी जाति की उन्नति के लिए खानपान, शादी विवाह एवं रीति–रिवाजों के संबंध में समय–समय पर नियम बनाती थी[(3)] और अपनी जाति के लोगों से जाति नियमों एवं मर्यादाओं का पालन करवाती थी जाति भोज के लिए पंचों की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होता था।[(4)] इस प्रकार के अवसरों पर जातीय शिष्टाचार के पालन का पंच लोग बड़ा ध्यान रखते थे। सामूहिक जाति भुजाओं में पंचायत सामान्य थे किसी भी प्रकार के परिवर्तन की आज्ञा नहीं देती थी।[(5)] जाति पंचायतें ऐसे मामलों की सुनवाई परंपरागत रिवाज के अनुसार करती थी जिनसे जातीय शुद्धता पर आंच आती हो।[(6)] दंड अपराध पर निर्भर करता था। सबसे कठोर दंड जाति से बहिष्कृत करना था।[(7)]

जाति पंचायतें औपचारिक रूप से राज्य के नियंत्रण एवं संरक्षण में होती थी[(8)] किंतु सामान्यतः राज्य कभी अनुचित हस्तक्षेप नहीं करता था। शासक अपने सामने आने वाले जातिगत मामलों को जातिगत पंचायतों के पास ही भिजवा देते थे[(9)] तथा ऐसे विवादों में अधिकतर पंचायतों के निर्णयों को ही मान्यता दी जाती थी। जाति पंचायत के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति राजकीय न्यायालय की शरण ले सकता था परंतु वहाँ भी जाति पंचों की सहायता से ही न्याय किया जाता था।[(10)] इस प्रकार परंपरागत सामाजिक ढांचे को बनाए रखने में जाति पंचायतों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

राजपूत शासकों ने भी सामाजिक ढांचे को बनाए रखने में काफी योगदान किया। उदाहरणार्थ वंशानुगत

दास–दासियों पर उनके राजपूत स्वामियों के अधिकार को न्यायिक मान्यता प्रदान की गई।[11] भूमि कर वसूली के मामले में भी अधिकांश राज्यों ने ब्राह्मण राजपूत महाजन इत्यादि जातियों की परंपरागत सुविधाओं को कायम रखा। इन सब के परिणाम स्वरूप राजस्थान में जाति प्रथा पर आधारित परंपरागत सामाजिक ढांचे का अस्तित्व बना रहा।

परंपरागत जातीय व्यवसायों में परिवर्तन :–

राजस्थान में सामाजिक दृष्टि से जाति प्रथा का परंपरागत स्वरूप कायम रहा, परंतु आर्थिक दृष्टि से उसमें परिवर्तन आ गया और परंपरागत जातीय व्यवसायों के अलावा प्रत्येक जाति को अन्य विविध व्यवसाय अपनाने पड़े। 18 और 19वीं सदी में ब्रिटिश संरक्षण की स्थापना तक राजपूत शासकों के आपसी युद्धों, उत्तराधिकार संघर्षों, शासकों और सामन्तों के आपसी संघर्षों और इन सबमें मराठों तथा पिंडारियों की घुसपैठ के परिणाम स्वरुप राजपूत राज्यों का आर्थिक जीवन काफी अस्त–व्यस्त हो गया और परंपरागत जाति व्यवसाय के पालन की पहले जैसी मर्यादा नहीं रही। ब्रिटिश संरक्षण की स्थापना के बाद शासकों और सामंतों की बड़ी–बड़ी सेनाओं के विघटन, नमक व्यवसाय पर अंग्रेजों के एकाधिकार, आधुनिक शिक्षा के प्रसार, राज्यों की शासन संस्थाओं के अंग्रेजीकरण तथा राजकीय सेवाओं के विस्तार, भूमि बंदोबस्त, यातायात के नए साधनों इत्यादि तत्वों के सामूहिक प्रभाव से भी जातिगत व्यवसाय के साथ–साथ अन्य पेशों को अपनाने की प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहन मिला।

ब्राह्मण :–

परंपरागत सामाजिक ढांचे में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। अध्ययन अध्यापन धार्मिक कर्मकांडों का संपादन पाठ पूजा और पौरोहित्य उनके परंपरागत जातीय अध्यवसाय थे। 19वीं सदी में भी पढ़े–लिखे ब्राह्मणों में से कईयों ने अध्यापन के अपने परंपरागत व्यवसाय को जारी रखा।[12] शिक्षा का काम करने वाले ब्राह्मणों को सामान्यतः राज्यों से वेतन अथवा भूमि दी जाती थी।[13] मंदिरों में देवार्चन और पाठ पूजा का परंपरागत व्यवसाय भी कई ब्राह्मणों ने अपना रखा था। वस्तुतः अधिकांश ब्राह्मणों की आजीविका का यह प्रमुख साधन था। अधिकांश मंदिरों के साथ राज्य सरकारों अथवा सामंतों द्वारा प्रदत जागीर अथवा भूमि जुड़ी हुई थी जिसका उपयोग ब्राह्मण पुजारी करते थे।[14] इसके अतिरिक्त इन्हें राज्य और जनता से नगद चढ़ावा भी मिलता रहता था। देवपूजा के अलावा बहुत से ब्राह्मणों ने कथा वाचन का व्यवसाय भी अपना रखा था। इस काम को करने वाले ब्राह्मणों को भी राज्य की तरफ से भूमि का अनुदान मिलता रहता था।[15] ब्राह्मणों के कुछ घराने राजकुलों तथा सामंतों के पारिवारिक पुरोहित बने हुए थे। धार्मिक कर्मकांडों तथा अनुष्ठानों के अवसर पर वे संबंधित शासक तथा सामंत का प्रतिनिधित्व करते थे। इन्हें राजगुरु, राजपुरोहित, राजव्यास आदि उपाधियों से सम्मानित किया जाता था।[16] ग्रामीण ब्राह्मण मध्यकाल से ही कृषि व्यवसाय को अपना चुके थे। बीकानेर और जयपुर के श्रीमाली तथा पालीवाल, जोधपुर के सांचौरा तथा पुष्करणा और अजमेर के सुखवाल ब्राह्मणों में से अधिकांश ने कृषि कर्म अपना लिया था।[17] राज्य द्वारा ब्राह्मणों को कर मुक्त भूमि अनुदान में दी जाती थी और कृषि करने वाले ब्राह्मणों की भूमि कर के मामले में सुविधाएँ प्रदान की जाती थी। कुछ सम्पन्न ब्राह्मणों ने भू राजस्व और सायर की इजारेदारी के काम को अपना लिया था।[18] राजस्थान के प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर स्थित नगरों तथा कस्बों के कुछ संपन्न ब्राह्मणों ने व्यापार–वाणिज्य तथा साहूकारी के व्यवसाय भी अपना रखे थे। बीकानेर के सारस्वत और पालीवाल, जोधपुर के श्रीमाली और नंदवाना भरतपुर के गॉड और बांसवाड़ा के नागर ब्राह्मण कुशल व्यापारी तथा प्रतिष्ठित

साहूकार थे। राजकीय सेवाओं में भी ब्राह्मणों की नियुक्ति होती थी। जोधपुर राज्य में जोशी सम्भूदत्त और जोशी हंसराज दीवान पद तक पहुंचे थे।[19] अवसर पड़ने पर कूटनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यों का उत्तरदायित्व भी इन्हें सौंपा जाता था। उदाहरणार्थ– जोधपुर राज्य और अंग्रेजों के मध्य संपन्न संधि पर महाराजा की तरफ से व्यास विशनराम और व्यास अमेंराम ने हस्ताक्षर किए थे।[20]

19वीं सदी में विभिन्न व्यवसायों में लगे रहने पर भी सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मण पुरानी परंपराओं को कायम रखने पर जोर देते रहे। इसी से सामान्य जनता इन्हें हिंदू संस्कृति का संरक्षक समझती रही और शासक तथा सामन्त भी इन्हें पर्याप्त मान सम्मान देते रहे किंतु आधुनिक शिक्षा के प्रसार, मध्यम वर्ग के अभ्युदय, राज्यों की प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति संबंधी नीति और अंग्रेजी नियमों की एकरूपता से ब्राह्मणों के नेतृत्व को चुनौती उत्पन्न हो गई।

राजपूत :–

राजकुलों से संबंधित एवं शासक जाति के सदस्य होने के नाते ब्राह्मणों के बाद समाज में राजपूतों का स्थान था। उनके पास वंशानुगत रूप में 5–10 बीघा से लेकर बड़ी–बड़ी जागीरें थी। यह जाति राजस्थान में एक अभिजात वर्ग की भांति रही और राजपूत अपनी मान मर्यादा तथा उससे संबंधित शिष्टाचार के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थे।[21] सामान्यतः राजकीय सेवा अथवा सामंतों की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यवसाय को अपनाना वे अपने कुल की प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते थे।[22] राजपूत राज्यों के ब्रिटिश संरक्षण में आने से राजपूतों के लिए सैनिक सेवा का व्यापक क्षेत्र संकुचित तथा सीमित हो गया। राज्यों की असैनिक सेवाओं के क्षेत्र में अन्य जातियों का प्रभाव बढ़ता गया। व्यापार–वाणिज्य एवं धन संपत्ति अर्जित करने के अन्य पेशों में रुचि न होने के कारण साधारण राजपूतों को कृषि कर्म अपनाने पर विवश हो जाना पड़ा। ब्रिटिश काल के पूर्व अधिकांश जमींदार राजपूत थे और उनकी भूमि पर अन्य काश्तकार खेती करते थे जो संबंधित जमीदारों को भू–राजस्व चुका देते थे।

अब अधिकांश छोटे–छोटे भूस्वामी राजपूतों ने अपनी भूमि पर स्वयं खेती करना शुरू कर दिया, लेकिन इसमें उन्हें नौकर चाकरों से काम करवाना पड़ा। राजपूत शासकों और सामंतों ने कृषि कर्म अपनाने वाले राजपूतों को भूमि कर के संबंध में कई प्रकार की छूट प्रदान की[23] इससे स्पष्ट है कि 19वीं सदी में राजपूत जाति के प्रभाव में कमी आने लग गई थी।

वैश्य :–

राजस्थान में वैश्य अथवा महाजन को सामान्यतः बनिया कहा जाता था।[24] व्यापार वाणिज्य और लेनदेन वेश्यों का परंपरागत व्यवसाय था। राज्य के अहलकार अथवा जागीरदारों के कामदार होने से और बोहरगत (लेनदेन) के कारण उनका प्रभाव काफी बढ़ गया था।

वैश्यों के कुछ प्रमुख घरानें राज्यों के साहूकार तथा बैंकर्स भी बने हुए थे। अजमेर के सेठ सुमेरमल उम्मेदमल ने कई वर्षों तक जोधपुर,, जयपुर, किशनगढ़, टोंक आदि राज्यों के लिए खजानेदार और बैंकर्स का काम किया था।[25] रियां के सेठ मुणोत जीवनदास भी लाखों रुपयों की हुंडियों का लेनदेन करते थे।[26] अजमेर के सेठ मुनीराम लख्मीचंद भी कई राज्यों के साहूकार थे। 1832 ई. में स्वयं अंग्रेज सरकार ने भी उनसे 10,00,000 का ऋण लिया था।[27] कर्नल टॉड ने सेठ जोरावरमल को इंदौर से बुलाकर उदयपुर राज्य का बैंकर

तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किया था।[28] ब्रिटीश सरकार के खिराज को चुकाने के लिए भी राजपूत राजाओं को प्रायः सेठ साहूकारों की शरण लेनी पड़ती थी। उदाहरणार्थ 1823 ई. में उदयपुर राज्य ने स्थानीय सेठों से 2,25,000 रुपए का कर्ज लेकर खिराज चुकाया।[29] इसी प्रकार 1827 ई. में जयपुर राज्य को स्थानीय सेठ साहूकारों से 8,00,000 कर्ज लेकर खिराज चुकाना पड़ा।[30] जोधपुर, कोटा आदि राज्यों ने भी समय–समय पर सेठ साहूकारों से कर्ज लेकर खिराज चुकाया।[31]

19वीं सदी में राज्यों के सैनिक और असैनिक पदों पर भी वैश्य काफी मात्रा में आसीन थे। असैनिक राजकीय सेवाओं पर तो उनका लगभग एकाधिकार ही कायम हो गया था। जोधपुर राज्य में सिंघवी इंद्रराज, गुलराज, फत्तेराज मेहता, अखैचंद और भंडारी लखीम लख्मीचंद यह सभी लोग दीवान पद तक पहुंचे थे।[32] उदयपुर राज्य में मेहताओं का भारी प्रभाव रहा।[33] बीकानेर के मेहताओं में सबसे प्रसिद्ध हिंदूमल हुआ जो राज्य के दीवान पद तक पहुंचा था।[34]

ब्रिटिश संरक्षण की स्थापना के बाद कई वैश्यों ने अध्यापन कार्य को भी अपना व्यवसाय बना लिया और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। गांवों में बसे कई वैश्यों ने कृषि कर्म को अपना लिया परंतु राजपूतों की भांति वे लोग भी सामान्यतः मजदूरों से खेती करवाते थे।

कृषि कर्मी और व्यवसायिक जातियां :–

राजस्थान के कृषि कर्मी जातियों यथा जाट, गुर्जर, बिश्नोई, सीरवी, कुनबी, कीर, अहीर इत्यादि की व्यवसायिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ परंतु बढ़ते हुए भूमि कर के कारण वे ऋणग्रस्त होते चले गए और कईयों को कृषि कर्म त्याग कर शहरों में आजीविका की खोज करनी पड़ी।

व्यवसाई जातियों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया और ये पहले की भांति अपना परंपरागत व्यवसाय करती रही। बड़े–बड़े नगरों तथा ब्रिटिश प्रांतों में कुशल मजदूरों की मांग बढ़ जाने से इन लोगों में शहरों की ओर जाने की प्रवृत्ति बढ़ी। कसाई, बलाई, भंगी, रैगर आदि अछूत जातियों की व्यवसायिक स्थिति में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया सिवाय इसके कि उनमें से कुछ ने कृषि को भी अपना व्यवसाय बना लिया।

सन्दर्भ सूची :–

1. राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जोधपुर रिकॉर्ड) रेजिडेंसी फाइल नंबर 14
2. डॉ. गोपीनाथ शर्मा– राजपूत स्टडीज, पृष्ठ 175
3. (क) राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर रिकॉर्ड फुटकर बही, राजीनामा संवत् 1913 पृष्ठ 2,
   (ख) मारवाड़ मर्दुशुमारी रिपोर्ट 1891, पृष्ठ 32
4. जोधपुर की ख्यात, पृष्ठ 103
5. राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर रिकॉर्ड हथबही संवत 1948, पृष्ठ 3
6. बही कोटा रिकॉर्ड भंडार नंबर 20 बस्ता नंबर 61 विक्रम संवत् उन्नीस सौ दो।
7. बही जोधपुर रिकॉर्ड सनद परवाना बही संवत् 1858, पृष्ठ 39
8. राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर रिकॉर्ड फुटकर बही कबूलियत संवत् 1904–1906
9. बही चित्रसेन डोढी तालका बही विक्रम संवत् 1911
10. बही (क) जोधपुर रिकोर्ड सनद परवाना बही विक्रम संवत 1858 पृष्ठ 52,

(ख) कोटा रिकॉर्ड भंडार नंबर 3 विक्रम संवत् 1881
11. बही (क) जोधपुर रिकार्ड्स रेजिडेंसी फाइल नंबर सी 2/3 पार्ट फर्स्ट 1920 ई. (ख) उदयपुर रिकार्ड्स मेहता संग्राम सिंह कलेक्शंस फाइल नंबर 743
12. राजस्थान राज्य अभिलेखागार (क) जोधपुर रिकॉर्ड दस्तरी रिकॉर्ड्स, फाइल नंबर 14,
(ख) कोटा रियासत भंडार नंबर 2/2, बस्ता नंबर 76, विक्रम संवत 1915
13. राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रिकॉर्ड्स देवस्थान जमा खर्च बही नंबर 17 विक्रम संवत 1930
14. बही (क) जोधपुर रिकॉर्ड्स– दस्तरी रिकॉर्ड्स फाइल नंबर 14 विक्रम संवत 1882,
(ख) कोटा रिकॉर्ड्स– भंडार नंबर 3 विक्रम संवत 1895,
(ग) उदयपुर रिकॉर्डस– मेहता संग्राम सिंह कलेक्शन्स फाइल नंबर 257
15. (क) उदयपुर रिकॉर्ड– बख्शीखाना वही नंबर 61 विक्रम संवत 1902,
(ख) कोटा रिकॉर्ड्स– भंडार नंबर 2, बस्ता नंबर 3 विक्रम संवत् 1864
16. जोधपुर रिकॉर्डस– दस्तरी रिकॉर्डस फाइल नंबर 15 विक्रम संवत 1822
17. दस्तरी रिकॉर्डस– फाइल नंबर 77 विक्रम संवत 1902, मेहता संग्राम सिंह कलेक्शंस–फाइल नंबर 84 विक्रम संवत 1921
18. जोधपुर रिकॉर्ड्स– हथबही नंबर 3, विक्रम संवत् 1861 पृष्ठ 26
19. रेड– मारवाड़ का इतिहास, खंड 2, पृष्ठ 426
20. जोधपुर रिकॉर्ड्स – खरीता वही नंबर 12 पृष्ठ 327–28
21. एम ए शेरिंग–हिंदू ट्राइब्स एंड कास्ट्स, पृष्ठ 118–119
22. केम्पलेब – एथनोलाजी ऑफ इंडिया, पृष्ठ 86–87 (शेरिंग की पुस्तक से उद्धत पृष्ठ 119)
23. जोधपुर रिकॉर्ड्स– दफ्तर हुजूर बही नंबर 24, विक्रम संवत 1880
24. (क) श्यामलदास–वीर विनोद,पृष्ठ 119,
(ख) मारवाड़ मर्दुमशुमारी रिपोर्ट,1891 पृष्ठ 421
25. पो.क.'ए' मार्च 1880 नंबर 599–627 और अक्टूबर 1894,नंबर 165–68
26. सुखसंपत्तिराय–ओसवाल जाति का इतिहास पृष्ठ 72
27. पो.क.18 जून 1832 नंबर 27
28. (क) कर्नल टॉड, खंड 2, पृष्ठ 445
(ख) ओझा– उदयपुर राज्य का इतिहास, खंड 2 पृष्ठ 709
29. पो.क. 11 मार्च 1831, नंबर 48
30. बही, 9 नवंबर –1827 नंबर 21
31. (क) जोधपुर रिकार्ड्स – (1) सनद बही नंबर 144 पृष्ठ 420, (2) बही नंबर 146 पृष्ठ 165–67,
(ख) कोटा रिकॉर्ड्स–भंडार नंबर 2/2 बस्ता नंबर 140 विक्रम संवत 1884
32. जोधपुर रिकॉर्ड्स (क) बस्ता नंबर 34, फाइल नंबर 40, पृष्ठ 107,
(ख) बस्ता नंबर 40, फाइल नंबर 7, पृष्ठ 114
33. उदयपुर रिकॉर्ड्स – बही दफ्तर बख्शीखाना नंबर 83, 84, 85 और 86
34. ओझा– बीकानेर राज्य का इतिहास खंड 2, पृष्ठ 752–55

manjukarol1966@gmail.com
Mob. 9928081792

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 35-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बीकानेर में गैर सरकारी संगठनों की गतिविधियां

डॉ अशोक कुमार व्यास
सहायक आचार्य, बिनानी कन्या महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान।

राव बीका की नगरी बीकानेर को पूर्व में एशिया का सबसे बड़ा गांव कहा जाता था, यहां रेतीले टीले, दूर तक सुनसान गांवों में बिजली, सड़क, पानी, शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव था, स्वतन्त्रता पश्चात् शहरीकरण के दौर में बीकानेर का स्थापत्य क्षेत्र तो नगरीय स्वरूप में आ गया, परन्तु आस–पास के गांवों में विकास लम्बे समय तक वंचित ही रहा, धर्मनगरी बीकानेर के प्रमुख ग्रामीण क्षेत्र कोलायत जिसे हिन्दु धर्म ग्रंथों में तीर्थस्थल कहा गया है वहां भी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति संभव नहीं थी, बीकानेर जिले में आधारभूत, सुविधाओं, आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों, उ़द्योग विकास एवं सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन का अत्यधिक अभाव था, शिक्षा स्वास्थ्य एवं तकनीकी के क्षेत्र में यहां विकास शुन्य के बराबर था, ग्रामीण क्षेत्रों के कृषि आधारित जीवनयापन करने वाले लोगों के लिये जीवन निर्वाह अत्यधिक कठिन था, यहां कि भौगोलिक स्थिति गर्म एवं शुष्क प्रदेश की रही है, वर्षा जल के माध्यम से कृषि करके यहां का ग्रामीण वर्ग अपना जीवनयापन करता रहा है। स्वतन्त्रता पश्चात् भी कुछ वर्षो तक यहां विकास की गति धीमी ही रही, सदैव राजनीतिक उपेक्षा के शिकार रहें बीकानेर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में शिक्षा की अलख जगाने के उद्‌देश्य से बीकानेर के इस क्षेत्र के प्रथम गैर सरकारी संगठन के रूप में वर्ष 1965 में बीकानेर प्रौढ़ शिक्षा समिति की स्थापना की गई जिसे 1968 से सरकार ने विशिष्ट मान्यता प्राप्त संस्था का दर्जा दिया गया, जिले के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के अग्रणी विकास में गैर सरकारी संगठनों का दौर यहां से शुरू हो गया, फिर लगातार गैर सरकारी संगठनों की पंजीकरण संख्या में वृद्धि होती रही, इसी क्रम में ग्रामीण विकास के उद्‌देश्य से स्थापित गैर सरकारी संगठन उरमूल ट्रस्ट जिसकी स्थापना 1983 में हुई का योगदान भी प्रमुख रहा।

बीकानेर जिले में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के विभिन्न आयाम :–

बीकानेर जिले में गांवों के विकास की अनवरत गंगा बहाने में गैर सरकारी संगठनों का योगदान अतुलनीय रहा हैं, स्वतन्त्रता पूर्व से असंगठित परन्तु दया एवं सेवा से ओतप्रोत यहां की जीवनशैली में ऐसे लोग हुए हैं जो सदैव समाज सेवा एवं कल्याण की भावना को जीवन का मूल उद्‌देश्य मानते रहे है। गैर सरकारी संगठन आवश्यकता अनुसार निराश्रित, अपाहिज, वृद्ध तथा कमजोर लोगों के लिए सामाजिक सेवाएं प्रदान करते हैं, यह संगठन अपनी कुशल श्रम शक्ति समाजोत्थान की भावना के साथ जितना धरातल पर कार्य करते हैं, उतना ही सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन में सदैव अग्रणी रहे हैं, ऐसे अनकों योजनाएं हैं जिनकी क्रियान्वित में यदि गैर सरकारी संगठनों का योगदान न हो तो वह अपने निर्धारित न्यूनतम

लक्ष्यों तक भी नहीं पहुंचती है।

बीकानेर जिले के ग्रामीण विकास में गैर सरकारी संगठनों द्वारा किये जाने मुख्य कार्यक्रम :-

स्वास्थ्य : गैर सरकारी संगठन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण विकास में सकारात्मक कार्य कर नये आयाम स्थापित कर रहे हैं। गांवों में गैर सरकारी संगठनों ने दाइयों एवं संगठनों के साथ सहभागिता और विश्वास के आधार पर कार्य आरम्भ किया। ग्रामीणों का विश्वास जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे स्वास्थ्य गतिविधियां प्रगति करती रही है। स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों एवं गतिविधियों को संचालित करने हेतु गैर सरकारी संगठनों द्वारा विभिन्न तकनीक एवं साधनों का प्रयोग किया गया है।

शिक्षा एवं मानव संसाधन विकास : शिक्षा मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, बिना शिक्षा के व्यक्ति अज्ञानता एवं अन्धकारमय जीवन यापन करता है। बीकानेर जिले में स्वतन्त्रता पश्चात् से ही अशिक्षा का प्रकोप ग्रामीण क्षेत्रों में बना रहा है, यहां दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में लोग कर्मठ एवं साहसी हैं परन्तु शिक्षा के अभाव में रोजगार के कुशल स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। बीकानेर में स्वतन्त्रता पश्चात् से ही इन क्षेत्रों में शिक्षा, कौशल विकास जैसे कार्यक्रमों से लोगों को जोड़ने का श्रेय गैर सरकारी संगठनों को जाता है। आज भी ऐसे संगठन गांव, ढाणी तक शिक्षा की अलख जगाने एवं ग्रामीण मानव संसाधनों के विकास हेतु कौशल विकास प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से लगातार कार्य कर रहे हैं।

कृषि एवं पशुपालन : राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के साझेदारी स्वरूप में कई सक्रिय गैर सरकारी संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रहे है। इन संगठनों का प्रमुख उद्देश्य, कृषि एवं पशुपालन को बढ़ावा देना सदैव रहा है। कृषि एवं आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध करवाना, किसानों के लिए स्वयं सहायता समूहों का निर्माण एवं ग्रामीण बैंकों से लेन देनों हेतु प्रेरित किया जाता हैं, कृषि एवं पशुपालन विकास से संबंधित सरकारी गैर सरकारी तकनीकी एवं शोध संस्थाओं से सहयोग लेकर तकनीकी हस्तांतरण को गति देना जैसे प्रमुख कार्यों को शामिल किया जाता है।

आर्थिक विकास : बीकानेर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों की प्रमुख समस्याओं शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ वित्तीय रूप से कमजोर जीवन भी विकास को अवरूद्ध कर रहा है। इस परिस्थिति से निपटने के लिए गैर सरकारी संगठनों ने रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, कौशल विकास जैसे कार्यक्रमों का संचालन शुरू किया, ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति कमजोर है और जिसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य और शिक्षा पर भी पड़ रहा है, संगठनों ने अपनी निजी प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों का संचालन प्रारभ किया एवं इससे उत्पन्न समस्याओं के निराकरण को प्रमुखता देकर ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयासों को आरम्भ किया। बीकानेर हस्तकला, उस्ता कला, ऊन व्यवसाय जैसे व्यावसायिक क्षेत्रों में अग्रणी रहा है। गैर सरकारी संगठनों ने इन व्यावसायिक क्रियाओं को गांव ढाणी तक पहुंचाया और रोजगार अर्जन का मार्ग प्रशस्त किया है।

महिला सशक्तिकरण : गैर सरकारी संगठनों ने विकास परियोजनाओं के माध्यम से महिला विकास कार्यों को करने में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है, जिसमें महिला कौशल प्रशिक्षण, शिक्षा प्रचार-प्रसार, स्वास्थ्य जानकारियां, गृह उद्योग विकास, स्वरोजगार जैसे कार्यक्रमों का आयोजन कर महिलाओं के उत्थान हेतु कार्य किया जा रहा है। महिला स्वयं सहायता समूहों का निर्माण एवं नाबार्ड की योजनाओं के माध्यम से उन्हें वित्त प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान कर स्वावलम्बी बनाया जा रहा है। गैर सरकारी संगठनों द्वारा महिला शिक्षा विकास

हेतु निःशुल्क शिक्षण व्यवस्था, कोचिंग सुविधा, हॉस्टल सुविधा, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा तथा उच्च प्राथमिक बालिका शिविरों का आयोजन किया जा रहा है, ताकि महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

जल संचयन पर्यावरण एवं स्वच्छता : बीकानेर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक वृद्धि, तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक उपलब्धियां और औद्योगिक विकास द्वारा जनता को लाभ तो दिया गया किन्तु इसके फलस्वरूप कई सामाजिक और पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएं इस क्षेत्र में उत्पन्न हुई है जैसे शुद्ध वायु का अभाव, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, प्राकृतिक स्रोतों का नष्ट होना, जंगली जानवरों एवं वनों का नष्ट होना आदि, वास्तविकता तो यह है कि विकास के साथ पर्यावरण संतुलन का रहना मानव जाति हेतु अच्छा रहता है, गैर सरकारी संगठनों ने इस क्षेत्र में पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने के लिए उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के संग्रहण एवं प्रबन्धन पर बल देकर काफी कार्य किया है। अकाल राहत एवं सुखा ग्रस्त इलाकों में यह संगठन विभिन्न कार्ययोजनाओं के माध्यम से लगातार कार्य कर रहे है।

बीकानेर जिले में गैर सरकारी संगठनों की प्रमुख समस्याएं :–

1. **मानव संसाधन एवं कार्मिकों संबंधी समस्या :** गैर सरकारी संगठनों के उद्देश्यपूर्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उसकी मानवीय शक्ति का होता हैं उसके कार्मिकों का दृढ़ कार्य संकल्प उसके उद्देश्यों को सिद्ध करने में योगदान प्रदान करता है। कुशल समाज सेवी भावना से जुड़े लोग ही गैर सरकारी संगठनों के साथ–साथ ग्रामीण विकास का उद्देश्य पूरा कर सकते हैं, वर्तमान के भौतिकतावादी युग में ग्रामीण परिवेश में कार्य करना बहुत कठिन है।

2. **स्वास्थ्य संबंधी समस्या :** बीकानेर जिले में गैर सरकारी संगठन स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों का संचालन कार्य भी करते है। बीकानेर जिले का ग्रामीण क्षेत्र अशिक्षित एवं पिछड़ेपन के कारण यहां के अधिकतर लोगों में अंधविश्वास की भावना अधिक रहती हैं, स्वास्थ्य चेतना का अभाव ग्रामीण क्षेत्र की प्रमुख समस्या है, गैर सरकारी संगठनों के सामने ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों से जोड़ने एवं लगातार सम्पर्क बनाये रखने की कठिनाई निरन्तर उनके सामने रहती है।

3. **शिक्षा का अभाव एवं योजना क्रियान्वयन की समस्या :** बीकानेर जिले में कार्यरत प्रौढ़ शिक्षा समिति, उरमूल ट्रस्ट जैसे प्रमुख गैर सरकारी संगठन शिक्षा के क्षेत्र में लगातार कार्य कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को शिक्षित करने एवं उससे धर्नोपार्जन हेतु प्रेरित करने हेतु लगातार कार्य कर रहे हैं लेकिन उन्हें वांछित सफलता अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। ग्रामीणों में व्याप्त अशिक्षा, महिला शिक्षा के प्रति संकुचित सोच, शिक्षा को नौकरी या व्यवसाय से जोड़ने की जल्दबाजी, जागरूकता का अभाव आदि ऐसे कुछ तत्व ग्रामीण परिवेश में जुड़े है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में कार्ययोजनाओं की क्रियान्विति में अड़चने उत्पन्न हो रही है।

4. **आर्थिक क्षेत्र की समस्या :** गैर सरकारी संगठनों की एक प्रमुख समस्या आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र से जुड़ी हुई है, प्रमुख योजनाओं के क्रियान्वयन में मिलने वाला अनुदान एवं वित्तीय सहायता राशि इतनी कम होती हैं कि उसका वितरण कुशलतम ढंग से नहीं हो पाता है, हालांकि गैर सरकारी संगठन स्थानीय दानदाताओं एवं विदेशी सहायता से भी कार्य करते हैं, फिर भी उन्हें प्रत्येक कार्य के लिए होने वाली आर्थिक समस्या का सामना तो करना ही पड़ता है।

5. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्या :** बीकानेर जिला विविध सामाजिक एवं संस्कृति का मिलाजुला केन्द्र है यहां कि संस्कृति को गंगा जमूनी संस्कृति कहा जाता रहा है। धर्म, आस्था एवं सामाजिक रूपरेखा यहां की जीवन शैली है लेकिन यह सामाजिक एवं संस्कृति ही यहां के गांवों के विकास में बाधक रहे है। आज भी यहां के ग्रामीण सामाजिक रूढ़िवादिता से इतने प्रभावित है कि वह वर्तमान सांस्कृतिक परिवर्तन को स्वीकार्य नहीं कर रहे है। ग्रामीण समाज में रूढ़ियां, परम्पराएं तथा मान्यता बहुत गहराई से व्याप्त है। बालश्रम, महिला अत्याचार, महिला कल्याण, बाल–विवाह, बेटी बचाओ बेटी पढाओ जैसी योजनाओं पर कार्य करने वाले संगठनों को प्रायः रूढ़िवादी समाज की मानसिकता का सामना करना पड़ता है। इन विकट परिस्थितियों में यह संगठन अपना कार्य क्षेत्र बदल लेते है नहीं तो वह इस परिवेश में ही अपने आप ढाल लेते हैं जिससे गैर सरकारी संगठनों के मध्य धर्म, जात, समाज इनका दबदबा बढ़ने लगता है।

6. **महिला विकास एवं सशक्तिकरण के क्षेत्र में व्याप्त समस्या :** बीकानेर जिले के गैर सरकारी संगठन महिला उत्थान एवं विकास की गतिविधियों में शुरु से ही कार्यरत रहे हैं, इन गतिविधियों के संचालन में आज तक किये गये कार्यों में सफल परिणाम उन्हें अभी तक प्राप्त नहीं हुए है। विविध सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले विविध प्रकार के गैर सरकारी संगठन है जो कि निस्वार्थ भावना से केवल समाज सेवा अथवा राष्ट्र सेवा का लक्ष्य रखकर महिला सशक्तिकरण में योगदान कर रहे है। ग्रामीण क्षेत्र पुरुष प्रधानता के कारण यहां की महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण हेतु चलाई जाने वाली योजनाओं का लाभ इन तक नहीं पहुंचाया जा सका है, गैर सरकारी संगठनों में पुरुष कार्यकताओं की संख्या अधिक होती है, वह अपनी योजनाओं एवं कार्यों को जब ग्रामीण महिलाओं तक ले जाते हैं तो प्रथम तो पुरुष उन्हें मिलने नहीं देते है और बाद में महिलाओं की आवाज इतनी कमजोर कर दी गई है कि वह अपने अत्याचार के खिलाफ बोलने एवं अपने भविष्य के नये आयाम निर्माण से डरती है।

7. **जागरूकता का अभाव :** गैर सरकारी संगठन अपने कार्यों एवं योजनाओं का संचालन जागरूकता को बढ़ा कर ही करते हैं, संगठन सरकारी एवं विदेशी एजेन्सियों से जो परियोजनाएं प्राप्त करते है उस पर क्षेत्र विशेष के लोगों के साथ वातावरण का निर्माण करते हैं, और जनसहभागिता के आधार पर परियोजनाओं की गतिविधियों का संचालन करते है। गैर सरकारी संगठनों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह रही है कि लोगों को परियोजनाओं के बारे में जानकारियां तो रहती है पर वह जागरूक नहीं बन पाते हैं।

8. **यातायात साधनों की समस्या :** बीकानेर जिला पश्चिमी राजस्थान में संभाग का महत्त्वपूर्ण भाग है। यहां अनेकों गैर सरकारी संगठन कार्यरत है, विपरीत भौगोलिक परिस्थितियों के साथ अविकसित परिवहन तंत्र भी इन संगठनों की समस्याओं को बढ़ा देता है। बीकानेर जिले में कई ऐसे गांव है जहां पक्की सड़कों का अभाव हैं जिसके कारण बस सुविधाऐं भी उपलब्ध नहीं है, केवल निजी वाहनों से आना–जाना हो सकता है। गांवों एवं ढाणियों के मध्यम दूरी काफी है। गैर सरकारी संगठनों के कार्यकर्ताओं को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं, विकट परिस्थितियों में कई बार तयशुदा कार्यक्रमों को परिवर्तित करना पड़ता है, जिसकी वजह से निश्चित लक्ष्यों को निश्चित अवधि में प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है।

9. **गरीबी एवं धन का अभाव :** गांवों में गरीबी एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है, गरीबी के कारण ग्रामीणों को भोजन, वस्त्र और निवास का अभाव होता है, ज्यादातर ग्रामीण गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन

कर रहे है, गैर सरकारी संगठन जिन वंचित वर्गों के मध्य कार्य कर रहे हैं वहां यह समस्या बहुत ज्यादा है। ग्रामीण स्वास्थ्य, शिक्षा को प्राथमिकता न देकर भोजन आवास सुविधा की मांग करते हैं एवं संगठनों से प्रत्यक्ष लाभ की उम्मीद करते हैं, ऐसे में योजनाओं के क्रियान्वयन की समस्या उत्पन्न होती है।

बीकानेर जिले में गैर सरकारी संगठनों की समस्याओं का समाधान :–

1. गैर सरकारी संगठनों के कुशल संचालन हेतु युवा वर्ग को प्रेरित एवं उनको संगठित कर इस कार्य से जुड़ने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, युवाओं को योजना शिविरों से जोड़ा जाए तथा उनमें समाजसेवी भावना का विकास किया जाना चाहिए।

2. कठिन भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए संगठनों को लगातार पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करना चाहिए, इस क्षेत्र में व्यापक पर्याप्त सुधारों की आवश्यकता है। पर्यावरण के क्षेत्र में व्यापक चेतना जागृत की जाये, स्कूलों और महाविद्यालयों में इसके सम्बन्ध में चेतना कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते है।

3. गैर सरकारी संगठनों को धरातल पर रहने वाले कर्मठ एवं ईमानदार कार्मिकों का संगठन तैयार करना चाहिए, जो दिखावटी पन एवं छपास रोग से मुक्त हो जिन्हें समाज सेवा की लालसा है, ऐसे लोग ही संगठनों के उद्देश्यों को पूरा करने में सार्थक योगदान दे सकते हैं।

4. गैर सरकारी संगठनों द्वारा अपने किये गये कार्यों की विधिवत रूपरेखा का संकलन कर उन्हें प्रकाशित करवाना चाहिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों तक वितरित भी करवाना चाहिए, जिससे उस संगठन के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ता है एवं इससे ग्रामीण क्षेत्र के लोग संगठन के कार्य योजनाओं से जुड़ने के लिए प्रेरित होते हैं।

5. संगठनों को केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का व्यापक प्रचार–प्रसार करना चाहिए ताकि आमजन तक इन योजनाओं की जानकारी पहुंचे एवं उनसे लाभान्वित हो सके।

6. चिकित्सा एवं स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं के संचालन का कार्य करने वाले गैर सरकारी संगठनों को इस क्षेत्र के प्रशिक्षित कार्मिकों का सहयोग लेना चाहिए, उन्हें विशेष रूप से ऐसे ग्रामीण क्षेत्र जहां स्वास्थ्य केन्द्रों या अस्पतालों का अभाव है वहां कार्य करना चाहिए।

7. गैर सरकारी संगठनों को सरकारी विभागों में नौकरशाही, भ्रष्टाचार जैसी प्रवृतियों पर दबाव बनाये रखने के लिए ग्रामीणों में जागरूकता के संचार के साथ–साथ सूचना के अधिकार के प्रयोग पर बल दिया जाना अत्यधिक आवश्यक है। सहभागिता को बढ़ाए जाने की सम्भावना तभी प्रबल हो पायेगी जब लोकतंत्र की आधारशिला मजबूत होगी।

8. बीकानेर जिले में गैर सरकारी संगठनों द्वारा ग्रामीणों के आर्थिक स्तर में सुधार हेतु विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है, इस क्षेत्र में भी जो आवश्यक सुधार उपेक्षित है जैसे ग्रामीण स्तर पर स्वयं सहायता समूहों की संख्या में बढ़ोतरी की जाए तथा उन्हें जानकारी देने के लिए शिविरों का आयोजन करते रहना चाहिए, आर्थिक संवर्द्धन के लिए स्थाई आय के साधनों के विकास में स्थानीय साधनों को विकसित करने के लिए विदेशी एवं घरेलू परियोजनाओं को कार्यक्षेत्र से जोड़ने की आवश्यकता है।

9. संगठनों द्वारा अपने स्तर पर ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए सम्मेलन, महिला समारोह, किसान मेलों, संगठनों की बैठक, संगठनों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि वह ग्रामीण क्षेत्रों की मूलभूत समस्याओं को समाप्त कर व्यवस्था को सुदृढ़ कर सके।

10. नाबार्ड के योगदान से स्वयं सहायता समूह के संगठनों के निर्माण एवं विस्तार में योगदान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :-

बीकानेर जिले के सुदुर ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत समस्याओं के समाधन में अनेकों संगठन कार्यरत है एवं इनके द्वारा किये जाने वाले जनोपयोगी कार्यों से बीकानेर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों को देश–विदेश तक नई पहचान मिली है, सरकारी योजनाओं एवं संगठन के योगदान से विदेशी संगठनों ने भी इन क्षेत्रों में अनेक विकासोन्मुखी कार्य किये हैं। विश्व मानचित्र पर संगठनात्मक कार्यों के प्रभाव से जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी मूलभूत सुविधाओं का विकास संगठनों के माध्यम से हो रहा गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से बीकानेर के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेकों कार्य किये गये। ऐसे अनेकों संगठन है जिन्होंने सरकारी स्तर पर संचालित केन्द्रीय एवं राज्य प्रवर्तित ग्रामीण योजनाओं को ग्रामीण वर्ग के लोगों तक पहुंचाने एवं उनके परिणाम सकारात्मक करने में योगदान दिया है। वर्तमान में बीकानेर जिले में अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा स्वास्थ्य एवं तकनीकी का विस्तार हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. व्यास शिखा. (2004). ''राज्य की कल्याणकारी योजनाएं (विकलांगों के विशेष संदर्भ में)'', ऑक्सफोर्ड बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर. पृ. 195.
2. शाह जी एवं चतुर्वेदी, एच. आर. (1983). ''गांधीयन प्रपोच और रूरल डवलपमेन्ट पी. वर्ल्ड एम्पायरमेन्ट'', अजन्ता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
3. ''राजस्थान की स्वयं सेवी संस्थाएं : एक परिचयावली'' (1998). राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति, जयपुर. पृ. 3.
4. ''राजस्थान की स्वयं सेवी संस्थाएं : एक परिचयावली'' (1998). राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति, जयपुर. पृ. 3.
5. उपाध्याय, विश्वामित्र (1993). ''ग्राम पंचायतों को नवजीवन देने का समय''. कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 41-47

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बीकानेर के पुष्करणा ब्राह्मणों का योगदान

डॉ. मुकेश हर्ष
सहायक आचार्य, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर।

बीकानेर राज्य में सन् 1900–49 तक जितने भी आंदोलन एवं जन जाग्रति फैलाने के प्रयास हुए, उसमें अनगिनत लोगों ने अपना प्रत्यक्ष–परोक्ष योगदान दिया। जिसमें ''पुष्करणा ब्राह्मण'' वर्ग के लोगों ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन आन्दोलनकारियों में से कई ऐसे व्यक्ति भी थे, जिन्होनें स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया और जेलों में दिल को दहला देने वाली, कुपित कर देने वाली कठोर यातनाएँ भुगतने के साथ राज्य से निर्वासित होकर एकांकी जीवन व्यतीत किया व अपार कष्ट झेले। ये ऐसे व्यक्ति थे जिनकी बात में बल था तथा जिनके एक ही इशारे पर जनता बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को तैयार हो जाती थी। ऐसे व्यक्तियों को अगर लोक नेताओं की श्रेणी मे रखा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। महान पुष्करणा नेताओं ने तत्कालीन दिग्गज नेताओं के साथ मिल–जुलकर कार्य किया। जिनमें रघुवर दयाल गोयल, पं. मघाराज वैद्य, सत्यनारायण व स्व. मूलचंद पारीक, रामनारायण शर्मा (जीवित) आदि प्रमुख थे, जिनके जीवंत विचारों से यह विषय और प्रकाशित व सत्यता के साथ उद्घोषित हुआ।

यद्यपि सरकार ने केवल जेल यात्रा करने वाले व मार खाने वालों को ही पूर्ण स्वतंत्रता सेनानी माना है। इसके अतिरिक्त कई नेताओं से अधमरी हालत में हस्ताक्षर करवाकर कमजोर भी साबित करवाने का प्रयास किया। परन्तु वे सभी व्यक्ति इस महान स्वतंत्रता आंदोलन रूपी यज्ञ में भस्मसात् होने वाली विभूतियाँ व निधि है। इसके अतिरिक्त वे व्यक्ति भी स्वतंत्रता सेनानी कहलाने के योग्य है जिन्होनें किसी भी उपाय से चाहे खादी पहनकर, देश भक्ति के गीत गाकर या स्वतंत्रता सेनानियों को किसी भी प्रकार का सहयोग देकर इस आंदोलन को मजबूत बनाया हो चाहे वे जेल न गये हो वे सभी स्वतंत्रता सेनानी की श्रेणी मे आते हैं। ऐसे कुछ एक स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को व्यक्त करने का एक छोटा सा प्रयास किया है। जिसके लिए मुझे स्वतंत्रता सेनानी सत्यनारायण पारीक व मूलचंद पारीक ने भी योगदान दिया है। इस प्रकार के स्वतंत्रता सेनानियों के निर्धारण में यद्यपि सभी को स्थान दे पाना संभव नहीं परन्तु इनमें से कुछ एक के वर्णन उल्लेखनीय है। घर की चारदीवारी को त्यागकर आई महिलाओं का योगदान भी अनुपम है। इसके अतिरिक्त भी कई सेनानियों का वर्णन यहाँ पर नहीं किया जा सका है पर इसका मतलब यह नहीं लिया जा सकता कि वे अध्याय में स्थान पाने के योग्य नहीं वरन् वे भी अन्य सेनानियों के समान किसी भी प्रकार योग्यता में कम नहीं है। प्रमुख सेनानियों का वर्णन अग्रांकित है :–

{1} जीतमलजी पुरोहित ''जीता भा'' :- (जन्म – 1900, मृत्यु – 1964)

जिस प्रकार बाबू मुक्ताप्रसाद जी भाई साबह व रघुवर दयाल ''बाबूजी'' के नाम से पुकारे जाते थे। ठीक वैसे ही स्वतंत्रता का यह दीवाना– श्री जीतमल पुरोहित – ''जीताभा'' के नाम से जाने जाते थे। इनका भी जन्म पुष्करणा वर्ग के संभ्रात परिवार में सन 1900 में हुआ था। राष्ट्रभक्ति और स्वातंत्र्य भाव जैसे आंतरिक गुण इनमें बचपन से ही दिखाई देते थे। जीतमल जी ने जैसलमेर में रहते हुए जयनारायण व्यास और हीरालाल शास्त्री के निर्देशानुसार कार्य किया।[1]

बीकानेर में गोपाल प्रेस के संस्थापक स्व. जीतमल पुरोहित ने सन 1939 में जैसलमेर से पहली बार बीकानेर आये और बाद में स्व. जयनारायणजी के साथ, जब आपने प्रजा परिशद् की स्थापना कर तिरंगा झण्डा लहराया तो इन्हें जैसलमेर से निर्वासित होना पडा। तब से मृत्युपर्यन्त आप बीकानेर में ही रहे। ''जीताभा'' आजादी का एक अलमस्त फक्कड जोगी था, जो जहाँ कहीं भी गया। उसने स्वतंत्रता की अलख जगाई।[2] ''जीता भा'' ने बीकानेर में आकर गोपाल प्रेस के माध्यम से छपने वाली पत्रिकाओं के माध्यम से स्वदेश भक्ति की बातें, खद्दर प्रयोग आदि का अंग्रेजो के प्रतिबंध के बाद भी खूब प्रचार किया। यह प्रेस बीकानेर जोशीवाड़ा क्षेत्र में अव्यस्थित थी। जिससे कई प्रकार के पैम्पलेट छपते थे।[3]

बीकानेर कांग्रेस व बाबू रघुवरदयाल गोयल से आपका घनिष्ठ संबंध रहा है।[4] इसके अलावा गंगादासजी कौशिक, पुरजी महाराज, छोटूलालजी व दाऊजी आचार्य आदि से भी आपके राजनैतिक व घनिष्ठ संबंध रहे है।[5] कठोर तानाशाही आतंक के कारण नगर में तब एक मात्र गोपाल प्रेस ही था। जो राज्य विरोधी साहित्य छापने में साहसी था। इसका अंग्रेजो को भी पूर्ण पता नही चलता था। निर्भीक ''जीता भा'' अपने हाथों से गुप्त रूप से सरकार विरोधी सामग्री बाँटा करते थे। पुरोहित जी सैद्धान्तिक रूप से गॉधीवादी थे व आजन्म इन सिद्धांतों का पालन किया।[6] इस महान स्वतंत्रता सेनानी का देहावसान पावन माह 24 अगस्त 1964 को हो गया था।

{2} छोटूलालजी व्यास :- (जन्म – 1918, मृत्यु – 1988)

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन व समाज सुधार आंदोलन में पुष्करणा वर्ग के एक व्यक्ति का नामोल्लेख प्रमुख रूप से लिया जाता है और वे थे श्री छोटूलाल व्यास। जिनका जन्म पुष्करणा व्यास (लालाणी) परिवार में 5 सितम्बर 1918 को हुआ। इनके पिता का नाम गिरधर लाल व्यास व माता का नाम जेठा देवी था। व्यास जी में राष्ट्र प्रेम की धारा शुरू से प्रवाहित हो रही थी।[7] व्यासजी ने रघुवर दयाल, किसन गोपाल आदि के साथ मिलकर बढ़–चढ़ कर राष्ट्रीयता के कार्य को आगे बढाया। परिषद के कार्यो को भी आगे बढाया।[8]

इन्होंने ब्यावर (अजमेर) में 31 दिसम्बर से 2 जनवरी 1937 तक ''राजपूताना मध्य भारत छात्र'' कांफ्रेन्स आयोजित की थी, तब इन्होंने भाग लिया था।[9] अग्रेंजी शासन से प्रभावित 'छात्र वर्ग' भी स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े इसमें भी पुष्करणा वर्ग के सदस्य छोटूलालजी व्यास तथा सत्यनारायण हर्ष व सत्यप्रकाश गुप्ता आदि थे।[10] जून 1941 में बनारस विश्वविधालय के छात्रों जिनमें कन्हैयालाल गोस्वामी, एस.एन. हर्ष, छोटूलालजी व्यास आदि ने मिलकर ''छात्र साहित्य मंडल'' संस्था स्थापित की। जिसका न कोई अध्यक्ष न कोई मंत्री था।[11] 18 जून 1941 को इस संस्था ने बीकानेर शहर में एक सभा का आयोजन किया।[12] 26 दिसम्बर 1948 को हुए हरिजनोत्सव आंदोलन में भी जमकर हिस्सा लिया जिसमें व्यास जी के साथ दुर्गादत किराडू, गंगादत रंगा, लक्ष्मीनारायण आदि ने भी भाग लिया। इसी कारण इन्हें जाति समाज से बहिष्कृत कर दिया व रोटी–बेटी का

संबंध विच्छेद कर लिया गया। लक्ष्मीनाथ मंदिर में प्रवेश न करने के कारण वहीं अनशन पर बैठ गये व कुछ दिनों के बाद कई लोग इनके साथ हो गये। तब चिन्तित विनोबा भावे बीकानेर आये व छोटूलालजी व्यास, गंगादतजी, एस.एन. हर्ष आदि को रस पिलाकर अनशन तुड़वाया व आंदोलन समाप्त करवाया।[13]

पारिवारिक सूत्रों से ज्ञात तथ्यों के अनुसार इन्होंने नत्थूसर गेट, हरिजन बस्ती स्थित प्रेम पाठशाला हरिजन बच्चों के अध्ययन हेतु बनाई जो आज भी इसी नाम से सरकार को किराये पर दी हुई है। इन्होंने अपने नेतृत्व में जस्सूसर गेट के बाहर एम.एम. ग्राउण्ड के सामने जन सहयोग से हरिजनों के लिए पचास आवासीय प्लॉट बनवाकर दिये जिनमें कांता खतूरिया ने भी इनको सहयोग दिया। काकड़ा में ''हरिजनोत्थान आंदोलन'' में आने नेतृत्व किया व वहाँ भी हरिजनों के लिए विद्यालय खुलवाए। राष्ट्रीय भावनाओं, समाज सुधार की भावनाओं से युक्त इस महान व्यक्ति का देहावसन 14 अप्रेल 1988 को बीकानेर में हो गया।

{3} **नरसिंह दास थानवी :-** (जन्म – 1914, मृत्यु – 1999)

स्वतंत्रता संग्राम में कई व्यक्ति ऐसे है, जिन्होनें देश की सेवा की व प्रतिफल कुछ नहीं लिया। ऐसे ही थे स्व. नरसिंह दास थानवी। जिनका जन्म संपन्न पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनका जन्म 1914 में हुआ था।[14] इनके जीवन के कई वर्ष कलकत्ता में बीते। कलकत्ता में रहकर वहाँ पर बीकानेर से आये स्वतंत्रता सेनानियो की सहायता करते थे।[15] जब 1936 में कलकत्ता में बीकानेर प्रजामण्डल की स्थापना 'गणेश भवन' में लक्ष्मीदेवी आचार्य की अध्यक्षता में की गई तो थानवी जी भी उसमें सदस्य बने।[16] थानवी जी काफी लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनका संपर्क बीकानेर के लोगों से काफी निकट का था।[17] थानवी जी मण्डल के काम में सदैव व्यस्त रहते थे। थानवी जी को प्रजामण्डल का कोषाध्यक्ष चुना गया व कई जिम्मेदारियाँ सौंपी गई।[18]

इनमें श्रीराम आचार्य, गोयलजी, मघारामजी आदि से काफी अच्छे संबंध थे। वे इनसे प्रभावित थे।[19] इसके अलावा 22 जुलाई 1942 को रावतमल पारीक के घर में जब प्रजा परिषद् की स्थापना की गई तब थानवी जी मौजूद थे। इन्होंने परिषद् के साथ जुड़कर कार्य किए थे।[20] इस महान स्वतंत्रता सेनानी ने अपना समस्त जीवन समाज व देश को अपर्ण किया व 1999 में नाशवान् देह को त्यागकर चले गये।[21]

स्वातंत्र्य आंदोलन में महिलाओं का योगदान :-

भारत की महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में जमकर हिस्सा लिया तथा आंदोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान ही नही दिया बल्कि इतिहास भी रचा है। जैसे – झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गांधी आदि। गांधीजी ने कहा था, '' भारत में ब्रिटीश राज्य मिनटों में समाप्त हो सकता है, बशर्ते भारत की महिलाएँ ऐसा चाहें और इसकी आवश्यकता समझे।'' उनके इस आह्वान का उत्तर उनकी ही पत्नी कस्तूरबा गांधी की ओर से मिला। उनके साथ ऐसी अनेक महिलाएँ थी जिन्होनें अपने देश को स्वतंत्र देखने की खातिर अपने परिवार की परवाह नहीं की। अहिंसा में पूरा विश्वास न करने वाली कई महिलाएं भी आंदोलन में शामिल हुई। उन्होंने क्रांतिकारी तरीके से नये भारत के निर्माण में योगदान दिया। महात्मा गांधी ने कहा था, ''अगर ऊँचे दर्जे का साहस विकसित कर दिया जाए तो भारतीय महिलाएँ स्वभाविक नेता है।''

इसी क्रम में बीकानेर की भी महिलाएँ जिनमें (पुष्करणा ब्राह्मण वर्ग) लक्ष्मीदेवी आचार्य, सरस्वती देवी आचार्य, रूकमणदेवी आचार्य का नाम उल्लेखनीय है। इन महिलाओं ने घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर स्वतंत्र संग्राम में अहम् भूमिका निभाई।

{1} सरस्वती देवी आचार्य :– (जन्म – 1913, मृत्यु – 1948–49 लगभग)

भारतीय स्वाधीनता संग्राम रूपी युद्ध में अनाम उत्सर्ग करने वाली महिलाओं में सरस्वती देवी आचार्य का नाम उल्लेखनीय है। ये लक्ष्मीदेवी आचार्य की रिश्ते में देवरानी लगती थी। इनके आंदोलन कार्यक्रम में भैरूबग्स व उनकी पुत्री ने (रतनीदेवी व्यास पत्नी मनू काका) जो जीवित है। इनके स्वातंत्रय योगदान का विवरण दिया जो प्रमाणिक है। यद्यपि संदर्भित कागजाती साक्ष्यों का अभाव है। परन्तु ये उस अस्पष्टता को दूर करते हैं।

इनका जन्म शिवरात्रि, फाल्गुन माह में 1913 को हुआ था। इनका लालन–पालन ननिहाल पक्ष में हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा बम्बई में ली। इनका विवाह गणेशदासजी आचार्य से हुआ। इन्होंने कलकत्ता में अपने स्वतंत्रता आंदोलन के जीवन की शुरूआत की। उन्होंने कलकत्ता स्थित ''बीकानेर राज्य प्रजामण्डल'' संस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहीं पर स्थित ''गोविन्द भवन'' में जहाँ पर महात्मा गांधी के निर्देशानुसार खादी शुरू किया। इसलिए गांधी के निर्देशानुसार उन्हें गिरफ्तार होने पर मनाही थी।

इन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, नमक आंदोलन आदि कार्यक्रम में जमकर हिस्सा लिया। बहिष्कार आंदोलन में प्रजामण्डल अध्यक्ष लक्ष्मीदेवी आचार्य, रूकमणी देवी आचार्य आदि के अतिरिक्त कई महिलाएँ थी। स्वतंत्रता के प्रति चितिंत इस महिला का संपर्क जमनालाल व इन्दु बजाज, सेनदास गुप्ता व उनकी अंग्रेजी पत्नी, घनश्याम दास व जुगलकिशोर बिडला व उनकी पत्नियों से था। इन्होंने कई आंदोलन में भाग लिया। इनकी मृत्यु देश व बीकानेर के लिए एक अपूरणीय क्षति थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षो के बाद उनका देहावसन फाल्गुन माह में ही हो गया।

{2} लक्ष्मी देवी आचार्य :– (जन्म – 1903, मृत्यु – 1940)

बीकानेर के स्वतंत्रता आंदोलन में अनेक जाने माने सेनानियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे मिलते है, जिनमें पिता–पुत्र, पति–पत्नि ने घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आजादी के दिवानों के साथ अपनी आवाज मिलाई।[22]

इन अविस्मरणीय लोगों में वैद्य मघाराम की बहन खेतू बाई के अतिरिक्त श्री रघुवरदयाल की पुत्री व श्रीराम आचार्य की पत्नी लक्ष्मी देवी आचार्य का नाम अविस्मरणीय है।[23]

श्रीमती लक्ष्मीदेवी का जन्म लगभग 1903 में बीकानेर के पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में हुआ था। परन्तु इनकी अधिकांश राजनीतिक गतिविधियां कलकत्ता में रही।[24]

1930–31 में इन्होंने कलकत्ता में स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया।[25] 1932 में इन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय भाग लिया व मीटिंग के दौरान भाषण दिये तथा जूलुस निकाले, इस पर इन्हें गिरफ्तार करके 6 महीने के लिए जेल भेज दिया गया।[26]

नारी उत्थान मंडल :–

कलकता में इन्होंने ''भारतीय नारी उत्थान मण्डल'' नामक संस्था में कार्य किया। इसके अंतर्गत इन्होंने सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने, जाति प्रथा का विरोध, नारी जाग्रति व राजनीतिक चेतना के साथ शिक्षा प्रसार का भी कार्य किया। 1932 में जेल से रिहा होते ही इन्हें भारतीय नारी उत्थान मण्डल की अध्यक्षा बनाया गया।[27]

कलकता में बीकानेर प्रजा मण्डल की स्थापना :–

1936 में वैघ मघाराम ने 4 अक्टूबर को बीकानेर में ''बीकानेर प्रजा मण्डल'' की स्थापना की। सरकार

प्रजा मण्डल के अस्तित्व को सहने के लिए तैयार नहीं थी। अतः उसी वर्ष वैध मघाराम को 6 वर्ष के लिए देश निकाले की सजा दे दी गई, वे कलकता चले गये।28 जब यह संस्था निष्क्रिय हो गई तो कलकत्ता में बीकानेर के निवासियों ने ''कलकत्ता प्रजा मण्डल'' की स्थापना करने का निश्चय किया।[29] निर्वासित मघाराम जी व लक्ष्मीदास जी स्वामी ने लक्ष्मीदेवी आचार्य से संपर्क स्थापित कर 1936 में बीकानेर प्रजा मण्डल की पुनः कलकता में स्थापना की।[30] प्रजा मण्डल के लगभग 150 सदस्य चुने गये और उसके बाद पदाधिकारी चुने गये। लक्ष्मीदेवी आचार्य (अध्यक्षा), श्रीराम आचार्य (उपाध्यक्ष), मघाराम जी (मंत्री), रणछोड दास डागा (कोष्ठाध्यक्ष) नरसिंहदास थानवी (रेजीडेन्ट) आदि प्रमुख पुष्करणा ब्राह्मण व अन्य लोग थे। इस संस्था ने पहला कार्य ''बीकानेर की थोथी पौथी'' में निरंकुश शासन का उल्लेख किया।[31] लक्ष्मीदेवी ने कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में बीकानेर प्रजामण्डल के लिये लोक समर्थन जुटाया तथा बीकानेर की राजनीतिक गतिविधियों के लिये चंदा उपलब्ध कराया।''[32]

बीकानेर प्रजा मण्डल के तत्वाधान में होने वालें कार्यों में उस महान महिला स्वतंत्रता सेनानी ने सामाजिक मर्यादाओं को त्याग कर बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। दूसरे वर्ष के लिए जब नये पदाधिकारियों को चुना गया। उस समय लक्ष्मीदेवी पुनः अध्यक्षा चुनी गई।[33] कलकत्ता स्थित बीकानेर प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं पर बीकानेर सरकार की बराबर नजर रहती थी।[34] लक्ष्मीदास स्वामी ने कलकता के ''लोकमान्य'' अखबार में मण्डल अध्यक्षा लक्ष्मीदेवी आचार्य के संबंध में खबर छपवाई कि शीघ्र ही बीकानेर में आकर राज्य प्रशासन की ज्यादतियों के खिलाफ सत्याग्रह करेगी। इस खबर को सुनकर राज्य प्रशासन और अधिक सतर्क हो गया।[35]

भारतीय नारी उत्थान मण्डल बंगाल से लंबे समय तक जुड़े रहने के कारण इनका बंगाली समाज में बहुत सम्मान था। हरिपुरा में हुए कांग्रेस अधिवेशन के लिए इन्हें बंगाल से प्रतिनिधित्व करने के लिए भेजा गया।[36] लक्ष्मीदेवी आचार्य कई बार जेल गई और डॉ. हार्डिकर से कांग्रेस की देश सेविका का प्रशिक्षण प्राप्त किया। वास्तव में वह पहली मारवाड़ी स्त्री थी जिसने पर्दे के पीछे से निकलकर देश सेवा का व्रत लिया।[37] डॉ. हार्डिकर ने मुंबई में एक राजनीतिक प्रशिक्षण का आयोजन किया तब श्रीमती आचार्य को बंगाल से प्रशिक्षण के लिए बुलाया गया।[38] 5 अप्रेल 1940 को उनका बीकानेर में निधन हो गया था। उनके निधन का समाचार 9 अप्रेल 1940 के ''दैनिक हिन्दुस्तान'' में प्रमुखता से छपा था। इस प्रकार स्वतंत्रता की भावना से युक्त इस महिला का संसार से पलायन हो गया।[39]

{3} रूकमणी देवी आचार्य :- (जन्म – 1918 लगभग, मृत्यु – 1989)

इस महिला स्वतंत्रता सेनानी का जन्म बीकानेर के एक संभ्रांत पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम रामधन हर्ष था। निर्भिकता, सत्यनिष्ठा की भावना इन्हें इनके पिता व भाई श्री चंद हर्ष से प्राप्त हुई। इनका विवाह कलकता में श्री सूरजकरण आचार्य से हो गया। पति परिवार की सेवा के साथ राष्ट्र की सेवा की भावना इनमें व्याप्त थी। हावड़ा पुल के पास पति की बीमारी के समय भी तिरंगा झण्डा फहराया। इसके अलावा गांधी जी द्वारा संचालित सभी आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। देशबंधु चितरंजनदान के साथ कलकत्ता में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। इसके अलावा कलकता, बड़ा बाजार स्थित माहेश्वरी भवन में जब गांधी जी आये तो वहां मीटिंग में भाग लिया। सीताराम सक्सेरिया के निर्देशन में स्वतंत्रता संग्राम के सुपुर्द किये कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया। इस महिला स्वतंत्रता सेनानी का देहांत कृष्ण जन्माष्टमी के दो दिन बाद 1989 में हो गया और हमेशा कहा करती थी कि घर देश के लिए किये गये कार्यं का कभी प्रतिफल नहीं लिया जाता।[40]

इन स्वतंत्रता सेनानियों के अलावा गंगादास कौशिक के साथ गिरधर किराडू ने अपना योगदान दिया। नरसिंह थानवी ने कलकता में निर्वासित होकर आये स्वतंत्रता सेनानियों को आर्थिक मदद की व इसके अलावा रहने खाने की व्यवस्था की। साथ ही गोवा मुक्ति आंदोलन में अपना सक्रिय योगदान देकर भारत की आजादी के अंतिम चरण तक अपना योगदान दिया। जिसमें अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के साथ झंवरलाल हर्ष का नाम भी उल्लेखनीय है।[41]

संदर्भ ग्रंथ :–

1. पुष्करणा संदेश, वर्ष अगस्त 2001, पृ. 40, बीकानेर।
2. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी, पृ. 784 जयपुर 1973
3. पुष्करणा संदेश वर्ष अगस्त 2001 पृ. 40, बीकानेर
4. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी, पृ. 784 जयपुर 1973
5. दाऊजी के संस्मरण, टेप नं. 13 रा.रा.अ.बी।
6. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी पृ. 784 जयपुर 1973
7. पुष्करणा संदेश, अगस्त 2001 मासिक पत्रिका मुकेश हर्ष पृ. 38, बीकानेर
8. दाऊजी के संस्मरण टेप नं. 13 रा.रा.अ.बी।
9. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर 1940 XIV पृ. 1–5 (रा.रा.अ.बी)
10. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर 1943 XXXI पृ. 1–4 (रा.रा.अ.बी)
11. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर 1941 नं. II पृ. 53 (रा.रा.अ.बी)
12. वहीं, पृ. 53
13. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान – दाऊदयाल आचार्य, पृ. 417–25, चेतना प्रकाशन, बीकानेर 1997।
14. पुष्करणा संदेश–वर्ष–41, अगस्त 2001 अंक–8 पृ. 38–39, विद्यार्थी सभा भवन, बीकानेर।
15. स्वामी लक्ष्मीदास के संस्मरण (टेप)–5 रा.रा.अ.बी
16. गणेश भवन, लक्ष्मीदेवी आचार्य का निवास स्थान था, जहाँ प्रजा मण्डल का कार्यालय बनाया गया।
17. पाक्षिक, जय बीकाणा, वर्ष–दो, अंक–प्रथम, 25 मार्च पृ.–20, 1987
18. होम डिपार्टमेण्ट–1937 नं. VIII पृ. 1–23 (रा.रा.अ.बी)
19. श्री रावतमल पारीक के संस्मरण–टेप–20 (रा.रा.अ.बी)
20. गंगादास कौशिक संग्रह बस्ता नं. 2, पत्रावली सं. 15 (रा.रा.अ.बी)
21. पुष्करणा संदेश–वर्ष–41, अगस्त 2001 अंक–8 पृ. 38–39, विद्यार्थी सभा भवन, बीकानेर।
22. राजस्थान सुजस, जून–जुलाई 1998 पृ. 48
23. वही पृ. 48
24. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी जयपुर 1973, पृ. 789
25. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर के द्वारा प्रदर्शनी के पेम्पलेट के पृ.सं. 2 बिन्दु 21
26. राजस्थान सुजस, जून–जुलाई 1998 पृ. 49, राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी जयपुर 1973, पृ. 789

27. वही पेम्पलेट पृ. 2, बिन्दु 22, वही सुमनेश जोशी पृ. 789, जयपुर।
28. बीकानेर राज्य के राजनीतिक आंदोलन का इतिहास—जीवनलाल डागा पृ.—19, बीकानेर।
29. होम डिपार्टमेण्ट, बीकानेर 1937, नं. 36—सी, पृ. 1—40 (रा.रा.अ.बी)
30. राजस्थान सुजस जून—जुलाई 1998, पृ.—49
31. होम डिपार्टमेण्ट, बीकानेर 1937, नं. 8—सी, पृ. 1—23 (रा.रा.अ.बी)
32. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर के द्वारा प्रदर्शनी के पेम्पलेट के पृ.सं. 2 बिन्दु 25
33. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी — सुमनेश जोशी जयपुर 1973, पृ. 789
34. होम डिपार्टमेण्ट, बीकानेर 1937, नं. 8—सी, पृ. 1—28 (रा.रा.अ.बी)
35. वही पृ. सं. 1—23
36. राजस्थान सुजस, जून—जुलाई 1998 पृ. 49, राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी — सुमनेश जोशी जयपुर 1973, पृ. 789
37. दैनिक हिन्दुस्तान 5 अप्रेल 1940, होम डिपार्टमेण्ट 1937 नं. 6 पृ. 1—23 (रा.रा.अ.बी)
38. राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर के द्वारा प्रदशर्नी के पेम्पलेट के पृ.सं. 2 बिन्दु 25
39. दैनिक हिन्दुस्तान 5 अप्रेल 1940, होम डिपार्टमेण्ट 1937 नं. 8 पृ. 1—23 (रा.रा.अ.बी)
40. यह जानकारी इनके वरिष्ठ पुत्र कलकता निवासी श्री सत्यनारायण आचार्य से ली गई है, जानकारी देते वक्त उनकी उम्र 69 साल है। इसके अलावा रूकमणी देवी के भाई श्री चंद हर्ष से भी जानकारी ली गई, जानकारी देते वक्त उनकी उम्र 89 साल थी।
41. जानकारी देते वक्त (20 अप्रेल 2008) को ये जीवित थे।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 48-52
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में पर्यटन का सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

डॉ. अनिश यादव
सहायक आचार्य, वाणिज्य विभाग, Govt. College, Narnaul, Distt. – Mahendergarh, Haryana

संसार में विभिन्न देशों की आर्थिक वृद्वि में पर्यटन क्षेत्र की बहुत बड़ी भूमिका है। आज पर्यटन बहुत तेजी से आय अर्जन के साधन के रूप में विकसित हो रहा है। इसी कारण से पर्यटन को उद्योग का दर्जा दे दिया गया है। यह एक औजार की भाँति आर्थिक लाभ प्राप्त करने में सहयोग करता है। जैसे– रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना। सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों और उच्चतर बाजार स्थगित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

राजस्थान में पर्यटन के बढ़ते महत्व को ध्यान में रखते हुये ही राज्य सरकार ने वर्ष 1989 में पर्यटन को उद्योग का दर्जा प्रदान किया। ऐसा करने वाला राजस्थान राज्य देश में प्रथम राज्य था।

देश की सफल घरेलू उत्पाद में पर्यटन का मत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विदेशी विनियम अर्जन का सबसे बड़ा स्त्रोत पर्यटन ही है। इसी कारण राजस्थान ही नहीं अपितु देश की प्रति वर्ष विदेशी विनियम अर्जन में वृद्वि हो रही है। यह पिछडे क्षेत्रों को आपस में जोडकर अर्थव्यस्था को गति प्रदान करने में सहयोंग कर रहे। जैसे–परिवहन, कृषि, होटल, निर्माणी, हथकरघा, कुटीर–उद्योग इत्यादि पर्यटन अर्थव्यवस्था को चालक के रुप में गति दे रहे है। यह एक प्रभावशाली संचालक की तरह अर्थव्यवस्था की आर्थिक विषमताओं को दूर करने में सहयोग प्रदान कर रहा है।

पर्यटन सामाजिक :–

आर्थिक क्षेत्रों में विकास करने के साथ–साथ एक देश से दूसरे देशों की सांस्कृतिक–मूल्यों की पहचान, रीति–रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक–संस्कृति, आदि को समझने में सहयोग करता है।

परिकल्पनाएँ :–

अध्ययन क्षेत्र में पर्यटकों की संख्या बढ़ने से आर्थिक एवं सामाजिक जीवन स्तर में सुधार होता है।

राजस्थान की कला, संस्कृति व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विदेशी व धार्मिक स्थल स्वदेशी पर्यटकों को अधिक आकर्षित करती है।

अध्ययन उद्देश्य :–

1. अध्ययन क्षेत्र में पर्यटन उद्योग के महत्त्व को समझना।
2. आर्थिक विकास में पर्यटन की भूमिका ज्ञात करना।

3. अध्ययन क्षेत्र में पर्यटन आगम का अध्ययन करना।
4. पर्यटन से सबन्धित समस्या व उनके प्रभाव का आंकलन।
5. पर्यटन विकास से सम्बन्धित सम्भावनाएँ ज्ञात करना।

विधि तंत्र :–

अध्ययन विषय का वैधानिक, तुलनात्मक, क्रमबद्ध एवं तार्किक विश्लेषण करने के लिए उपयुक्त विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जायेगा, जिसमें प्राथमिक आंकड़ों का संकलन एवं द्वितीय आंकडों का प्रयोग किया जायेगा। द्वितीयक आंकड़े व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। जैसे–भारतीय पर्यटन विकास निगम (RTDC) दिल्ली, राजस्थान पर्यटन विकास निगम (RTDC) जयपुर, ट्यूरिस्ट रिसेप्शन सेन्टर जयपुर, राजस्थान इन्स्टीट्यूट ऑफ ट्यूरिज्म एण्ड ट्रेवल मैनेजमेन्ट जयपुर, राजस्थान राज्य होटल निगम लिमिटेड जयपुर, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय जयपुर, जनगणना विभाग जयपुर, कला एवं संस्कृति विभाग जयपुर, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय जयपुर। अध्ययन क्षेत्र से संबंधित भौगोलिक आकृति व आंकड़ों को प्रदर्शित करने के लिए मानचित्र, रेखीय आलेख आदि प्रदर्शन विधियों का प्रयोग किया गया है।

राजस्थान पर्यटन उद्योग :–

प्रकृति ने पर्यटन विकास की दृष्टि से राजस्थान को विषमताओं के साथ–साथ विविधता भी प्रदान की है और बर्फ से ढ़के पहाड़ों तथा समुद्र तटों के अलावा वह सब कुछ दिया है, जो देश के अन्य पर्यटन राज्यों में सहजता नहीं है। यहाँ की वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक सम्पन्नता, विशाल प्राकृतिक धरोहर, ऐतिहासिक तथ्यों व बलिदानों से अभिभूत राजस्थान की वीर भूमि अनेक अद्‌भुत और आकर्षक पर्यटक स्थलों को समेटे हुए है।

ऐतिहासिक पर्यटन के अर्न्तगत बहुत से किले, महल, हवेलियां, खण्ड़र, दुर्ग, अपने गौरवमयी अतीत की कहानी कहते पर्यटकों को अपनी ओर आकृष्ट करते है। कभी शासक की शक्ति के पर्याय माने जाने वाले किलों का महत्त्व सुरक्षा के लिहाज से भले ही आज की विकसित वैज्ञानिक युग में गौण हो गयी है, परन्तु इतिहास में आज भी ये अपने आप में कम महत्त्व नहीं रखते। यह प्रदेश न केवल शौर्य, साहस और सौन्दर्य के अद्‌भुत परिदृश्य के कारण बल्कि दुर्लभ अनुपम भिति–चित्रों, उच्च शिल्प कला से विनिर्मित मंदिरों, हवेलियों व मकबरों के सौन्दर्य, वास्तुशिल्प के कारण भी देशी–विदेशी पर्यटकों के लिए स्वाभाविक आर्कषण का केन्द्र बना हुआ है।

राजस्थान कला एवं संस्कृति का घर है। यहां त्यौहारों, पर्वों तथा मेलों की अनूठी सांस्कृतिक परम्परा है। अगर नजदीक से राजस्थान को देखना हो, महसूस करना हो तो मेलों, पर्वों में भाग लेना किसी सुखद अनुभव से कम नहीं होगा।

एडोप्ट ए मोन्यूमेन्ट योजना :–

यह राजस्थान में पर्यटन विकास की महत्वपूर्ण परियोजना है। इसे राज. के सभी पर्यटन स्थलों में लागू किया जाना चाहिए। जो स्मारकों द पर्यटन स्थलों के जीर्णोद्वार के लिए बनायी गयी है।

राज्य में करोड़ों रू. के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तपोषण है। जिन्हें सामाजिक–आर्थिक विकास से संबंधित कार्यों के लिए व्यय करना था लेकिन यह राशियां पर्याप्त मात्रा में विकास हेतु प्राप्त नहीं होती अपितु बकाया राशि को भी बाद में जारी नहीं किया जाता जिससे विकास कार्यों में बाधा आ रही है।

इसलिए शोधकर्त्ता अध्ययन क्षेत्र में एकता मूल्यों और पर्यटन के सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन कर रहा है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि योजना बनाने में स्थानीय समुदाय की भागीदारी बहुतकम है जो पर्यटन से आ ावादी होने में विफलता के कारण प्रमुख मुद्दों में से एक है। इस कारण से भी पर्यटन योजना और विकास में स्थानीय समुदाय की भागीदारी का भी मूल्यांकन किया जाता है।

पर्यटन सामाजिक :–

आर्थिक प्रभाव सीधे रूप से सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूप में प्रवाह को प्रभावित करता है।

ग्लेन के अनुसार – "पर्यटन प्रभाव न केवल आर्थिक प्रभाव नौकरियों और करों के सन्दर्भ में बल्कि वे व्यापक रूप से पर्यटन से जुडे लोगों से परे व्यापक और प्रभाव ाली वाले क्षेत्र है।

हिंग्स के अनुसार – सामाजिक–आर्थिक विकास को व्यक्ति के संसाधन, धन शिक्षा स्तर और शहरीकरण की डिग्री के रूप में परिभाषित किया जाता है।

पर्यटन के सुधार कई प्रत्यक्ष लाभ लाएगा जैसे :–

पर्यटन और आतिथ्य के क्षेत्र में रोजगार के अवसर, निजी उद्यमों का विकास, जीवन स्तर में सुधार, सामाजिक उत्थान और जीवन की बेहतर गुणवत्ता, बेहतर शिक्षा और प्रशिक्षण, टिकाऊ पर्यावरणीय प्रथाऐं, विदेशी मुद्रा आय में वृद्धि इत्यादि।

अप्रत्यक्ष लाभ जैसे :–

आधारभूत संरचना विकास–बिजली, पानी, स्वच्छता, सड़कें, अस्पतालों, परिवहन, आदि स्थानीय, उपज के लिए बाजार, आय, गुणक के प्रभाव के कारण आर्थिक उत्थान।

सामाजिक प्रभाव :–

राजस्थान में पर्यटन सामाजिक–आर्थिक पहलू के स्थानीय समुदाय पर निर्भर करता है जिसे स्थानीय समुदायों की सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं, रीति–रिवाजों, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है, यह प्रभाव निम्नलिखित है :–

1. सामाजिक सांस्कृतिक विकास में सहयोग प्रदान करना। पर्यटन आपस में भाई–चारे को बढ़ावा देता है।
2. पर्यटन आपस में भाई–चारे को बढ़ावा देता है।
3. पर्यटन स्थानीय समुदायों की सामुदायिक गति विधियों को प्रभावित करते है।
4. पर्यटन से एक देश से दूसरे देशों में सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं की समन्वयता में वृद्धि होती है।

5. पर्यटन से स्थानीय एवं विदेशी समुदायों की भाषा, सामाजिक स्थिति, आदि को समझने में सहयोग प्राप्त होता है।

6. यह लोगों की पर्यटन विकास में सामुदायिक भागीदारी को सुनिश्चितता प्रदान करता है।

7. पर्यटन से देश में सकारात्मक सामाजिक–आर्थिक विकास में योगदान प्राप्त हो रहा है।

8. पर्यटन विभिन्न सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में नयी प्रबंध–व्यवस्था एवं शैक्षिक अनुभव की क्रियाओं के संचालन से होने वाले प्रभाव संपरिचय करवाता है।

9. सामाजिक–सांस्कृतिक विकास में सहयोग कर विकासशील उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक है।

10. यह स्थानीय एवं पर्यटन व्यवस्था से जुड़े लोगों के रोजगार को प्रभावित करता है।

पर्यटन के आर्थिक प्रभाव :–

राजस्थान नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में पर्यटन को आर्थिक वृद्धि करने एवं रोजगार के सृजन का जनक माना जाता है। राजस्थान में पर्यटन के आर्थिक प्रभाव निम्न प्रकार से है :–

1. राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर नागरिकों को रोजगार उपलब्ध करता है।

2. आर्थिक वृद्धि एवं विकास दर को तीव्रगति प्रदान करने में देशी–एवं विदेशी व्यापार में संतुलन स्थापित करने में सहयोग करता है।

3. सर्वाधिक विदेशी मुद्रा अर्जन करने में सहयोग प्रभावित करना है।

4. यह देश में आर्थिक विकास एवं आय के साधनों में वृद्धि को प्रभावित करता है।

5. पर्यटन एक देश से दूसरे देशों में आपसी कला, संगति, भाषा–वेशभूषा संस्कृति परम्पराओं, लोककलाओं इत्यादि का आदान–प्रदान करता है।

6. पर्यटन से सामुदायिक आन्तरिक सम्बंधों में सुदृढ़ता आती है।

7. पर्यटन लोगों के विकास एवं उत्तम जीवन स्तर प्राप्त करने में सहयोग करता है।

8. यह स्थानीय समुदाय एवं विदेशी के बीच आपसी सम्बंधों को मजबूत करता है, व्यापारिक गतिविधियों को प्रभावित करता है।

9. पर्यटन मानवीय व्यवहार को एक–दूसरे को समझने में सहयोग करता है।

सुझाव :–

1. राजस्थान की संस्कृति का स्वरुप अत्यन्त विराट है। यहाँ का गौरवशाली इतिहास, समृद्ध संस्कृति, प्राकृतिक दृश्यावलियाँ, सुरम्य परिवेश एवं मेले, त्यौहार, हस्तकलाऐं, आदि पर्यटकों को आकर्षित करते है।

2. ऐतिहासिक पर्यटक स्थल संरक्षण के अभाव निरन्तर क्षतिग्रस्त होते जा रहे हैं। ऐसे में यह जरुरी है कि इनके संरक्षण व जीर्णोद्धार किया जाये।

3. राजस्थान में पर्यटन के विकास की काफी संभावनाऐं है यहां अब पर्यटन के जो नये–नये रूप सामने आ रहे है जैसे– ग्रामीण, पर्यटन परम्परागत खेल, साहसिक पर्यटन आदि।

4. राज्य में पर्यटन विकास के लिए क्षेत्र में विभिन्न पैकेज टूर व सूचना प्रोद्यौगिकी के माध्यम से पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है।

5. राजस्थान में आधारभूत सुविधाओं का आशानुरूप विकास नहीं हुआ है, इसलिये केन्द्र तथा

राज्य सरकारों द्वारा इस संबंध में ठोस उपाय करने चाहिए।

6. पर्यटन उद्योग बहुत संवेदनशील माना गया है। इस उद्योग की प्रगति के लिए आन्तरिक शान्ति, संद्भाव व सौहार्द की नितांत आवश्यकता मानी गयी है।

7. समाज में तेजी से बढ़ रहे अपराध से पर्यटन स्थलों पर असुरक्षा का माहौल बनता है। अतः यहां सुरक्षा पर्यटक सहायता बल को बढावा दिया जाये।

8. पर्यटन विकास के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों के साथ आमजन की भागीदारी आवश्यक है।

9. वर्तमान में बढते पर्यटन दबाव के कारण "इको टूरिज्म अर्थात् पारिस्थितिकी पर्यटन को प्रदेश में बढावा दिया जाए।

10. पर्यटन को वर्तमान उद्योग दर्जा मिल गया है। अतः पर्यटन विकास से इस प्रदेश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ ही वहां मौजूद प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों का समुचित सदुपयोग सम्भव हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. म.प्र के प्रमुख पर्यटन स्थल – डॉ. आनंद कुमार पाण्डेय, म.प्र हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. पर्यटन मार्केटिंग एवं विकास – डॉ. जगमोहन नेमी, राष्ट्रशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. पर्यटन एवं पर्यटन उत्पाद – डॉ. संजय कुमार शर्मा, राष्ट्रशिला प्रकाशन, दिल्ली।
4. इंटरनेशनल टुरिज्म – प्रेमधर कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. व्यास, आर के. (2008) : ग्रामीण पर्यटन एवं टिकाऊ विकास, अरंहित पब्लिकेशन, जयपुर।
6. व्यास, राजेश कुमार (2011), "सांस्कृतिक पर्यटन", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
7. शर्मा अतुल, (2012), "पर्यटन भूगोल", इशिका पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
8. शर्मा, अतुल (2012), "आर्थिक विकास में पर्यटन का योगदान" इशिका पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
9. सक्सेना, हरिमोहन (2014), "राजस्थान का भूगोल" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
10. प्रगति प्रतिवेदन (2015–2016) पर्यटन विभाग, राजस्थान।
11. वार्षिक प्रतिवेदन (2016–2017) पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 53-57

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति

डॉ. योगेश कुमार यादव

सहायक प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय नारनौल महेंद्रगढ़ हरियाणा।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शूरसैनी के गुर्जर अपभ्रंश से मानी जाती है। कुछ विद्वान राजस्थानी भाषा को नागर अपभ्रंश से उत्पन्न हुआ भी मानते हैं। उद्यतन सूरी के ग्रंथ कुवलयमाला में अट्ठारह देशी भाषाओं का वर्णन मिलता है।

इसमें से एक मरु भाषा भी है जो पश्चिमी राजस्थान की भाषा है। राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है और यहां के लोगों की मातृभाषा राजस्थानी है। भाषा विज्ञान के अनुसार राजस्थानी भाषा भारत और यूरोपीय भाषा परिवार से सम्बन्धित है। राजस्थानी भाषा का इतिहास बड़ा ही गौरवमयी रहा है। इस शोध पत्र में हम राजस्थानी भाषा के उद्भव, इसकी उत्पत्ति और इसकी प्रमुख बोलियों की चर्चा करेंगे।

इसी तरह पिंगल शिरोमणि और अबुल फजल की आईने–ए–अकबरी में भी मारवाड़ी शब्द का प्रयोग किया गया है। राजस्थान की भाषा के लिए 'राजस्थानी' शब्द सबसे पहले जॉर्ज अब्राहम गियर्सन ने 1912 में लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया ग्रंथ में प्रयुक्त किया। इसमें गियर्सन ने प्रदेश में बोली जा रही सभी भाषाओं के लिए एक सामूहिक नाम दिया था। यह नाम प्रदेश की भाषा के लिए मान्य किया जा चुका है। केंद्रीय साहित्य अकादमी ने भी राजस्थानी भाषा को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में मान्यता दे दी है लेकिन अभी इसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं हुई है।

डॉक्टर जॉर्ज अब्राहम गियर्सन पहले अध्येता थे जिन्होंने अपनी पुस्तक लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया के दूसरे भाग में राजस्थानी भाषा को स्वतंत्र भाषा के रूप में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन्होंने राजस्थानी भाषा की पांच उपशाखाओं के बारे में चर्चा की है जो इस प्रकार हैं :

पश्चिमी राजस्थानी में मारवाड़ी, मेवाड़ी, शेखावाटी और बागड़ी।

मध्य द. पूर्वी राजस्थानी भाषा में हाड़ौती और ढूँढाड़ी

उत्तरी द. पूर्वी राजस्थानी में अहीरवाटी और मेवाती

दक्षिणी द. पूर्वी राजस्थानी में मालवी और निमाड़ी।

राजस्थान अपने यहाँ पर राजस्थानी भाषा की अलग–अलग बोलियों की वजह से जाना जाता है। राजस्थान में जितनी भी बोलियां बोली जाती हैं उनके लिए कहा जाता है कि राजस्थान में हर नौ दस किलोमीटर की दूरी पर बोली में अंतर आ जाता है तो आप इसका अंदाजा इसी बात से लगा सकते हैं कि राजस्थान में राजस्थानी भाषा की बहुत–सी बोलियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख बोलियों का वर्णन हम इस

शोध पत्र में कर रहे हैं –

मारवाड़ी भाषा :–

उद्योतन सूरी के ग्रंथ कुवलयमाला में जिस भाषा को मरु भाषा कहा गया है वह यही मारवाड़ी है। मारवाड़ी का ही प्राचीन नाम मरु भाषा था जिसे पश्चिमी राजस्थान की प्रधान बोली माना गया था। मारवाड़ी का आरंभ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। मारवाड़ी बोली साहित्य और विस्तार दोनों की ही दृष्टि से राजस्थान की सबसे ज्यादा समृद्ध और महत्वपूर्ण भाषा है। मारवाड़ी बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, पाली, नागौर, जालौर और सिरोही में बोली जाती है लेकिन मारवाड़ी का सबसे शुद्ध रूप जोधपुर और इसके आसपास के इलाकों में ही बोला जाता है।

मेवाड़ी भाषा :–

उदयपुर और इसके आसपास के इलाकों को मेवाड़ कहा जाता है इसलिए यहां की बोली मेवाड़ी कहलाती है। मारवाड़ी के बाद मेवाड़ी राजस्थान की दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली बोली है। मेवाड़ी एक बोली के रूप में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में बोली जाने लगी। इसका शुद्ध रूप मेवाड़ के गांवों में ही देखने को मिलता है। मेवाड़ी भाषा में भी खूब राजस्थानी साहित्य लिखा गया। राणा कुंभा ने भी अपने कुछ नाटक मेवाड़ी भाषा में ही लिखे थे।

बागड़ी भाषा :–

डूंगरपुर और बांसवाड़ा के इलाकों का प्राचीन नाम बागड़ था इसलिए वहां की बोली भी बागड़ी कहलाई। बागड़ी के ऊपर गुजराती का प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। यह भाषा मेवाड़ के दक्षिणी भागों जैसे अरावली के दक्षिणी इलाकों और मालवा के पहाड़ियों तक के क्षेत्रों में बोली जाती है। भील जनजाति के लोग भी मेवाड़ी भाषा ही बोलते हैं।

ढूँढाड़ी भाषा :–

जयपुर के उत्तरी इलाकों को छोड़कर बाकी सारे जयपुर, किशनगढ़, लावा, अजमेर, मेरवाड़ा के पूर्वी भागों में बोली जाने वाली भाषा को ढूँढाड़ी कहा जाता है। इस भाषा पर मारवाड़ी, ब्रजभाषा और गुजराती का प्रभाव साफ देखने को मिलता है। ढूँढाड़ी भाषा में गद्य और पद्य दोनों रूपों में बहुत सारा साहित्य भी रचा गया है। संत दादू दयाल ने भी ढूँढाड़ी भाषा में ही अपनी रचनाएं लिखी हैं। ढूँढाड़ी को झाड़शाही और जयपुरी के नाम से भी जाना जाता है। 'आठ देस गुजरी' पुस्तक में ढूँढाड़ी का सबसे प्राचीनतम उल्लेख अट्ठारहवीं शताब्दी में मिलता है।

हाड़ौती भाषा :–

कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़ के इलाके हाड़ा राजपूतों के साम्राज्य के अंतर्गत आते थे इसलिए इन इलाकों को हाड़ौती कहा जाने लगा और इसी वजह से यहां की बोली भी हाड़ौती कहलाई। हाड़ौती बोली ढूँढाड़ी की ही एक उपबोली है। एक उपबोली के रूप में हाड़ौती का सबसे पहला प्रयोग केलॉग की 'हिंदी ग्रामर' में किया गया। इसके बाद गियर्सन ने भी अपने ग्रंथ में हाड़ौती को बोली के रूप में मान्यता दी। सूर्यमल मिश्रण की ज्यादातर रचनाएं इसी बोली में लिखी गयी हैं।

मेवाती भाषा :–

भरतपुर और अलवर जिलों का इलाका मेवाती जाति के लोगों की अधिकता की वजह से मेवात के नाम से जाना जाता है इसलिए यहां की बोली भी मेवाती कहलाती है। यह बोली अलवर के किशनगढ़, तिजारा, रामगढ़, गोविंदगढ़, लक्ष्मणगढ़ तहसील और भरतपुर की कामां और डीग,नगर तहसीलों के पश्चिमी भाग और हरियाणा के गुड़गांव और उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले तक फैली हुई है। मेवाती बोली पर ब्रजभाषा का बहुत प्रभाव देखने को मिलता है।

मालवी भाषा :–

मालवा क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को मालवी कहते हैं। इस बोली में मारवाड़ी और ढूँढाड़ी दोनों बोलियों की कुछ समानताएं देखने को मिलती हैं। कुछ इलाकों में मालवी के ऊपर मराठी का भी प्रभाव देखने को मिलता है। मालवी एक कोमल भाषा है।

शेखावाटी भाषा :–

शेखावाटी को मारवाड़ी की उपबोली माना जाता है। यह शेखावाटी इलाकों जिनमें झुंझुनू, सीकर, चूरू जिलों के क्षेत्र आते हैं, में बोली जाती है। शेखावाटी बोली के ऊपर ढूँढाड़ी और मारवाड़ी का साफ प्रभाव देखने को मिलता है।

गौड़वाड़ी भाषा :–

जालौर जिले के आहोर से लेकर पाली जिले में बोली जाने वाली यह मारवाड़ी की उपबोली है। बीसलदेव रासो मारवाड़ी भाषा की मुख्य रचना है। बालवीर सिरोही खड़ी महा हरीश की उप बोलियां है। बालवी, सिरोही, खणि, महादड़ी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं।

अहिरवाटी भाषा :–

इसे राठी बोली भी कहा जाता है। आभीर जाति के क्षेत्र की बोली होने की वजह से इसे हिरावटी या हीरवाल भी कहा जाता है। इस बोली के इलाके को राठ भी कहा जाता है। इसलिए इसे राठी भी कहते हैं। यह मुख्य रूप से अलवर और जयपुर के कुछ इलाकों, हरियाणा के गुड़गांव, महेंद्रगढ़, नारनौल, रोहतक जिला और दिल्ली के दक्षिण भाग में बोली जाती है। यह हरियाणा की बांगरू और मेवाती के बीच की बोली है। जोधराज का हम्मीर रासो महाकाव्य,शंकर राव का भीम विलास महाकाव्य, अली बक्शी ख्याल लोकनाट्य आदि रचनाएं भी इसी बोली में की गई हैं।

भारत के सबसे खूबसूरत राज्यों में से एक है राजस्थान। यहां की संस्कृति दुनिया भर में मशहूर है। राजस्थान की संस्कृति विभिन्न समुदायों और शासकों का योगदान है। आज भी जब कभी राजस्थान का नाम लिया जाए तो हमारी आखों के आगे थार का रेगिस्तान, ऊंट की सवारी, घूमर और कालबेलिया नृत्य व रंग–बिरंगे पारंपरिक परिधान आते हैं।अपने सभ्य स्वभाव और शालीन मेहमाननवाजी के लिए जाना जाता है ये राजस्थान। चाहे स्वदेशी हो या विदेशी, यहां की संस्कृति तो किसी का भी मन चुटकियों में मोह लेती है। आखिर किसका मन नहीं करेगा रात के वक्त रेगिस्तान में आग जलाकर कालबेलिया नृत्य देखने का। जिन्होनें राजस्थान की संस्कृति का अनुभव किया है वे बहुत खुश नसीब हैं।

जहां बात सभ्यता और सुंदरता को एक ही साथ जोड़ने की हो तो राजस्थानी कपड़ों के आगे कुछ नहीं

टिकता। महिलाओं के लिए पारंपरिक राजस्थानी कपड़े काफी सभ्य, सुंदर और आरामदायक होते हैं। यहां की महिलाएं पारंपरिक घागरा, चोली और ओढ़नी पहनती हैं। महिलाओं के ये कपड़े चटक रंग के होते हैं, जिनमें गोटा (बॉर्डर) लगा होता है। अपने से बड़ों के सामने और बाहरी लोगों के आगे महिलाएं घूंघट निकाल कर रखती हैं। यह परम्परा अब वक्त के अनुसार बदल रही है।

दूसरी तरफ पुरुष धोती कुर्ता या कुर्ता पयजामा पहनना पसंद करते हैं। इसके अलावा कुछ पुरुष सिर पर बंधेज के प्रिंट वाली सूती कपड़े की पगड़ी भी पहनते हैं। उनके लिए पगड़ी का सिर्फ सिर ढकने वाली टोपी की तरह नहीं होती, बल्कि वह इज्जत और सम्मान का प्रतीक होती है।

कपड़ों के बाद बात आती है राजस्थानी आभूषणों की जो न सिर्फ राजस्थान में बल्कि पूरे विश्व में मशहूर हो रहे हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि आभूषण केवल महिलाएं ही पहनती हैं। राजस्थान में आपको बहुत से ऐसे लोगों के गले में सोने की चेन, हाथ में पुरुषों वाली भारी सी चूड़ी और एक कान में सोने की बाली या लौंग मिल जाएगी।

इधर महिलाओं के आभूषण लोक प्रसिद्ध है। राजस्थान का सबसे प्रसिद्ध और महिलाओं द्वारा सबसे ज्यादा पसंद किया जाने वाला आभूषण है– बोरला। बोरला एक प्रकार का मांग टीका होता है जो दिखने में किसी लड्डू जैसा दिखता है। ये राजस्थान के पारंपरिक आभूषणों में से एक है। इसके अलावा महिलाएं, कमर बंद, बाजू बंद और लाख और सीप के कंगन भी पहनती हैं।

जहां राजस्थानी नृत्य की बात आती है वहां सबसे पहला नाम आता है घूमर का। लेकिन हकीकत में घूमर डांस इससे काफी अलग होता है जो फिल्मों में दिखाया जाता है। ये नृत्य देखने में आसान लगता है लेकिन करने के लिए पैरों में ताकत की जरूरत होती है।

इसके अलावा राजस्थान का दूसरा मशहूर लोक नृत्य है कालबेलिया डांस। पारंपरिक रूप से ये राजस्थान के बंजारों द्वारा किया जाता है। कालबेलिया नृत्य आम लोगों द्वारा नहीं किया जाता है। क्योंकि इसमें लोगों के मनोरंजन के लिए कई खतरनाक करतब भी किए जाते हैं जैसे, कीलों पर खड़े होकर नाचना, आंखों से ब्लेड उठाना और एक उंगली पर थाल घुमाना। इन सब करतबों के लिए महीनों के अभ्यास की जरूरत होती है।

यदि आप खाने के शौकीन हैं तो हर कोई राजस्थान का दाल, बाटी और चूर्मा खाना पसंद करते हैं। दाल के साथ घी में डूबी गर्मागर्म बाटी और मीठे के तौर पर घी वाला गर्मागर्म चूर्मा, सोचकर ही मुंह में पानी आने लगता है। वैसे तो ये आपको आपके शहर में भी मिल जाएगा लेकिन यकीनन यहां जैसी बात और कहीं नहीं होगी।

राजस्थान के मशहूर त्यौहारों में एक है ऊंट मेला। राजस्थान के बीकानेर में आयोजित होने वाला ऊंट मेला हर साल रेगिस्तान के जहाज माने जाने वाले, ऊंट के सम्मान में लगता है। इस मेले में ऊंटों को किसी दुल्हन की तरह सजाया जाता है। इसके अलावा सभी ऊंटों की दौड़ लगवाई जाती है। लोगों के मनोरंजन के लिए मेले मे राजस्थानी गीत भी चलाए जाते हैं। मेले के अंत में आतिशबाजियों से पूरे आसमान को रौशन किया जाता है। बीकानेर में आयोजित होने वाला यह ऊंट मेला हर साल जनवरी में आयोजित किया जाता है।

पुष्कर मेला जो हर साल आयोजित किया जाता है और जिसमें तीन लाख से भी ज्यादा लोग और लगभग

बीस हजार ऊंट, घोड़े, हाथ से बनी तरह–तरह की चीजें और घर सजाने की बहुत सी चीजों से भरी दुकानें देखने को मिलती हैं। पुष्कर मेला हर साल नवंबर के महीने में पुष्कर में लगता है।

संदर्भ :–

1. प्रसिद्ध इटालियन विद्वान एवं भाषा शास्त्री डॉ एल.पी तेस्ईतोरी ने पश्चिमी राजस्थानी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से बताई है। श्री तेस्ईतोरी ने अपना अधिकांश समय बीकानेर में ही गुजारा एवं वही उनका देहांत हुआ।
2. सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने राजस्थानी का उद्‌भव शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से होना प्रतिपादित किया डॉक्टर पुरुषोत्तम मेनारिया भी इसी मत के समर्थक हैं डॉ सुनीति कुमार चटर्जी इसकी उत्पत्ति शौरसेनी के सौराष्ट्री अपभ्रंश से बताते हैं।
3. श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी एवं डॉक्टर मोती लाल मेनारिया राजस्थानी की उत्पत्ति शौरसेनी के गुर्जरी अपभ्रंश से मानते हैं यही मत अधिक सही है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 58-61

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोक कथा : राजस्थानी साहित्य संपदा

डॉ. लालसिंह पुरोहित

श्रीराम भवन, गाँव – जावला, वाया – डेगााना, जिला – नागौर, राजस्थान, पिन – 341503

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में राजस्थान प्रदेश की अपनी विशिष्ट अस्मिता रही है। वीरता, आत्मस्वाभिमान, देशप्रेम एवं वचनबद्धता यहाँ की भूमि के कण–कण के श्रृंगार रहे हैं। मनुष्य ने जिस समय से वाणी का प्रयोग शुरू किया उसी समय से कथा कहने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। मनुष्य की मौखिक परंपरा के साहित्य में लोक कथाओं का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। वेद, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, बौद्ध, जैन एवं अन्य दार्शनिक ग्रंथों में लोक कथाओं को ग्रहण किया गया है।

लोक कथा काल निर्पेक्ष होती है। वह उन व्यवहारगत विविधताओं की ओर इंगित करती है जो मानो सर्वकालिक सत्य हो। काल विशेष से मुक्त होने के कारण वे संकलनत्रयी – समय, स्थान और व्यवहार से मुक्त होती है।

राजस्थान में लोक कथा को 'बात' या 'वात' कहते हैं। रतना हमीर री बात और बीरमदे री बात राजस्थानी कथा साहित्य की प्रथम प्रकाशित कथाएँ हैं। राजस्थानी साहित्य संपदा लिखित एवं मौखिक दोनों स्वरूपों में लोकमान्य रही है। लिखित साहित्य को अभिजात्य की संज्ञा दी गयी तथा वह साहित्य संपदा जो जन–जन के कंठों और स्मृतियों को आधार बनाकर युगों–युगों से पीढ़ियों में सुरक्षित एवं हस्तांतरित होती आयी उसे लोक साहित्य का नाम दिया गया।

राजस्थानी 'बातों' ने अन्य भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य के समान ही गति करते–करते विकास किया है लेकिन लोक संप्रक्तता के कारण यह विधा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में विशिष्टता को लिए रही है। इतिहास, धर्म–दर्शन, राजनीति, समाज, ज्ञान–विज्ञान, मनोरंजन के समस्त तत्त्व इन कथाओं में विद्यमान रहे हैं। ज्ञान का कोई तत्त्व उनसे अछूता नहीं है। राजस्थानी 'बात' बहुत ही सुंदर, सुहावनी और आकर्षक है।

राजस्थानी लोक कथाओं की बात ही अनोखी है। इस प्रदेश में प्रचलित कुछ लोक कथाएँ तो एक–एक नहीं अपितु दो–दो, तीन–तीन रातों तक कही जाती है, तब जाकर पूरी होती है। इन कथाओं को बातपोस (कथा कहने वाला) एक विशेष अंदाज में कहता है। कथा शुरू करने से पहले एक विशेष वातावरण बनाया जाता है। बातपोस 'बात' शुरू करने से पहले 'छोगा' का लयबद्ध उच्चारण करता है।

''बात साची भली, पोथी बांची भली, देह साजी भली, बहू लाजी भली।
लूवां बाजी भली, नौबत गाजी भली, गाय दूजी भली, गवर पूजी भली।''

बातपोस का कथा कहने का ऐसा अनूठा और आकर्षक ढंग होता है कि श्रोता हर समय सजग रहता

है। उसका मन 'आगे क्या होगा' यह जानने के लिए उत्सुक रहता है। कथा कहने वाले के साथ 'हुंकारिया' (हाँ कहने वाला) की उपस्थिति भी आवश्यक है।

प्रीत रीत अर नीत में, बातड़ल्या परमाण।
सुण रे सुगणा सायबा, बातां रा फरमाण।।
ज्यूं केळै रै पात में, पात–पात में पात।
त्यूं चातर री बात में, बात–बात में बात।।

राजस्थानी लोक कथाओं के निम्न प्रकार है :–

(क) वीरता प्रधान ऐतिहासिक लोक कथा :–

राजस्थान में 'बात' और 'ख्यात' की समृद्ध परंपरा रही है। वीर और वीरांगनाओं के पवित्र चरित्र को लेकर अनेक 'बात' राजस्थान में प्रचलित है। राजस्थानी वीर नारियों ने अपने सपूतों को दूध की धार के साथ वीरता और स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया है। बहुत सी 'बातें' घटित घटनाओं से संबंधित है। इस संबंध में ठा. किशोरसिंह वार्हस्पत्य जी ने लिखा है '' प्राचीन समय में जब राजकुमारों को चारण कवियों के संरक्षण में रखकर शिक्षा दिये जाने का नियम प्रचलित था, तब उक्त कवि किसी प्राचीन वीर धीर ऐतिहासिक चरित्र को रोचक बनाकर उसको कथानक के रूप में लिखा करते थे और वही अपने शिष्यों को पढ़ाते थे।......... ये कथानक जिस प्रकार पुरुषों के पढ़ने की चीज है, वहीं उसी प्रकार स्त्रियों के हाथों में भी बिना किसी हिचकिचाहट के दिये जा सकते हैं। अश्लीलता तो इनमें नाममात्र भी नहीं। जिस प्रकार पुरुषों के गुणयुक्त चरित्रों का उल्लेख इनमें किया गया है, उसी प्रकार स्त्रियों के पतिव्रत्य, शौर्य, सतीत्व रक्षा आदि–आदि गुणों का भी इनमें उल्लेख मिलता है।''

ऐतिहासिक बातों में वार्ताकार को वर्णन करने का अच्छा अवसर उपलब्ध हो जाता है। युद्ध वर्णन, सैन्य संचालन का वर्णन, लड़ते हुए सैनिकों का वर्णन, अस्त्र–शस्त्रों की गति का वर्णन, बलिदानी सैनिकों का वर्णन आदि वर्णन भी प्रमुख रूप से देखे जा सकते है।

इन वीरता प्रधान कथाओं में 'जगदेव पंवार की बात', 'बात कांधळजी की', लाखा फूलाणी री बात, तुंवरा री बात, 'बात राव चूंडै की', 'बात अणतराय सांखले की', 'बात अमरसिंह–गजसिंहोत की' इत्यादि बहुत ही प्रसिद्ध है।

(ख) सर्प कथाएँ :–

राजस्थानी 'बातां' में नायक सर्प के रूप में मिलता है। इन कथाओं का संबंध वैदिक कालीन नागपूजा से है। इस धरती पर गोगाजी और केसरिया कंवरजी तो नाग देवता के रूप में बहुत प्रसिद्ध है। इन कथाओं में पाताल लोक को नाग लोक बताया जाता है और भोशनाग इस लोक का राजा माना जाता है। बहुत सी कथाओं में वीर राजकुमार इस नागलोक जाकर अमृत लेकर आता है और अपनी प्रेयसी के प्राण बचाता है।

इन 'बातां' में अच्छे व बूरे दोनों प्रकार के सांपों का उल्लेख मिलता है। कहीं पर सांप धर्म भाई बनकर दुखी बहन को प्रतिदिन सोने की एक मोहर देता है तो कहीं पूरे परिवार को नष्ट करने नागिन जाती है।

नुगरों सांप, लिखिया लेख नी टळै, सीधौ हिसाब, नागण थारो बंस बधै, फूलकंवर, पीळौ सांप आदि राजस्थान की प्रसिद्ध सर्प कथाएँ हैं।

(ग) प्रेम प्रधान लोक कथाएँ :-

प्रेम मनुष्य के जीवन का आवश्यक अंग रहा है। प्रेम की श्रेष्ठता और सर्वोपरिता सिद्ध करती ये 'बातां' संदेश देती है कि हृदय के अंतःकरण का प्रेम श्रेष्ठ है। इन प्रेम प्रधान 'बातां' में श्रृंगार रस के संयोग व वियोग दोनों पक्ष वर्णित है। नख–शिख वर्णन में पारंपरित उपमानों का प्रयोग हुआ है। इन कथाओं में साहित्य शास्त्र वर्णित 'शुक्लाभिसारिका' और 'कृष्णाभिसारिका' जैसे नायिका भेदों का चित्रण भी मिलता है। राजस्थान की प्रेम परक लोक कथाओं में कहीं भी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं है।

बात आभल–खिंवजी री, बात बींझे सोरठ री, बात बाघा भारमल री, बात उमादे भटियाणी री, बात ढोला–मरवण री, बात पन्ना–वीरमद री, जलाल–बूबना री बात आदि प्रसिद्ध कथाएँ है।

(घ) मानवेत्तर तत्त्वों (भूत-प्रेत, राक्षस, परि आदि) से संबंधित कथाएँ :-

राजस्थानी लोक–कथाओं में अति प्राकृतिक तत्त्व मनुश्य जैसा कार्य या बुरा कार्य करते चित्रित होते है। साहसी मनुष्य इन मानवेत्तर शक्ति को अपने नियंत्रण में करके कठिन से कठिन कार्य करवाते है, जैसे – एक ही रात में तालाब खुदवाना, एक ही रात में राज्य की सीमा पर परकोटा बनवाना आदि। भूत–प्रेत की इन कथाओं में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के भूतों का चित्रण है। अच्छे भूत सहायता करते है, किसान को जमीन में गढ़ा धन बताते है। बुरे भूत नुकसान करते है। इन कथाओं में मनुष्य और भूतों को आपस में कुश्ती लड़ते भी बताया गया है। राक्षस किसी राजकुमारी का अपहरण कर सात समुद्र पार जलमहल में बंद कर देता है। उस राक्षस के प्राण भी पिंजरे में बंद तोते में होते है। कोई साहसी युवक सभी बाधाओं को पार कर वहाँ पहुँचता है और तोते को मार देता है, तोते के मरते ही राक्षस भी मर जाता है। इन कथाओं में विजयदान दैथा की 'दुविधा' प्रसिद्ध है। 'साता ने गटकाय जाऊँ', 'खौडियो भूत', 'गधा रौ खोळियौ' आदि प्रसिद्ध कथाएँ है।

(ड.) चोर, ठग व डाकुओं की कथाएँ :-

चोरी चौसठ कलाओं में और ठगी सोलह विद्याओं में गिनी जाती है। चोर, ठग अनेक जीवों की बोली बोलना व उनके संकेत समझने में निपुण होते है। ये अनेक प्रकार के वेश धारण कर ठगी करते है। ये बोलने में चतुर, तुरंत काम करने वाले होते है। परंतु इनके भी कुछ नियम थे। जिसके घर का नमक खा लेते उसके घर चोरी नहीं करते थे। डाकू अमीर लोगों से धन छीनकर लाते और अपने खर्च के लिए रखकर शेष धन गरीब लोगों में बाँट देते थे। ये बहुत वीर होते थे। ये सच्चे समाजवाद की भावना का प्रसार करते थे।

खातिलौ चोर, खापटियौ चोर, ठगां रौ ठरकौ, चिमन जी धाड़वी आदि प्रसिद्ध कथाएँ है।

(च) धार्मिक और व्रत कथाएँ :-

धर्म हमारे जीवन का प्राण तत्त्व है। राजस्थानी समाज धर्म प्रधान और आस्थावादी समाज है। वार और तिथियाँ तो सीमित है परंतु इस प्रदेश के व्रत–उपवास असीमित है। धार्मिक और व्रत कथाओं में देवी–देवता साधारण मनुष्य के साथ उठते–बैठते बताये गये है। इन कथाओं में व्रत–उपवास का माहात्म्य बताया गया है। कथा पूरी सुनने का नियम है, बीच में छोड़ने पर परिणाम उलटा हो जाता है। इन कथाओं में स्वर्ग–नरक का वर्णन मिलता है। कथा के देवता को सर्वशक्तिमान माना जाता है। राजस्थानी बातों में प्राकृतिक देवी–देवताओं की कथाएँ भी देखने में आती है। सामाजिक मंगलेच्छा का भाव इन कथाओं में दृष्टि गोचर होता है।

गवर री बात, उभछठ री कथा, श्रावण की तीज री बात, बछ–बारस री बात, इगयारस री बात, सोमती

अमावस री बात, निर्जल–एकादशी री बात, दीवाली की बात, संतोषी माता की बात आदि की कथाएँ ज्यादा प्रसिद्ध है।

(छ) कहावतों पर आधारित लोक कथाएँ :–

लोक कहावतों पर आधारित बातें अपेक्षाकृत संक्षिप्तता लिए है। इन बातों में कहीं तो कहावत को सिद्ध किया जाता है तो कहीं प्राचीन घटनाओं के उद्धरणों को प्रस्तुत किया जाता है। इन बातों का मुख्य उद्देश्य छोटे से छोटे रूप में सीख देना, ज्ञान की परीक्षा लेना या चुटकलों के रूप में छोटी–छोटी कथाओं के माध्यम से मनोरंजन करना रहा है।

इस प्रकार की बातें सभी प्रकार के वर्गों के लिए उपयोगी रही है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं क्षण में ज्ञान देना व नीति की सीख देना इन बातों का उद्देश्य रहा है। राजस्थानी बातों की यह साहित्य निधि युगों–युगों से ज्ञान एवं नीति का संदेश देती आ रही है।

सारांश :–

लोक कथा मनुष्य को दुःख में धैर्य बंधाती है तथा साहस का संचार करती है। इन कथाओं में कल्पना और यथार्थ का मिश्रण होता है। आज भी थके–हारे मानव को यदि बात को सुनने का अवसर मिले तो अपने आपको स्वस्थ अनुभव करने लगता है तथा वह अत्यंत रूचि से इन बातों का आनंद लेकर आधुनिक होते हुए भी लोक संस्कृति के महान मूल्यों का संरक्षक ही नहीं लोक साहित्य की अमूल्य निधि का रसिक भी बन जाता है। यही बातों की सबसे बड़ी उपलब्धि और विशेषता कही जा सकती है।

सूरां दातां पिंडता तीनूं एक सुभाव।
जनमै सो मरसी खरा, अमर बात रह जाये।।

संदर्भ :–

1. राजस्थानी लोक साहित्य – नानूराम संस्कर्ता, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य – डॉ. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
3. राजस्थानी वात साहित्य – डॉ. पूनम दईया, राजस्थानी साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर।
4. राजस्थानी बातां – सौभाग्यसिंह शेखावत।
5. राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति – डॉ. नंदलाल कल्ला, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
6. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन – डॉ. सोहनदान चारण।
7. राजस्थानी लोक साहित्य – डॉ. नारायण सिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर।
8. लोक साहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय।
9. भारतीय लोक साहित्य – डॉ. श्याम परमार।
10. हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास – 16वाँ भाग।
11. राजस्थानी भाषा एवं साहित्य – डॉ. कल्याण सिंह शेखावत।
12. लोक साहित्य विज्ञान – डॉ. सत्येंद्र।
13. डिंगल भाषा के प्राचीन ऐतिह्य – ठा. किशोर सिंह वार्हस्पतय

दूरभाष – 09314291417, E-MAIL- lalsinghpurohit@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 62-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में स्टार्ट–अप की रूपरेखा चुनौतिया एवं सुझाव

डॉ. मधुसूदन प्रधान

सहायक आचार्य इएएफएम, राज. लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज.)

विचारों में अतुलनीय शक्ति होती है, अच्छे विचार से बेहतर भविष्य की आकांक्षा व उपादेयता का निर्माण संभव है जिसके लिए उचित समय, नीति व जोखिम वहां करने की क्षमता सोने पर सुहागा की भांति है। राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहां के लोगो में बुद्धि कौशल कूट–कूट कर भरा है, इसलिए एक मारवाड़ी या राजस्थानी केवल धोती लोटा और डोरी लेकर घर से निकलता है और पूरे विश्व के किसी भी कोने में अपना व्यापारिक साम्राज्य स्थापित करने की योग्यता अपने अंदर रखता है, जिसे आसानी से देखा जा सकता है इसलिए राजस्थान की युवा शक्ति के सदुपयोग, नवीन डिजिटल क्रांति के माध्यम से राज्य में एक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करने हेतु राजस्थान सरकार ने स्टार्ट–अप की नवीन रूपरेखा प्रस्तुत की है, जिससे देश और राज्य की अर्थव्यवस्था को आर्थिक ताकत प्राप्त होगी।

भूमिका :–

स्टार्ट–अप विव के लिए एक नवीन अवधारणा नहीं है बल्कि वर्ष 1959 में सबसे पहला स्टार्ट–अप इनक्यूबेटर का निर्माण बटाविया इंडस्ट्रियल सेंटर न्यूयॉर्क में स्थापित किया गया जोकि तत्कालीन समय में वहां की बेरोजगारी और मंदी से लड़ने लिए सफल हुआ। नब्बे के दशक में इसका जाल फैलने लग गया था, उस समय डॉट–कॉम एक प्रचलित स्टार्ट–अप था जो की असफल रही, उसके बाद अमेजोन और इब्बे जैसी कम्पनीज सफलतापूर्वक काम करने लगी। आज विश्वभर में स्टार्ट–अप का बोलबाला है, राजस्थान में भी इसी तर्ज पर जून 2013 में एक MoU रिको IIM अहमदाबाद के बीच हुआ, इसके बाद प्रदेश सरकार ने 2015 में स्टार्ट–अप नीति बनाई जिसके तीन स्तम्भ बनाए गए, जिसमे पहला स्तम्भ "स्टार्ट–अप सपोर्ट" दूसरा स्तम्भ "स्टूडेंट एंट्रोपेन्योर सपोर्ट" और तीसरा स्तम्भ "इन्क्यूबेशन सपोर्ट" जो कि राजस्थान के उर्जावान युवा शक्ति, उचित विचार, अनुसंधान की सुविधा हाई–स्पीड इन्टरनेट सुविधा, विपणन, तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण की व्यवस्था वित्तीय सहायता इत्यादि कार्य शामिल है।

स्टार्ट–अप कार्यक्रम भारत सरकार की फ्लैगशिप योजना का हिस्सा है जिसे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने 16 जनवरी, 2016 को शुभारम्भ किया जिसे राष्ट्रीय स्टार्ट–अप दिवस के रुप में मनाया जाता है जिसका संचालन उद्योग संवर्धन और आंतरिक व्यापार विभाग (डीपीआईआईटी), एमसीआई द्वारा किया जाता है। स्टार्ट–अप के माध्यम से भारत पूरे विश्व में अमेरिका और चायना के बाद तीसरे पायदान पर है

डीपीआईआईटी के अनुसार अस्सी हजार से अधिक स्टार्ट–अप काम कर रहे है जिनका जाल देश के 623 जिलो में फैला हुआ है जोकि 2020–21 तक 1.7 लाख लोगो को रोजगार देकर सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। राजस्थान में भी युवाओं के विचार को व्यापार में बदलने के लिए राजस्थान सरकार द्वारा फ्लैगशिप कार्यकर्मो में स्टार्ट–अप को बढ़ावा देने के लिए आई–स्टार्ट का श्री गणेश किया गया है, जिसमें 2000 से अधिक स्टार्ट–अप जुड़ कर कार्य कर रहे है, जोकि देश में सर्वोत्तम पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) को निर्मित कर रहे है। नवम्बर 2022 में नवीन स्टार्ट–अप नीति की घोषणा की गई जो आगामी पांच वर्ष तक क्रियाशील रहेगी।

राजस्थान में स्टार्ट–अप के उद्देश्य :–

राजस्थान सरकार की इस फ्लैगशिप योजना में स्टार्ट–अप सम्पूर्ण राज्य में फैलाने के लिए निम्नांकित उद्देश्यों को दृष्टिगत रखा गया है।

1. संपूर्ण भारत में राजस्थान को स्टार्ट–अप व व्यापार हेतु उचित वातावरण देकर सर्वोत्तम पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) स्थान बनाना ताकि लोग यहां पर आकर्षित होकर देश के स्टार्ट–अप की पहली पसंद बन सके।[8]
2. संपूर्ण राज्य में तेजी से कौशल विकास के साथ–साथ रोजगार की उत्पति हो सके।
3. सर्वाधिक संभावनाओं वाले क्षेत्र जैसे कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी कौशल में राजस्थान को प्रथम पायदान में लाकर खड़ा करना।
4. एससी, एसटी, महिला, ट्रांसजेंडर, दिव्यांग या विशिष्ट योग्यजन और ग्रामीण क्षेत्रों में सघन उद्यमिता को विकसित करना।
5. राजकीय सुधारों व सरकार की विभिन्न योजनायों को लागू करने में स्टार्ट–अप का सहयोग लेना।
6. उत्पाद आधारित स्टार्ट–अप को अधिकाधिक बढ़ावा देकर अनुकूल वातावरण तैयार करना।
7. स्टार्ट–अप के माध्यम से अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याएं– जैस स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास से सम्बंधित नवीन अद्यतन अभिनव समाधान खोजना।
8. निर्बाध तकनीकी व अभिनव विचारों को पोषित करना।
9. व्यापार और विपणन की सुविधाए विकसित करना।
10. भारत सरकार और राजस्थान सरकार की विभिन्न योजनाओं को और अधिक लाभदायक बनाने का प्रयास करना।

स्टार्ट–अप की रूपरेखा :–

राजस्थान में स्टार्ट–अप को प्रोत्साहित करने के लिए पूरे कार्य का सरलीकरण करके एकल खिड़की योजना लागू की गई, विचार और प्रस्ताव की स्वीकृति से लेकर पंजीकरण, वित्तीय सहायता इत्यादि कार्य एक ही प्लेटफार्म पर हो जाता है। राजस्थान में स्टार्ट–अप की रूपरेखा तैयार करते समय निम्न पांच भागों पर ध्यान दिया गया ताकि इसका यथोचित लाभ उद्यमियों को मिल सके।

1. स्टार्ट–अप सपोर्ट :–

इस स्तर पर किसी भी स्टार्ट–अप के किसी भी विचार को पूर्ण सहयोग दिया जाता है, इस चरण में

यदि कोई स्टार्ट–अप प्रस्ताव किसी नोडल संस्था या अधिकृत समिति द्वारा स्वीकृत होने पर 10,000 से लेकर एक लाख रुपये तक दिया जाता है। इसके साथ–साथ बिना किसी अतिरिक्त लागत के लैब, पुस्तकालय (कॉलेज और विश्वविधालय), अन्य सरकारी एजेंसी की सहायता भी आसानी से उपलब्ध होती है। जिसमें उत्पाद के विपणन और वाणिज्य सम्बन्धी सुविधा, सुरक्षित वित्तीय सहायता हेतु स्टार्ट–अप की लागत का 25 प्रतिशत किसी पंजीकृत व प्रसिद्ध इनक्यूबेटर केंद्र या संस्थान से ऋण के रूप में दिलवाया जाता है, जिसमें आईआईएम, आईआईटी, एनआईटी जैसे संस्थान भी वित्तीय (ऋण के रूप में) व तकनीकी सहयोग देते है।

2. विद्यार्थी नवीन उधमी सहयोग :–

यदि किसी छात्र या छात्रों के समूह का कोई स्टार्ट–अप प्रस्ताव किसी भी इनक्यूबेटर सेंटर या इन्क्यूबेशन के लिए स्वीकृत होता है, तो उस छात्र या छात्रों के समूह को 5 प्रतिशत ग्रेस अंक और 20 प्रतिशत उपस्थिति दी जाती है। यदि कोई छात्र अपने इस प्रोजेक्ट को अंतिम वर्ष में जुड़वाना चाहे तो उसकी भी अनुमति होगी। इसके लिए उससे अपनी डिग्री पूर्ण करने लिए एक साल का अन्तराल भी देय है। छात्रों में उद्यमिता विकास हेतु पेशेवर कॉलेज में ई–सेल निर्मित की जायेंगी जो इन्क्यूबेशन केंद्र से जुड़ी हुई होगी, यदि कोई प्रोजेक्ट इसमें स्वीकृत होता है तो स्थापित ई–सेल के माध्यम से 10 लाख रुपये तक की वित्तीय सुविधा दी जायेगी। नोडल संस्थान द्वारा पूरे राज्य में अभिनव व्यावसायिक विचार और उद्यमिता को बढ़ाने के लिए राज्य व्यापार प्रतियोगिता आयोजित की जायेगी जिसमे समिति द्वारा चयनित शीर्ष 50 विजेताओं को पचास हजार रुपये प्रत्येक को दिए जायेंगे।

3. इन्क्यूबेशन सहयोग :–

राज्य में स्थित IIM, NIT, IIT, BITS, LMNIIT, सरकारी व निजी इंजीनियरिंग कॉलेज (ऐसे महाविद्यालय जिनकी स्थापना को 31 मार्च, 2016 तक 15 वर्ष पूर्ण हो चुके है) राज्य सरकार मेजबान संस्थान (Host Institutes H I) आदि को स्थापित किया जायेगा जिन्हें 50 लाख रुपये एक बार के लिए पूंजीगत खर्चो के लिए दिए जायेंगे ताकि वहां पर अनुसंधान और विकास सम्बन्धी कार्य किया जा सके। राजस्थान में 20 अगस्त, 2022 तक 30 आई–स्टार्ट नेस्ट इन्क्यूबेशन केन्द्र स्थापित किए जाएंगे। वर्तमान में यह इन्क्यूबेशन केन्द्र 7 जिलों कोटा, उदयपुर, भरतपुर, बीकानेर, जोधपुर, पाली, चूरू में स्थापित किए गए है, सभी इन्क्यूबेशन केन्द्र अत्याधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण होंगे, जो बिना किसी अतिरिक्त लागत के किसी भी स्टार्ट–अप को अपना सहयोग देकर सफल बनाएंगे। इस कार्यक्रम को वितीय ताकत देने के लिए सरकार एक कोष का निर्माण करेगी जो राजस्थान अभिनव कोष के नाम से होगा जिसमें 75 करोड़ रुपये बेंचर केपिटल कोष के रूप में होंगे।

4. स्टार्ट–अप उत्सव :–

राज्य में एक बड़ा और दो छोटे स्टार्ट–अप उत्सव आयोजित किए जायेंगे जिसके कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आविष्कारों व स्टार्ट–अप से प्रदेश के नवीन उद्यमी स्टार्ट–अप विचारक परिचित हो सके, उनसे प्रेरणा ले सके।

5. **वार्षिक मूल्यांकन :-**

ओद्योगिक विभाग द्वारा इन सभी कार्यों और नीतियों का मूल्यांकन वार्षिक आधार पर किया जायेगा।

राजस्थान में स्टार्ट-अप के लिए चुनौतिया :-

यद्यपि स्टार्ट–अप योजना राजस्थान में उद्योग वातावरण के निर्माण में अहम् भूमिका रखता है फिर भी इसके समक्ष निम्नांकित चुनौतियां है।

1. अधिकतर स्टार्ट–अप प्रारंभ होने के कुछ समय बाद ही असफलता के कारण बंद हो जाते है, एक अनुमान के अनुसार ये दर 10 प्रतिशत है।
2. आजकल के युवाओं में जोखिम वहन करने और अस्थाई आय वाले कार्यों में कम रूचि रखते है, इस कारण वे सरकारी नौकरी या स्थाई आय वाला कार्य करना पसंद करते है, इसलिए उनमें उचित उद्यमशीलता नहीं है ।
3. स्टार्ट–अप के लिए प्रस्ताव को स्वीकृत करवा कर वित्त प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है और इसमें समय भी बहुत लगता है।
4. आधुनिक समय में तकनीक परिवर्तन भी तेज़ी से हो रहा है, इस कारण स्टार्ट–अप शुरू करने और बाज़ार में आने में बहुत समय लगने से तकनीकी परेशानियों का सामना करना पड़ता है।
5. कोरोना–19 जैसी महामारी ने बहुत से उद्योगों को शैशव काल में नष्ट कर दिया इस प्रकार की महामारियां और सामाजिक समस्याएं भी बड़ी चुनौती है।
6. बड़ा विनियोग और सहायता किसी भी प्रोजेक्ट या अभिनव विचार की सफलता की गारंटी नहीं है।

सुझाव :-

1. स्टार्ट–अप की प्रकियाओं को और अधिक सरल तथा कम समय वाली बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।
2. युवाओं को जोखिम लेने और उद्यम प्रवृति के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
3. कोई भी स्टार्ट–अप जो प्रारंभिक दौर में है, उसका विशेष ध्यान देकर जीवित रखने का प्रयास किया जाना चाहिए।
4. कोई भी स्टार्ट–अप यदि असफल होता दिखाई दे तो उस पर तुरंत सुधारात्मक कार्य करते हुए और विकल्पों की तलाश की जानी चाहिए।
5. प्रत्येक स्टार्ट–अप की उचित देखभाल और नियंत्रण किया जाना चाहिए।
6. कपट साइबर ठगी जैसी अप्रत्याशित घटनाओं से सुरक्षा चक्र बनाया जाना चाहिए।
7. बहुत बड़े विनियोग वाले प्रोजेक्ट केवल विशिष्ट लोगो की देखरेख में दिए जाने चाहिए।

उपसंहार :-

राजस्थान में स्टार्ट–अप आर्थिक विकास व रोजगार सृजन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके माध्यम से सुखद उचित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण किया जा सकता है, जिससे न केवल नवीन बल्कि वरिष्ठ

उद्यमियों को भी व्यावसायिक गतिविधियों के लिए सुअवसर उपलब्ध करवाना है ताकि राजस्थान राज्य नवीन तकनीक और बौद्धिक सम्पदा के द्वारा नवाचार को सृजन किया जा सके। स्टार्ट–अप से ग्रामीण क्षेत्रो में लघु–कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए वित्त पूर्ति की जा सके। स्टार्ट–अप के माध्यम से रचनात्मक विचारों को आसानी से उड़ान दी जा सकती है। निःसंदेह स्टार्ट–अप राजस्थान के युवाओं के अभिनव व सार्थक विचारों को पंख देने और स्वर्णिम राजस्थान का सपना साकार रखने की क्षमता रखता है। स्टार्ट–अप कार्यक्रम राज्य के युवाओं को देश–विदेश से जोड़कर नवीन ज्ञान व जानकारी प्राप्त करके अपनी रचनात्मकता और मानसिक विकास करने में काफी सहयोगी है। स्टार्ट–अप से सभी प्रकार के युवा नागरिक चाहे स्त्री, पुरुष, ग्रामीण, शहरी हो, के लिए उपयोगी है, इसे और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ :–

1. https://pib.gov.in/PressReleasePage-aspx\PRID/1724043
2. https://www-investopedia-com.translate.goog/terms/s/startup-asp\&x&tr&sl¾en&&x&tr&tl¾hi& &x&tr&hl¾hi&-x-tr-pto/tc,sc.
3. https://istart-rajasthan&gov&in-translate-goog/incubation&nest\&x&tr&sl¾en&&x&tr&tl¾hi& &x&tr&hl¾hi&&x&tr&pto/tc,sc
4. https://www.fincash.com/l/hi/startup-india-scheme
5. दैनिक भास्कर (29 जुलाई, 2022)
6. राजस्थान में नई स्टार्ट अप नीति (जी न्यूज़ 16 जनवरी, 2022)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 67-71

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सतत विकास एवं लक्ष्यों के प्रति राजस्थान की प्रतिबद्धता

डॉ. ललित कुमार पुरोहित
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, बिनानी कन्या महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

सतत विकास वह विकास है जो भावी पीढ़ियों की अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने की समर्थता से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है। भावी पीढ़ी की इन्हीं आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 17 सतत विकास लक्ष्य बनाये गये है। जिन्हें 2030 तक प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। भारत में नीति आयोग एसडीजी इण्डिया इंडेक्स व डैशबोर्ड इन सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में सभी राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रयासों में प्रगति को जांचने के लिए विकसित किया गया है। नीति आयोग वर्ष 2018 से सालाना एसडीजी इंडिया इंडेक्स प्रकाशित कर रहा है। राजस्थान भी सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध है। एसडीजी इंडिया इंडेक्स की 2021–22 की रिपोर्ट के अनुसार एसडीजी संख्या 10, 15, 13, 5 व 9 पर काफी ध्यान देने की आवश्यकता है।

कुंजी शब्द :– सतत विकास, सतत विकास लक्ष्य, नीति आयोग, एसडीजी इंडिया इंडेक्स, ब्रंटलैण्ड आयोग।

वृद्धि व विकास प्रत्येक अर्थव्यवस्था चाहे वह विकसित हो या विकासशील, का प्रमुख उद्देश्य होता है, विकास की इसी तीव्र लालसा ने प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन की समस्या खड़ी कर दी है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से भावी पीढ़ी के समक्ष इन संसाधनों की उपलब्धता पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया है। भावी पीढ़ी के लिए इन संसाधनों की उपलब्धता बनाये रखना तथा साथ ही विकास प्रक्रिया को अनवरत जारी रखना ही सतत विकास की अवधारणा का मूल है। सतत विकास वास्तव में संसाधनों का उपयोग करने का आदर्श मॉडल है जो यह बताता है कि आर्थिक विकास के साथ–साथ पर्यावरण को भी सुरक्षित रखना है।

सतत विकास का उद्भव :–

सतत विकास की अवधारणा का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कई बार उपयोग किया गया लेकिन सतत विकास की अवधारणा को 1972 में स्टॉकहॉम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हुई। यद्यपि इस समय इसकी अवधारणा स्पष्ट नहीं थी। सतत विकास शब्द का वास्तविक रूप में विकास वर्ष 1987 में ब्रंटलैण्ड आयोग की रिर्पोट 'हमारा साझा भविष्य' (Our Common Future) के प्रकाशन के साथ हुआ तथा आयोग द्वारा सतत विकास को परिभाषित किया गया।

1. 1992 में रियो डी जिनेरियो में आयोजित पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का आधार सतत विकास की अवधारणा थी इसमें 100 से अधिक राष्ट्राध्यक्षों और 178 राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसी सम्मेलन में एजेण्डा–21 को अपनाया गया।

2. वर्ष 2002 में जोहान्सबर्ग में सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें रियो सम्मेलन की प्रगति की समीक्षा की गई।

3. वर्ष 2012 में रियो डी जिनेरियो में सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन सम्पन्न हुआ इसे रियो +20 भी कहते है। इस सम्मेलन में सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र के दस्तावेज ''द फ्यूचर वी वॉन्ट'' का समर्थन किया गया जो सतत विकास व हरित अर्थव्यवस्था पर घोषणा है।

सतत विकास की परिभाषा :–

सतत विकास को 1987 में ब्रंटलैण्ड आयोग द्वारा परिभाषित किया गया था इसके अनुसार ''सतत विकास वह विकास है जो भावी पीढ़ियों की अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने की समर्थता से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।'' इस तरह हमें प्राकृतिक संसाधनों को बचाना होगा। सतत विकास उन स्थितियों को निर्मित एवं कायम रखती है जिनके अन्तर्गत मानव और प्रकृति एक साथ अपना अस्तित्व बनाये रख सकते है। यह वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियों की सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य जरूरतों को पूरा करने की अनुमति देती है।

सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Developmental Goals) :-

ब्राजील के रियो डी जेनेरियो शहर में जून 2012 में सतत विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (रियो +20) में ''दि फ्यूचर वी वॉन्ट'' नामक दस्तावेज द्वारा अधिदेशित 30 सदस्य कार्यदल ने जुलाई 2014 में 17 सतत् विकास लक्ष्य (Sustainable Devlopmental Goals, SDGs) जारी किये है। इन लक्ष्यों में व्यापक स्तर पर सतत विकास के मुद्दे शामिल किये गये है। इन लक्ष्यों को संयुक्त राष्ट्र के 2015 पश्च विकास एजेण्डा (Post 2015 Development Agenda) में समेकित किया गया है। इन लक्ष्यों को 2030 तक पूरा करना है। ये सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) निम्न है :–

एसडीजी 1 : कोई गरीब/निर्धन नहीं

एसडीजी 2 : कोई भूखा नहीं/जीरो हंगर

एसडीजी 3 : अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण

एसडीजी 4 : गुणवतापूर्ण शिक्षा

एसडीजी 5 : लैगिंक समानता

एसडीजी 6 : स्वच्छ जल एवं स्वच्छता

एसडीजी 7 : वहनीय और स्वच्छ उर्जा

एसडीजी 8 : अच्छा काम और आर्थिक विकास

एसडीजी 9 : उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचा

एसडीजी 10% असमानता में कमी

एसडीजी 11% संधारणीय शहर और समुदाय

एसडीजी 12% जिम्मेदारीपूर्ण खपत और उत्पादन

एसडीजी 13% जलवायु संबंधी कार्यवाही

एसडीजी 14% पानी के नीचे जीवन' (केवल नौ तटीय राज्यों–गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल की गणना की गई)

एसडीजी 15% भूमि पर जीवन

एसडीजी 16% शान्ति, न्याय और मजबूत संस्थाऐं

एसडीजी 17% वैश्विक भागीदारी

भारत एवं सतत विकास :-

भारत सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सकारात्मक रूप से प्रयत्नशील है। 12वीं पंचवर्षीय योजना में सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर अत्यधिक बल दिया गया था। सितम्बर 2015 में भारत सहित 193 देशों ने सतत विकास लक्ष्यों की दिशा में संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव, ''ट्रांसफार्मिंग अवर वर्ड: द 2030 एजेंडा फोर सस्टेनेबल डेवलपमेन्ट'' में वर्णित प्रतिबद्धता जाहिर की।

राजस्थान एवं सतत विकास :-

भारत द्वारा सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में राज्य सरकारों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत के संघीय ढांचे का तात्पर्य है कि देश के एसडीजी को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति को सक्षम करने के लिए राज्यों को भी आगे आना चाहिए। नीति आयोग एसडीजी इंडिया इंडेक्स, एसडीजी प्रगति की दिशा में दुनिया का पहला सरकारी उप—राष्ट्रीय उपाय है। इसे एसडीजी हासिल करने की दिशा में सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों (यूटी) के प्रयासों में प्रगति को जाँचने के लिए विकसित किया गया है। यह सूचकांक मानता है कि सभी स्तरों पर कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है, और इसलिए यह सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद के दृष्टिकोण पर आधारित है।

नीति आयोग वर्ष 2018 से सालाना एसडीजी इंडिया इंडेक्स प्रकाशित कर रहा है। नीति आयोग एसडीजी इंडिया इंडेक्स (2020—21) का तीसरा संस्करण प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश के लिए 16 एसडीजी पर लक्ष्य—वार स्कोर और लक्ष्य 17 पर गुणात्मक मूल्यांकन की गणना करता है।

कुल मिलाकर राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश के स्कोर 16 एसडीजी में इसके प्रदर्शन के आधार पर उप—राष्ट्रीय इकाई के समग्र प्रदर्शन को मापने के लिए लक्ष्य—वार स्कोर से उत्पन्न होते हैं। ये स्कोर 0—100 के बीच होते हैं, राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों को उनके स्कोर के आधार पर एस्पिरेंट (स्कोर 0—49), परफॉर्मर (स्कोर 50—64), फ्रंट रनर (स्कोर 65—99) और अचीवर (स्कोर 100) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में हम सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में राजस्थान राज्य की प्रगति का मूल्यांकन करेंगे ताकि हम यह जान सके कि किन लक्ष्यों की प्राप्ति में हमारी स्थिति संतोषजनक है तथा किन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है। नीति आयोग एसडीजी इण्डिया इंडेक्स और डेशबोर्ड की 2020—21 की रिर्पोट के अनुसार राजस्थान की प्रगति निम्नांकित तालिका अनुसार है :

वर्ग	सतत विकास लक्ष्य संख्या
एस्पिरेंट (स्कोर 0—49)	एसडीजी 10 असमानता में कमी (45)
	एसडीजी 15 भूमि पर जीवन (43)
	एसडीजी 13 जलवायु संबंधी कार्यवाही (49)
	एसडीजी 5 लैंगिक समानता (39)
	एसडीजी 9 उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचा (45)
परफॉर्मर (स्कोर 50—64)	एसडीजी 6 स्वच्छ जल एवं स्वच्छता (54)
	एसडीजी 1 कोई निर्धन नहीं (63)
	एसडीजी 8 अच्छा काम और आर्थिक विकास (57)

	एसडीजी 4 गुणवतापूर्ण शिक्षा (60)
	एसडीजी 2 जीरो हंगर/कोई भूखा नहीं (53)
फ्रंट रनर (स्कोर 65–99)	एसडीजी 12 जिम्मेदारपूर्ण खपत और उत्पादन (74)
	एसडीजी 16 शांति, न्याय और मजबूत संस्थाऐं (73)
	एसडीजी 11 संधारणीय शहर और समुदाय (81)
	एसडीजी 3 अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण (70)
अचीवर (स्कोर 100)	एसडीजी 7 वहनीय और स्वच्छ ऊर्जा (100)

(कोष्ठक में दी गई संख्या इन विकास लक्ष्यों का स्कोर बताती है।)

नीति आयोग एसडीजी इण्डिया इंडैक्स और डे ाबोर्ड की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि एसडीजी 7 में राजस्थान एचीवर है, एसडीजी संख्या 12,16,11 एवं 3 में फ्रंट रनर है एसडीजी संख्या 6,1,8,4 व 2 में परफोरमर है। उपरोक्त स्थितियाँ सन्तोषजनक कही जा सकती है तथा पूर्ण उम्मीद है कि 2030 तक इन लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति कर ली जायेगी।

विशेष ध्यान एसडीजी संख्या 10, 15,13, 5 एवं 9 पर दिये जाने की आवश्यकता है क्योंकि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अभी राजस्थान का स्कोर काफी कम है। इन लक्ष्यों को प्राप्त स्कोर के आधार पर एस्पिरेंट श्रेणी (0–49) में रखा गया है जो इस दिशा में विवेकपूर्ण व लक्ष्य केन्द्रित नीति की आवश्यकता को बताता है। सभी 16 सतत विकास लक्ष्यों में लैंगिक समानता आधारित लक्ष्य (एसडीजी 5) का स्कोर 39 है जो कि न्यूनतम है, यह स्कोर महिला सशक्तिकरण की दिशा में उपर्युक्त उपायों को अपनाकर बढ़ाया जा सकता है और पूर्ण प्राप्ति के लिए प्रयास किया जा सकता है।

सतत विकास लक्ष्यों के प्रति राजस्थान की प्रतिबद्धता :–

राज्य के समग्र विकास के लिये राज्य सरकार पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध है एवं वर्ष 2030 तक एसडीजी को अर्जित करने वाले प्रयासों को गति प्रदान की गई है। राज्य में आयोजना विभाग सतत् विकास लक्ष्य के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये नोडल विभाग के रूप में कार्य कर रहा है। राजस्थान में आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय में एसडीजी को अर्जित करने हेतु प्रभावी मॉनिटरिंग, समीक्षा एवं संबंधित विभागों के साथ समन्वय करने के लिये एक सतत विकास लक्ष्य क्रियान्वयन केन्द्र स्थापित किया गया है। मुख्य सचिव, राजस्थान की अध्यक्षता में एक राज्य स्तरीय एसडीजी क्रियान्वयन एवं मॉनिटरिंग समिति का गठन किया गया है। राज्य स्तरीय समिति की अनुशंसा पर सतत विकास लक्ष्य के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु 8 सेक्टॉरल वर्किंग ग्रुप्स का भी गठन किया गया है। इसके अलावा एसडीजी के स्थानीयकरण को बढ़ावा देने के वैश्विक एवं राष्ट्रीय प्रयासों के क्रम में जिला स्तर पर एसडीजी की सामयिक समीक्षा तथा आकलन करने के लिये संबंधित जिला कलक्टर की अध्यक्षता में जिला स्तरीय एसडीजी क्रियान्वयन एवं मॉनिटरिंग समिति का गठन किया गया है।

उपरोक्त सकारात्मक प्रयासों के वांछित परिणाम जल्द ही प्राप्त किये जा सकेंगे तथा राजस्थान न केवल अपने संपूर्ण सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करेगा बल्कि भारत को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी अपना मूल्यवान योगदान देगा।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. आर्थिक समीक्षा भारत सरकार (संदर्भ वर्ष)
2. आर्थिक समीक्षा राजस्थान सरकार (संदर्भ वर्ष)
3. रोशन, राकेश कुमार–भारतीय अर्थव्यवस्था (अरिहन्त प्रकाशन)
4. ओझा एन.एन.–सामाजिक आर्थिक मुद्दे।
5. जैन टी.आर., ओहरी वी.के.–भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास।

डॉ. ललित कुमार पुरोहित

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र बिनानी कन्या महाविद्यालय, नत्थूसरगेट के बाहर, बीकानेर। (राज.)–334001

मोबाइल नम्बर : 9413190152, 9079365913

ईमेलः lalitdkpbkn@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 72-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रेबारी समाज की सांस्कृतिक विरासत का प्रतिबिम्ब – वेशभूषा एवं अलंकरण

डॉ. श्रुति अग्रवाल

सह–आचार्य, गृहविज्ञान (वस्त्र एवं परिधान), राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा।

सिंधु घाटी सभ्यता की प्राचीनतम खाना बदोश जातियों में से एक है– रेबारी। एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रवास करने वाली यह जाति मुख्य रूप से पशुपालन से जुड़ी हैं तथा पशुपालन व पशु संवर्धन में अपने परम्परागत ज्ञान व समझ का प्रयोग कर अपना जीवन यापन करती है। इन्हें रायका, देवासी, राहबरी जाति के नाम से भी जाना जाता है। मुख्य रूप से गुजरात व राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में संघर्षपूर्ण जीवनयापन करनेके उपरांत भी, कला एवं संस्कृति की पहचान अपनी वेशभुषा व आभूषण, अलंकारों से प्रदर्शित करती यह घुमंतु जाति अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ती है। ईरान से अफगानिस्तान व बलुचिस्तान होते हुए भारत में आकर निवास करने वालीइस जाति का धर्म हिंदु है। वेशभुषा में कई धार्मिक व सांस्कृतिक समागम लिये रेबारी मुस्लिम समाज के साथ भी सौहार्दपूर्ण संबंध रखते हैं जिसकी छाप वेशभुषा में नजर आती है। मुख्य रूप से पितृसत्त्तात्मक इस समाज में महिलायें सामाजिक अवसरों पर अपनी वेशभुषा द्वारा विशिष्टता का प्रदर्शन भी करती है। विभिन्न जादुई आकृतियां गोदने के रूप मे शरीर के विभिन्न भागों पर बनाकर अलंकृत किया जाता है साथ ही घर की दीवारों को भी कांचव रंगीन पत्थर द्वारा कलाकृतियां बना कर सजाया जाता है। विवाहित व अविवाहित, बालक वबड़े, सभी की पोशाकों में अवसरानुकूल विभिन्नता, एक समरसता उत्पन्न करती है। अपनी पहचान देश–विदेश में भी बना चुकी रेबारी कढाईसे लेपेटा, लुड़ी, चो–बागली आदि परिधानों को सजाया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी रेबारी कढाई को कलाकार– पाबी बेन,मगी देवी इत्यादि ने ख्याति दिलवायी है। अबगृह–सज्जा की सामग्री भी इस कला द्वारा बनायी जा रही है। यह शोध पत्र रेबारी समाज की सांस्कृतिक विरासत के प्रतिबिम्ब उनकी वेशभूषा एवं अलंकरण के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्रदानकरता है।

भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। मार्च 2022 तक यहां की जनसंख्या 8.02 करोड़ तथा कुल जनसंख्या का 3/10 भाग अनुसूचित जाति व जनजाति का है। अनुसूचित जाति राजस्थान की कुल जनसंख्या का 17.8% भाग बनाती है एवं वही अनुसूचित जनजाति 13.5% है। लगभग 59 उपजातियां राजस्थान की अनुसूचित जातियों में और 12 उपजातियां अनुसूचित जनजातियों में सम्मिलित हैं इसके अतिरिक्त 9 अधिसूचित जनजाति, 10 घुमंतु जनजाति तथा 13 अर्धघुमंतु जनजातियां हैं। घुमंतु जाति जैसे बालदिया, बंजारा, कारडी, डोम, गाडिया लुहार, कालबेलिया आदि तथा अर्धघुमंतु जनजाति जैसे–भोपा, रेबारी, मांगलिया, जोगी आदि अपना स्थायी निवास न होने के कारण इस श्रेणी में आते है।

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताएँ :-

रेबारी जाति सिंधु घाटी सभ्यता की प्राचीनतम खानाबदोश जातियों में से एक है, जो वर्तमान में प्रमुख रूप से केवल भारत में निवास करती है। प्रारंभ से इस जाति का मुख्य व्यवसाय ऊंट पालन रहा है, लेकिन कई दशकों से ये गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि मवेशियों का पालन भी करने लगे है। इन्हें राजस्थान में रायका, राईका, राहबारी जाति के नाम से भी जाना जाता है। कई स्थानों पर इन्हें 'देवासी' बुलाया जाता है, जिसका अर्थ है –जिसमे देवता निवास करते है, जो इनके लिए गौरव की बात है।[1] उत्तर–पश्चिम के राज्यों में राजस्थान के जोधपुर, पाली, सिरोंही, बाड़मेर, गुजरात के बनासकांठा, पाटन, मेहसाणा, सोराष्ट्र, हरियाणा के बुरढाना, केथल, पंजाब के पटियाला, भिंडरिया, मध्यप्रदेश के खजुरिया, उज्जेन, राजगढ़, उत्तर प्रदेश के जटारी व आसपास के स्थानों में इस समाज के लोग रहते है, यूं तो पूरे देश में रेबारी समाज के लोग रहते है पर जनसँख्या की दृष्टि से राजस्थान में सर्वाधिक तथा गुजरात के अतिरिक्त अन्य राज्य –हरियाणा, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में यह अधिक संख्या में निवास करते है। राजस्थान में कई पशुपालक समाज रहते है, किन्तु सबसे बड़ा, घुमंतू एवं चरवाह समाज रेबारी समाज ही है।[2] वास्तविक उद्भव अज्ञात है किन्तु यह माना जाता है कि ये ईरान से अफगानिस्तान व बलुचिस्तान होते हुए भारत में प्रवासी के रूप में आये थे। जबकि कुछ इतिहासविदों का यह मत है कि राजस्थान के राजपूत समाज से भी यह समाज संबंधित है। रेबारी शब्द का उद्गम फारसी भाषा के शब्द 'रेहबर' जिसका तात्पर्य मार्गदर्शक या रास्ता दिखाने वाला है, से माना जाता है, साथ ही शाब्दिक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि रेबारी समाज के लोग पशुपालक होने के कारण पशुओं को चराने हेतु या चारे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक घुमते हैं, इस कारण रास्तों व स्थानों के विषय में पूर्ण जानकार हो जाते है, जो कि रेहबर का अर्थ भी होता है।

स्वयं को शिव पार्वती के संतान मानते इस समाज के लोगों का विश्वास है कि माँ पार्वती ने एक समय गीली मिट्टी से एक विचित्र किन्तु सुंदर आकृति बनाकर शिव जी से उसमें प्राण फूंकने का आग्रह किया जिससे ऊंट की उत्पत्ति हुई। शिवजी ने ऊंट की रक्षा हेतु अपने हाथ की चमड़ी से एक मनुष्य की रचना जिन्हें 'चामड़' एवं बाद में अपभ्रंश के कारण 'सामड़' कह गया, सामड़ आज भी रेबारी समाज का प्रथम गोत्र माना जाता है।रेबारी समाज की मान्यता है कि शिवजी ने इन्हें पशुओं, विशेष रूप से ऊंट की देखभाल करने हेतु जीवन दिया है, अतः ये पशुपालन को पूजनीय काम व स्वंय को पशु मालिक नहीं अपितु देखरेख करता मानते है। रेबारियों की स्वयं की परम्परायें व रीति–रिवाज है,जो पशुधन के साथ उनके सामाजिक संगठन की पारिस्थितिक प्रबंधन में सहायता करता है।[3]

रेबारी को राजस्थान में 'रायका' नाम से भी जाना जाता है। इसके पीछे भी एक किवंदंती प्रसिद्ध है कि 'राय' नामक अप्सरा से विवाह होने पर पहले रेबारी पुरूष 'सम्बल' के परिवार की वंश वृद्धि हुई और इससे कई शाखा व उपनाम बनें, कुल 133 शाखा हैं जिन्हें सामुहिक रूप से 'विहोत्तर' कहा जाता है। 'वी' का अर्थ 20, 'हो' का अर्थ 100, व 'तर' का अर्थ 13, जोड़ने पर ये 133 बने है। इन उपजातियों को अन्य शाखाओं में बांटा गया है जिसे 'वास' या 'फाडियु' कहते है। ये उस शाखा के संस्थापक के नाम पर बनाई जाती है। प्रत्येक वास का पृथक कुल देवता, कुल देवी होते हैं। शेष माता, मोमई माता, खोडयार माता, विहट माता, चामुंडा माता कुल देवी के रूप में पूजी जाती है तथा पाबु दादा, गोगा दादा, वचरा दादा, वनवा दादा तथा क्षेत्रपाल दादा कुल देवता

के रूप में पूजे जाते है। हिन्दु देवी–देवताओ के साथ–साथ यह समाज सुफी संतो के प्रति भी आस्था रखता है। बड़ा पीर और पाथाजी पीर इस समाज के आराध्य पीर है। एक ही शाखा में वैवाहिक संबंध वर्जितहोता है क्योंकि ऐसा माना जाता है की एक शाखा के सभी सदस्यों के पूर्वज एक ही है। संगीत प्रेमी रेबारी समाज कई लोकगीत व कथाओं का वाचन ढोल, मोरचंग,अलगोज़ा जैसे वाध्य यंत्रों के साथ कर, पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक विरासत सौपते जाते है।

सिरोही जिले में स्थित सारणेश्वर धाम पर भाद्रपद माह की शुक्ल एकादशी तिथि पर रेबारी समाज का सबसे बड़ा मेला आयोजित होता है, जिसमे भाग लेने पूरे देश से रेबारी आते है। इस मेले की खासियत है की सभी समाज बन्धु ड्रेस कोड (सफ़ेद रेबारी पोशाक व लाल पगड़ी) का पालन करते है। मान्यता है कि मुग़ल शासकों से युद्ध में रेबारीओं ने अपनी जान की बाजी लगाकर वहां के राजघराने की सहायता की थी, इस घटना की याद में उक्त तिथि पर राजघराना आज भी अपने अधिकार व सम्मान का प्रतीक– अपनी राजशाही पगड़ी, रेबारी समाज को सौपता है, यह परम्परा सदियों से निभाई जा रही है।

प्रकृति के साथ जीवन जीने की कला में रेबारी को महारत हासिल है। पथ प्रदर्शक के रूप में तथा पद चिन्हों को पहचानने हेतु कई बार इन्हें राजाओं द्वारा नियुक्त किया जाता था। रियासत काल में परिवहन के लिए भी ऊंटों का उपयोग किया जाता था तथा यह समाज इस हेतु साधन सम्पन्न था। ऐसा माना जाता है कि रेबारी समुदाय पूरी पृथ्वी के चार चक्कर लगा लेने जितना भ्रमण अपने जीवन काल में कर लेते है। सूखे मौसम में कुछ रेबारी समूह अपने गाँव छोड़ कर हरी चरवाह भूमि की तलाश में प्रवास करते है जिससे कई महीनो तक घर से दूर हो जाते है।[4] इस अवधि में वे अपने पारम्परिक ज्ञान का प्रयोग करते हुए पशुपालन एवं पशुसंवर्धन के साथ–साथ पशुओं से संबंधित बीमारियों का भी निदान देसी व उपलब्ध जड़ी–बूटियों से सफलतापूर्वक कर लेते हैं। पूर्ण रूप से शाकाहारी यह समाज अपनी सांस्कृतिक परंपराओं के चलते पशु वध को अनुचित मानता है। खान पान में ये मोटे अनाजों व दूध से बने व्यंजनों को अधिक सम्मिलित करते है। पहले पशुओं के दुध, ऊन आदि का प्रयोग घर परिवार की आवश्यकता पूरी करने हेतु किया जाता था किन्तु अब कोई अन्य उत्पादक संपति या स्वरोजगार न होने के कारण रेबारी समुदाय इनका व्यापार आजीविका यापन हेतु भी करता है।

'डांग' एक समुह होता है जिसमें 5 से 25 एकल रेबारी परिवार शामिल होते हैं। प्रत्येक परिवार के साथ उसके भेड़, बकरी, ऊंट आदि होते है, जो की घर गृहस्थी के सामान लाने ले–जाने के लिए भी उपयोगी होते है। डांग के मुखिया का चयन सदस्यों द्वारा एक मत से किया जाता है जिसे पटेल कहा जाता है। यह विश्वसनीय, अन्य गांवों तथा डांगो से सम्पर्क साधने में कुशल एवं प्रवास मार्ग का जानकार होता हैं। पटेल की मुख्य काबिलियत यह होती है की वह सबसे उचित व उपयुक्त चरवाहा भूमि की खोज कर वहां की स्थानीय पंचायत से अपने डांग के जानवरों को चराने की स्वीकृति की व्यवस्था करे। पटेल एक के बाद, अगले प्रवास के स्थान को खोजने के लिए आगे बढ़ जाता है। डांग के सदस्य चाहें तब तक पटेल अपने पद पर बना रह सकता है। लगभग प्रत्येक दिवस एक नये स्थान पर प्रवास करते डांग निकलने से पूर्व मां पार्वती, जिन्हें वे अपनी मां मानते है, से आशीर्वाद रूपी आज्ञा लेते है। प्रवास स्थान पर पहुचने पर पुरूष अपने जानवर चराते है, कुछ जानवर के उत्पाद दुघ, घी, ऊन इत्यादि बेचने का व्यवसाय करते हैं तथा महिलाएं पानी लाना, खाना बनाना, बच्चों को संभालना आदि घरेलू कार्य करती है। अपनी घर गृहस्थी का साजो सामान ऊंट से उतारना और वापस

लदवाना भी महिलाओं का ही कार्य है। ऊंट इस समुदाय का एक अभिन्न अंग है, आर्थिक रूप से कमजोर परिवार के पास भी कम से कम एक ऊंट होता हैं। किसी कारणवश ऊंट की मृत्यु होने पर परिवार पर मुसीबत आ जाती है। घुमंतु होने के कारण आगे परिवहन के लिए ऊंट की व्यवस्था हेतु सदस्य कर्ज लेकर या अपने भेड़ बकरी इत्यादि को बेचकर ऊंट खरीदते है।

परिधान एवं वेशभूषा :–

पूर्व के अपने मुख्य कार्य– चरवाही व पशुपालन की उपनिवेशवाद काल पश्चात घटती स्थिति के मद्देनजर रेबारी स्वयं पुनरावलोकन कर अपनी पहचान स्थापित करने के लिए प्रयासरत है, एवं उनकी अस्मिता के पुनर्विन्यासन में वेशभूषा महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[5] 'अलंकरण' भारतीय सभ्यता में मानवता को कई प्रकार से परिभाषित करते है– देवी देवताओं को आकर्षित करने, व्यक्ति व समाज की रक्षा करने, संजातीय पहचान बनाने, या समूह के दैनिक जीवन व इतिहास को उद्गारित करने में। भारत में विशेषरूप से, ग्रामीण के जीवन एवं संस्कृति में अलंकरण व सजावटीकरण पूर्ण रूप से रचा बसा है।[6]

पुरूष वेशभूषा :–

क्षेत्र के आधार पर परिधानों में मामूली विभिन्नता रहती है, राजस्थान में रेबारी रंग–बिरंगे सुंदर वस्त्र पहनते है, जबकि गुजरात के रेबारी अधिकांशतः सफेद रंग के वस्त्र पहनते है। पुरूष की वेशभूषा सफेद रहती है इसे 'चोकसी' कहते है। निचले भाग में पयजामा नुमा परिधान 'चोरनो', जो की सिली हुई धोती के सामान दिखाई देता है, पहना जाता है व कमर पर इसे डोरी द्वारा बांधा जाता है। 'केडीयू' एक दोहरी छाती वाला घेरदार कुर्ता होता है जो 'चोरनो' के साथ पहना जाता है, इसे 'अंगरखा' भी कहते है जिसमें आस्तीन लम्बी होती है। यह 'अंगरखा' कमर या कुल्हे तक की लम्बाई का होता है। बालको के इस प्रकार के वस्त्र को 'जुलाड़ी' कहा जाता है तथा 'वंजनु' व 'बंडी' क्रमशः बालकों के शरीर के नीचे व उपर के भाग के परिधानों को कहा जाता है।[7] रेगिस्तान के रेतीले वातावरण में सफेद रंग के वस्त्र धुल मिट्टी से शीघ्र मटमैले हो जाते है किन्तु इस समाज के लिए सफेद रंग के वस्त्र पहनना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि गर्मी के मौसम में घर से बाहर रहना पड़ता है और सफेद परिधानों में गर्मी से बचाव होता है। इसके साथ ही एक धोती भी धारण की जाती है जिसे 'पचेड़ी' कहते है।

पूर्व में संकरे करघे पर बुनी होने के कारण इसे दो भागों में बनाया जाता था और बाद में मध्य से रंगीन धागों द्वारा जोड़ दिया जाता था, किन्तु अब मिल–निर्मित होने के कारण एकल वस्त्र से 'पचेड़ी' बनायीं जाती है,और जोड़ का आभास देने के लिए एक सीधी रेखा में कशीदा कर दिया जाता है। घुटनों से नीचे तक की धोती, जिसे 'एक लांग' धोती कहते है तथा टखनों तक की धोती, जिसे 'दो लांग' धोती कहते हैं, पुरूषों का प्रमुख अधो परिधान है। पुरूषों के वस्त्रों पर भी कढाई हुई रहती है जिसमें फूल व जानवरों के नमूने बने रहते है। बुजुर्ग पुरूष बताते है की पहले जाकेट का एक प्रकार जिसे 'अंगडी' कहते है, पहना जाता था किन्तु समय के साथ–साथ इसका प्रयोग अब बंद हो गया है। पूर्व में राजाओं व सरदारों द्वारा जो पगडी पहनी जाती थी उस पर जरी, कसीदा या छपाई का अतिरिक्त कपड़ा लगाया जाता था, इसे 'लपेटा' कहा जाता था। 'लपेटे' से व्यक्ति का समाज में औहदे का पता चलता था। पगड़ी बांधने का तरीका 'गोल पेच' का होता है, इसमे पीछे से कपड़ा लटकता नहीं दिखाई देता। पगड़ी का कार्य गर्मी से सिर का बचाव तो करना ही है साथ ही आवश्यकता होने

पर इसे सिर के सहारे हेतु भी प्रयोग मे लिया जाता है। लाल रंग की पगड़ी जो अकसर युवाओं द्वारा अवसरों पर पहनी जाती है, छह से आठ मीटर लम्बी होती है। सामान्य दिवसों में बुजुर्ग पुरूष लाल रंग के स्थान पर सफेद पगडी पहनते है। घुमंतू कार्य होने के कारण पैरों में चमड़े के मजबूत जूते या सैडील पहनते है।

पुरूष आभूषण :–

रेबारी पुरूष गले में एक विशेष प्रकार का 'मंदालिया' (पेंडेंट) पहनते है, जिस पर उनके आराध्य देवी–देवता या ऊंट की सवारी करते सशस्त्र योद्धा होते है। पूर्वकाल में रेबारियों को राजाओं द्वारा युद्ध में सैनिक के रूप में नियुक्त किया जाता था, इसी के परिचायक के रूप मे यह धारण किया जाता है। पुरूष हाथ में चांदी का 'कड़ा' भी पहनते है, जिसके मुंख पर शिवलिंग की सुंदर आकृतियां बनी होती है।कानो में 'मुर्की' व 'झेला' पहना जाता हैसाथ ही अर्धशंख आकार के भारी कर्णफूल पहनते भी है जिसे 'तोलिया' कहा जाता है। बाल्यावस्था में नामकरण संस्कार के समय बालक को एक विशिष्ठ प्रकार के सिर सज्जा का आभुषण भी पहनाया जाता है।

महिला वेशभूषा :–

रेबारी महिलाएं 60 से 80 मोड़ का, आठ मीटर कपड़े से बना कलीदार घाघरा पहनती है तथा इसमें घेर की लम्बाई को टकने तक रखा जाता है। जमीन से 8–10 इंच ऊंचे घाघरे पर 3 इंच की ओरेबी कपडे की बनी 'मगजी' होती है। घाघरे व मगजी के बीच में चमकीली किनारी भी लगाई जाती है जिसे 'गुना' कहते है। लाल वस्त्र पर हरी तथा पीलेवस्त्र पर नीली किनारी वाला 'ओढना'रेबारी महिलाओं में प्रचलित है। वक्षस्थल के मध्य भाग को प्रदर्शित करती छोटी बाजू की 'कांचली' अंग–वस्त्र के रूप में महिलाओं द्वारा पहनी जाती है, जिसे पीछे की ओर कपड़े की तनियों से बांधा जाता है। इसके सामने के ऊपरी भाग को सुंदर कशीदे द्वारा सजाया जाता है। आगे व पीछे की ओर का भाग आयातकार आकार के कपडे से बनाया जाता है जिसमे गले की लिए कटाव व बाजु की कांख के लिए गज़ेट (चौकोर कपडे को तिकोना मोड़ कर सिलाई करने की प्रक्रिया) लगाया जाता है जिससे अंग संचालन में सुविधा रहे।[8] 'कांचली' का यह भाग कुर्ती द्वारा ढका हुआ नहीं रहता है।विवाहित महिलाओं के ब्लाउज में सीने के मध्य में चुन्नटें डली होती है। स्त्री शरीर के सीने की गोलाई को शालीन ढंग से समायोजित करने के लिए आगे की ओर गोलाई में नमूने बनाते हुए कशीदाकारी की जाती है, जिससे वहां फिटिंग सम्बन्धी समस्या न आये, किन्तु यह गोलाईयां केवल फिटिंग प्रदान करने के लिए नहीं बनायी जाती, अपितु माना जाता है की सजावट के इस रूप द्वारा नवजात शिशु के लिए जीवनदायिनी माँ की छाती की रक्षा होती है।[9]

अविवाहित कन्यायें 'अंगीया' पहनती है जो अधिकांशतः मेरू (लाल व हरे रंग की आभा लिए) रंग की होती है। सीने पर पूर्ण रूप से कसा, गहरे गले, कम लम्बाई व छोटी बाजू वाला यह परिधान जिग–जेग पट्टी या गोटे से सुसज्जित होता है। अविवाहित कन्याएं शरीर के उपरी भाग में 'जंपर' पहनती जो लम्बी बाजू का होता है। विधवा महिला नीले या गहरे भूरे रंग (कुंरसा) का वस्त्र पहनती है। ये रंग उसके विधवा होने की पहचान माने जाते है। कुर्ती कांचली के स्थान पर विधवा महिला सादा वस्त्र, पूरी बाजु की 'अंगिया' व काले रंग की 'ओढनी' पहनती है जिसे 'दमनी' या 'पोकण' ओढनी भी कहते है। विधवा महिला की पोशाक भिन्नता लिये होती है, उनके घाघरे में 'गुणा' या 'मगजी' नहीं लगती, कम उम्र की विधवा महिला जामुनिया रंग की ओढनी भी प्रयोग में लेती है एवं पूरे काले रंग के वस्त्र ही पहनती है जिस पर कोई ऊपरी सजावट नहीं होती। बुजुर्ग महिला मुख्य रूप

से ‘मक्खी भात’ ओढना प्रयोग में लेती है जिसमें लाल ओढने परपीले रंग के छापे होते है तथा मगजी नीले रंग की होती है। ओढने का वस्त्र (लूडी) विभिन्न आयु के अनुसार अलग रंग का होता है। महिला विवाहित है या अविवाहित, इसकी जानकारी ‘लूढी’ के रंग से हो जाती है। कम उम्र की अविवाहित कन्या सफेद ‘लूडी’ या ‘ओढना’ पहनती है जबकि उमरदराज महिला काली या भूरी ‘लूडी’ पहनती है। विवाहित महिला की ‘लूडी’ में लाल रंग के छोटे–छोटे गोलाकर नमूने होते है। कहीं तंबाकू रंग का ओढना भी धारण किया जाता है जिसे ‘लालर ओढना’ भी कहते है। घाघरा अधिकतर नीले रंग का होता है जिसे ‘फेटिया’ कहते है। निंबोली भात, मटर भात, लुंग भात जैसे प्रिंटेड घाघरे नीले रंग पर लाल रंग के छापे से बने होते है। विशेष अवसरों पर कशीदाकारी किया एक वस्त्र, जिसे ‘पेटिया’’ या पुठिया’ भी कहा जाता है, कमर के सीधी ओर बांधा जाता है।

‘लूढी’ एक सिर पर डाला जाने वाला वस्त्र है, जो की बंधेज व कशीदे का मिला–जुला परिधान होता है। यह ऊन द्वारा बनाया जाता है और इसकी विशेषता यह है की इसे भी दो भागों में बनाया जाता है और फिर बीच से बहुरंगीय धागे द्वारा हाथ के कशीदे से जोड़ा जाता है, यह विवाहित महिला द्वारा अपने पति के घर जाते समय पहना जाता है। यह वस्त्र विधवा महिलाओं द्वारा नहीं पहना जाता। कशीदाकारी की जैकिट को ‘चो–बागली’ कहते है। प्रथम संतानोत्पत्ति के बाद पीहर पक्ष द्वारा दिये गये सामानो में यह मुख्य रूप से सम्मिलित होती है। इसमें सामने के पैनलों पर बोर्डर में व्यवस्थित पीले रंग के नमूनों को ‘खरी कांगरी’ कहते है और कांच के साथ किया गया चौकोर कशीदा पूरे क्षेत्र में नमूनें के रूप में फैला होता इसे ‘खापचोकडी’ कहते है।

रेबारी महिला द्वारा परिधानों में काले वस्त्र अधिक पहनने के पीछे भी एक रोचक किवंदंती है, ऐसा कहा जाता है की एक शासक, रेबारी कन्या पर आसक्त हो गया एवं उससे विवाह करने की ठान ली, उसके इस कृत्य को रेबारी समाज ने वर्जित माना, इससे क्रोधित होकर राजा ने वहां निवासरत पूरे समाज को मारने की योजना बनाई, इस घटनाक्रम में एक मुस्लिम व्यक्ति ने सभी रेबारियों को रातों–रात गांव से दूर, सुरक्षित निकल जाने में सहायता की, इस बात का पता लगने पर उस व्यक्ति को राजा ने मरवा दिया। रेबारी महिलाएं सम्मानपूर्वक उस पुरूष की मृत्यु का मातम मनाने हेतु आज भी काले वस्त्र पहनती है। ऐसा माना जाता है की महिलाओं के सम्मान की रक्षा के लिए उस व्यक्ति के सहयोग के कारणरेबारी समाज, दोनों धर्मों में आपसी सोहार्द रखता है।एक सुस्पष्ट विभिन्नता सभी जातियों से अलग रेबारी अपनी वेशभूषा द्वारा प्रदर्शित करते है, वह है रंगों का असाधारण वैषम्य– महिलाओं की काली वेशभूषा व पुरूषों के सफ़ेद लिबास।

बारीक रंग–बिरंगे मोती व बटन से सुसज्जित बालक–बालिकाओं के सिर पर पहने जाने वाले परिधान को ‘टोपला’ कहते है। मोती से बने होने के कारण इसे ‘मोतीवारो टोपला’ कहा जाता हैं। किसी भी वस्तु को ढकने या बिछावन के रूप में प्रयोग मे लाये जाने वाले वस्त्र को ‘धारणीयों’ कहा जाता है। कुशल कारीगरी द्वारा इस पर सुंदर रंग–संयोजन से कशीदा भी बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त गृह–सज्जा के लिए चौकोर कशीदाकारी किये हुए वस्त्र के टुकडे जिन्हें’चाकलों’ कहा जाता है,प्रयोग में लाये जाते है वइन पर कांच के साथ सुंदर रंगसंयोजन से मनोरम नमूने बनाये जाते है व इन्हें दीवारों पर दो–दो के जोड़ो में लगाया जाता है।

महिला आभूषण :–

महिलाओं द्वारा अत्यंत हल्की नीली आभा की या सफेद रंग की प्लास्टिक की चपटी चूड़ियाँ पूरे हाथ में पहनी जाती है, यह ऊपरी बाजू को भी ढकने का कार्य करती है। ‘नागली साकें’ एक प्रकार के कर्णफुल होते

है जो कान के प्रमुख आभूषण है और रेबारी महिला की पहचान माने जाते हैं, यह देखने पर एक स्प्रिंग के समान दिखाई देते है, इन्हें पहनने के लिए कान के छिद्र लम्बे होंने आवश्यक है, अतः बचपन से ही कन्याओं के कान छिद्रोंमें लकडी के गुट्टे डाल कर बड़े किये जाते है।

आभुषणों के अतिरिक्त रेबारी महिलाएं 'गोदना' गुदवाकर भी अपने शरीर की सजावट करती है। गोदना'' या 'टेटू' द्वारा आलौकिक चिन्हों को अधिकांशतः गले, बांह व सीने पर बनाने के साथ साथ पैर एवं चेहरे पर भी बनाया जाता है। टेटू बनाने की प्रक्रिया को स्थानीय रूप से 'तर्रज्वा' कहा जाता है, ऐसा माना जाता है की यह सुंदरता बढ़ाने व विशिष्ट पहचान बनाने का एक माध्यम होने के साथ बुरी नजर से सुरक्षा प्रदान भी करता है। रेबारी समाज में विभिन्न जाति के आधार पर विभिन्न चिन्ह बनाये जाते है। गोदना से सज्जित रेबारी महिला की बाजु कलाकार द्वारा रेशम पर बाटिक के नमूने बनाने जैसी प्रेरणा देती है।[10] केवल विवाहित महिलाएं ही अपने पैर पर गोदना गुदवा सकती है। गोदना गुदवाने के लिए सुई या कांटे को इच्छित रंग में डुबोया जाता है और उससे चमड़ी पर गोदा जाता है। इसके लिए विशेष प्रकार की पत्तियों का रस या दीपक की कालिख का प्रयोग किया जाता है। जब गोदना बन जाता है तो उस पर हल्दी का पाउडर एक ऐन्टिसेप्टिक के रूप में लगाया जाता है और लगभग एक हफ्ते तक उस पर पानी का सम्पर्क नहीं किया जाता। महिलाओ के केश विन्यास में मुख्य रूप से गुंथी छोटी होती है जिसे अंत में रंगीन फुंदो से सजाया जाता है।

बाल्यावस्था से ही आभुषण जैसे कर्णफूल, गले का हार, पायल, कड़े, इत्यादि बालिकाओं को पहनाये जाते है, ऐसा माना जाता है कि इन आभूषणों द्वारा बुरी आत्माओं से बचाव होता है। सोने या चांदी का प्रयोग आभूषण बनाने हेतु किया जाता है तथा कई बार रंगीन कांच का भी प्रयोग किया जाता है। कई आभुषण परंपरागत होते है, जिन्हें अगली पीढ़ी को विरासत में दिया जाता है।

रेबारी कशीदाकारी :-

राजस्थान की अपेक्षा गुजरात के रेबारी समाज की कशीदाकारी अधिक प्रचलित है, यह एक विशिष्ट कला है जिसके माध्यम से रेबारी महिलायें स्वयं को अभिव्यक्त करती है। यह कभी भी एक जैसी नहीं होती, इसमें टांके बदलते हैं, उनकी संख्या बढ़ती और घटती है तथा रंग गाढ़े और चमकीले होते रहते हैं।[11] यह कढ़ाई सिंधी-राजस्थानी समुदाय से प्रेरित है, इसमें अलग-अलग आकार के कांच लगाये जाते है, चौन टांके के माध्यम से विभिन्न प्रकार के नमूने एवं आकृतियां बनाई जाती है व काज तथा हेरिंग बोन टांके से नमूनों को भरा जाता है। बखिए का प्रयोग किनारी बनाने हेतु या सिलाई को सज्जित करने हेतु किया जाता है। कशीदाकारी में चटक रंग के धागों का प्रयोग रेगिस्थान के नीरस परिदृश्य को जीवंत बनाने व वहां की दुश्वारियों को विस्मृत करने में सहायक होते है।[12] परिधान जैसे 'कांचली' या'कापडू' जोकि एक प्रकार का बिना पार्श्व भाग का ब्लाउज होता है,'पहरानू' जो निचले भाग में लपेट कर पहनने का अधोवस्त्र होता है, 'घाघरा' सिला हुआ अधोवस्त्र होता है और ऊनी ओढना 'लुड़ी' साथ ही ''गलपट्टा आदि सभी रेबारी कशीदाकारी से अलंकृत होते है। इनके अतिरिक्त कढाई के कईं घरेलु उत्पाद भी बनाये जाते है जैसे, तोरण, शॉल, बेग, बेड- कवर, ऊंट के सजावटी वस्त्र और दहेज में दिये जाने वाले उत्पाद आदि। प्रचलित नमूने जैसे मोर, सूडो (तोता), अम्बो (आम का पेड़), संडियो (ऊंट), बिच्छी (बिच्छु), लड्डू, कांटा, मंदिर, पनिहारिन, हाथी है।[7] कशीदे के नमूने पौराणिक कथाओं व रेगिस्तान के परिदृश्य से लिये जाते है। कांच के टूकड़े भी बड़े आकार व विभिन्न आकृतियों के जैसे चौकोर, आयातकार,

गोल, तिकोने व टीके की आकृति के काम में लिए जाते है, यह मान्यता है की इसके प्रयोग से बुरी आत्मायें दूर रहती है।[12]

रेबारी कशीदाकारी में तीन अलग–अलग प्रकार का हाथ का बारीक काम किया जाता है– पहला 'कटाव' जिसे 'ऐप्लीक वर्क' कहते है, दूसरा 'मोती' जिसे 'बीड–वर्क' कहा जाता है और तीसरा 'अभला' जिसे 'मिरर–वर्क' कहा जाता है। रेबारी समुदाय की परंपरा के अनुसार वर पक्ष द्वारा वधु पक्ष को विवाह के समय धनराशि प्रदान की जाती है, और विवाह पश्चात वधु दहेज में कशीदाकारी से निर्मित वस्तुएं एवं परिधान अपने साथ लाती है जिसे 'आनू' कहते है, समय के साथ इस परंपरा में यह बात भी जुड़ गई की वर पक्ष की और से मांगी गई कशीदाकारी की इच्छित सामग्री न बना पाने तक वधु अपने ससुराल में नहीं आ सकती, चूंकि हाथ का यह काम बेहद गहन व समय साध्य है, साथ ही घुमंतु जीवन जीने के कारण इस हेतु समय भी कम उपलब्ध होता है। अतः समय पर कशीदाकारी की सामग्रियां पूर्ण कर पाना कन्या के लिए बेहद कठिन हो जाता है, जिस कारण वह लम्बे समय तक गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं कर पाती, इस परंपरा ने देहबर रेबारी समाज (गुजरात) को अधिक प्रभावित करा है।[13]

समाज के पंचों ने यह निर्णय लिया की वह इस पंरपरा को प्रतिबंधित करेंगे। अतः 1995 अप्रेल से यह तय किया गया की इस प्रकार की व्यवस्था अब परिवार नहीं रखेंगे तथा इसका विरोध करने पर परिवार को अर्थदंड देना होगा। रेबारी समाज के सदस्य मानते है की इस निर्णय के लाभ और नुकसान दोनो हुए हैं, जहाँ उपयुक्त आयु में कन्या के ससुराल जाने से सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति सही हुई है, वहीं दूसरी और कलात्मक कशीदाकारी को करने में नयी पीढ़ी में ढील आई है। कला रक्षा ट्रस्ट तथा सृजन जैसे कई एन.जी. ओ ने इस कला को संरक्षित करने का अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रचारित करने के उद्देश्य से इन्द्रा गांधी नेशनल सेंटर फार आर्टस द्वारा रेबारी कढाई के उत्पादों की प्रर्दशनी भी आयोजित की गयी है।[14]

कशीदाकार महिलायें :–

संजु बेन पचान एक रेबारी महिला है जिन्होनें नई पीढी को कशीदाकारी की कला कई कार्यशालाओं के माध्यम से अपने गांव व डिजाईन स्कूल में सिखायी है। 2020 में जोर्ज वाशिंगटन म्यूजियम के लिए एक सुंदर कशीदाकारी का वस्त्र भी इनके द्वारा तैयार किया था।

मगी बेन रेबारी नवाचार, रंग–संयोजन, विशिष्ठता एवं गुणवत्ता के लिए कशीदाकारी क्षेत्र में पहचान रखती है। गुजराती फिल्म 'हेलारो' जिसे कई राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले में इन्होनें परिधान डिजाइन किये और इस फिल्म के माध्यम से इनके कार्य को पूरे विश्वभर में पहचान मिली।

पाबी बेन ने 'हरी ज़री' (एक मशीनी एप्लीकेशन) में महारत हासिल की तथाकिनारी व रिबन का प्रयोग कर अपनी एक विशिष्ट शैली बनाई, जो उनके नाम–'पाबी ज़री' से जानी गयी। सर्वप्रथम इस शैली के शोपिंग बैग बनाये गए जो तुरंत प्रचलित हो गए, आज इनकी बनायी अन्य वस्तुएं ताजमहल पैलेस होटल, ओबेरॉय होटल, जैसे आलिशान स्थानों के आउटलेट पर मिलने के अतिरिक्त विदेशों में भी बिक्री के लिए जाती है।

सन्दर्भ :–

1. श्रीवास्तव, वी.के., (2016), स्पीकिंग ऑफ़ कास्ट : मेरिट ऑफ़ द प्रिन्सिपल ऑफ़ सेगमेंटेशन, सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, सितम्बर–दिसंबर, वॉल्यूम– 65, इशू–3, पृष्ठ सं. 317–338.

2. श्रीवास्तव,वी. (1999), सम कैरेक्टरस्टिक ऑफ़ अ हेर्डिंग कास्ट ऑफ़ राजस्थान, इन ह्यूमन इकोलॉजी, स्पेशल इशू–7, पृष्ठ सं. 303–319.
3. व्यास, एन., महावर, एम. एम., एवं जारोली, डी. पी., (2009), ट्रेडिशनल मेडिसिन डीराइवड फ्रॉम डोमेस्टिक एनिमल्स यूस्ड बाय रेबारी कम्युनिटी ऑफ़ राजस्थान, इंडिया, आवर नेचर, 7 : 129–138129.
4. https://parallelozero.com/wp-content/uploads/2020/06/India-Gujarat-Elena-Dak-I-walk-with-the-nomads.pdf
5. एलुइनड, ई., (2020), रोल ऑफ़ वेल–क्लॉथ अमंग द रेबारिज ऑफ़ कच्छ, गुजरात, ब्रांडिंग ट्रेडिशन, वेस्टर्न इंडिया, एडिंबर्ग, यूनिवर्सिटी प्रेस जर्नल, वॉल्यूम– 43, इशू–1, पृष्ठ सं. 19–37.
6. फिशर, एन., (1993), मड, मिरर एंड थ्रेड, मेपिन पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, अहमदाबाद।
7. झाला, जे. आर., (2018), वागडीया रेबारी एम्ब्रायडरी – द ज्वेल इन क्राउन ऑफ़ कच्छ रीजन, जर्नल ऑफ़ हुमेनिटिस, सितम्बर, इशू–35
8. फिशर, एन., (1993), मड, मिरर एंड थ्रेड, मेपिन पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, अहमदाबाद।
9. फिशर, एन., (1993), मड, मिरर एंड थ्रेड, मेपिन पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, अहमदाबाद।
10. F : v फोटोग्राफ़रस ऑय (1992), रेबारी अपस्टोरल कम्युनिटी ऑफ़ कच्छ।
11. रबारी कढ़ाई में चित्रित संसार, www.jansatta.com जनवरी 5, 2020.
12. झाला, जे. आर.,(2018), द ट्रेजर ऑफ़ आर्ट : कच्छी रेबारी एम्ब्रायडरी, 3 तक इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन मल्टी डीसिप्लेनरी रिसर्च एंड प्रैक्टिस, वॉल्यूम– 4, इशू–1, पृष्ठ सं. 415–417.
13. हौले, जे. एम. (2012), टेक्सटाइल, क्लोथिंग एंड द ह्यूमन एलिमेंट, द रिसर्च जर्नल ओफ द कॉस्टयूम कल्चर, वॉल्यूम– 20, इशू–2, पृष्ठ सं. 286–293.
14. https://www.dsource.in/resource/rabari-embroidery-bhujodi/making-process.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 81-88
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Translation of Vijay Dan Detha's Rajasthani Stories : An Overview

Dr. Sudhir Kumar
Assistant Professor of English, Govt. College Narnaul, Distt. Mahendergarh, (123001) Haryana

Translation is a text that is considered to be different from original but it is also a fact that the source text and the translated text are the same in terms of the sense they convey. It is usually said that translation gives new clothes to a piece of writing by putting it in a different form. Translation of literary items is a particular branch of literature dealing not only in finding words in one language as substitutes for those of another, dealing not just in finding adequate literary expressions or linguistic constructions corresponding to the language of the original work in the language being translated into but involving much more-the transfer of aesthetic, cultural, psychological and historical concepts from one language into another. Undoubtedly, this is a point of translating one culture, one type of life into another. The system of any language is inherently dialogic, Robert Pinsky observes, "Translation is the only art that is like writing.... It is also the highest, most intense form of reading, yet translation is almost by definition the most imperfect of arts and more than any other form of writing risks self-delusion." Infact, translation starts up a text to other realms of understanding by re-reading and re-creating by its radical suggestion that all reading is deconstructive. It is concluded that the more a text is translated or read or interpreted the greater is its unreadability. Finally, the reader/translator confronts the moment of aporia when all traces of the text's materiality get dissolved. The practical job of the translator starts with this unreadability. One reads between the lines to inhabit the aporia, or the inbetweenness to discover a new meaning. One can very well say that India's is a translating consciousness and the very circumstances of their real existence. It can be stated without any hesitation that India would not have been a nation without translation and we keep translating almost unconsciously from our mother tongues when we converse with people who use a language different from our language.

India is a multicultural and multilingual country. The translation of regional literature and culture should be treated as a matter of primary national importance in that it would contribute to spreading the knowledge about lesser known social and linguistic groups such as Marwari. Furthermore, such a project would not only make other voices heard but also broaden the cultural base of English, the other cultures and peoples of Rajasthan in a multilingual discourse. This translation initiative

would encompass not only the translation of literature, but can also introduce and incorporate indigenous Indian languages into the education system. Translation of any literature addresses issues in a different way each time. People translate depending upon our preference of reading, the target group and the possibility and prospects of dialogue between languages.This research paper is an attempt to focus on the theory of translation and Christi Merrill's translation of Chouboli and it discusses Christi's own experiences as felt by her also.

Piotr Kuhiwczak and Karin Littau observe that translation maintains a dialogue between the inside and the outside, not only of disciplines, but of cultures, languages and histories. We practice translation each time as we theorize a connection. Unlike in literary studies, where criticism and creative writing have, until very recently, only rarely taught side by side in the same department, in translation studies it has been much more difficult to separate translation theory from translation practice. There is no point pretending that there has never been a conflict between translation and translating, but the gap between the two has never been vast because one simply cannot ignore translation practice while working in translation studies. There are moments when practicing translators wonder why there is not a better interface between theory and practice. There is a dire need to initiate a more fruitful dialogue between the theorists and the practitioners. According to Wagner, we treat the two activities – academic translation studies and professional translation practice. He feels it is important that something is done to break up the rigid institutional boundaries, so that translators and translation studies scholars can work more closely together. Translations, transcreations, and adaptations are all forms of cultural transactions between one Indian language and another which characterize literary histories in India. They occur in almost all Indian languages - oral and written, recognized and marginalized.

Each Indian language has its own tradition of translation which may proceed from or reflect a range of situations such as the philosophical understanding of language operating in each linguistic community and the interaction of each linguistic community. The history of the nature of interlingual translation practices within India constitutes a fertile field that has hitherto not figured in the English – dominated discourse of translation. The history of translation and its practice in India from Vedic times in rewritings and localizations of Kavyas, Puranas, Itihasa-puranas to the contemporary postcolonial era in Indian English literature, are more in tune with translation suggesting a temporal movement. Sanskrit based word for translation in Hindi treats the text not as a single piece to be carried across but as one of the many ongoing performances as a 'telling in turn'. Ramcharit Manas has been revised several times and all versions make it more relevant to new age and idioms. For the past century and more, literary production in Indian languages has been narrated and evaluated by English standards that make more sense in the European rather than the South Asian context. Meenakshi Mukherjee says that in a country as multilingual as India, translation in the English sense is so integral to the many interconnected traditions that comprise the broad category of Indian literature that it

cannot be said to be a separate activity.

Translation has always been known as 'new writing' in contrast to the western outlook towards it as 'derivative' or 'subsidiary'. It makes the literature of a culture and region known to other regions and establishes a certain credibility and relationship of mutual regard. In the context, there is also the danger of so-called regional literature subsumed into a more powerful national culture. Hence, the translator's planning would be to bring out the sense of continuities within the nation as well as the distinct sense of location of the text that has been translated. The readers will have to be convinced of both the fellow Indianness of the translated text as well as of the uniqueness of its location. A Rajasthani text is to be read differently from a Punjabi text and calls for different kinds of theory and practice and different kinds of English also. The translation needs to alter the readers to specific regional location, the class, caste, gender and specific locales in their distinct linguistic cultures. So the task of the translator is to create an Indian domesticity as well as maintain relational distance between the texts from different languages. The question still remains whether the translator is getting the accent right and does not end up addressing nobody at all. Thus the study of a text written in an Indian language is far from getting the institutional sanction it deserves. Most English literature departments follow conservative British European traditions and exclude from the sphere of literary study those very cultural products that are most relevant to our reality. The last years' tradition witnesses that translation activities are flourishing and literature departments showing an inclination along with the government bodies and publishers becoming more receptive to translations.

Indian literature is an important part of institutionalized literary study at the university level. As such some of the primary requirements while translating from Rajasthani to Hindi or English is to retain differences to demonstrate the heterogeneous nature of Indian and Indian languages and literatures, to retain the local terms to add local colour even if the word has the same source in all the languages, demonstrate ways in which the languages and culture have differentiated themselves from each other. retain proper nouns. Regional literatures share a two-fold relationship with the source language of translation. Translated literature is already a part of the source, culture and language and after translation it also members itself in the target group. The flourishing of Translation projects immediately after Independence since the Nehruvian era had been aligned with projections of nationalist ideology to prevent an imaginative 'holistic' picture. The task of translation of critical and cultural theory, has not so far pursued at a greater scale in various Indian languages, becomes very important in this respect to carry the discourse forward outside the Eurocentric centre.

Piyush Raval says, "Defining translation as teaching which can stimulate reading, (in the academic sense that Anthony Appiah calls 'thick translation'), the purpose behind translating from the regional language to English would be largely academic in nature, since at the altar of academics most translations are produced and consumed in quantity, but it also seeks to transcend the institutionalization of practice and products of translation through the use of the vernacular for wider

dissemination into social, cultural, political and other domains. The history of translation in India has always been open to thoughts concealed in 'alien' texts to assimilate them within itself and enrich it and give back her thoughts to the world; therefore the present call to translate indigenous literature expects to receive a more cerebral response." Theoretical frameworks cannot be applied to a literary body without substantial examples and due to lack of translations from Rajasthani to English and it has always remained a neglected area.

The political boundaries of linguistic states in India do not coincide with their cultural boundaries due to the complex history of social and cultural formations in India. This has meant that the translational discourses of the Indian subcontinent and in this case Rajasthan have been rendered unintelligible in our institutional climate of debates and dialogues. Indian art of story-telling is not easy to define or theorize, because of the mind-baffling range of stories that the Indian mind has lived through centuries. This does not give way to any monologic or essential zed frame, which we might describe as patently 'Indian'. In fact the very term 'Indian' is problematic as India is not a culturally homogenous nation space. The problem of defining Indian short stories becomes all the more confounding as folk tales associated with different geo-cultural regions of India cannot be overlooked. The folktales of a region have a number of contrasting tales that are in dialogue with each other, yet each has its own chronotype in the Bakhtinian sense, says Trikha.It was during the late 1940s that Rajasthani short story writing began to experience some prominence. Vijay Dan Detha, more popularly known as 'Bijji' is a pioneer and has provided a new lease of life to the form and content of the short story. He has added new dimensions by adapting tales from the rich folklore to give them contemporary cultural insinuations. Dialects of Rajasthani are widely spoken but its grammar and lexicon have never been institutionally standardized and it is not among the recognized official languages of the Indian constitution.

Many people speak Rajasthani and Rajasthani literature is being written in local dialects such as Marwari, Dhudhani, Malawi, Mewati, Bagri, Uajdi etc. Marwari has a strong influence of Sanskrit, Prakrit, Arabic and Persian and is mostly the dialect of Jodhpur, Bikaner and Jaisalmer. George Abraham Grierson was the first scholar who gave the nomenclature "Rajasthani" to the language, which was earlier known through its various dialects. Today, however, Sahitya Akademy, National Academy of Letters and University Grants Commission recognize it as a distinct language. Since 1947, several movements have been going on in Rajasthan for its recognition, but unfortunately it is still considered a "dialect" of Hindi. The small, literate class which speaks Rajasthani is only taught Hindi in school, while a major portion of Rajasthan's population remains illiterate to this date. 'And literary Rajasthani magazines and publishers are few. New ideas as expressed in Hindi prose and poetry have had only a moderate influence on the literary tradition of Rajasthan. It remains overwhelmingly oral in character'. The interrelated development of written and oral narratives is worth considering when drawing a new literary map of the Subcontinent. This is an assertion that will hardly surprise anthropologists and

other students of oral traditions. But, keeping in mind text-based and equally text-based studies of the written traditions of South Asia, it is important to emphasize how the content and the form of the texts we study are influenced by the interplay between written and oral traditions.

Detha, the renowned writer, prefers to call his mother tongue Rajasthani rather than Marwari because he wants his tales to be part of a broader pan- Rajasthani identity. His decision to write in the daily bol-chal (language of conversation) of Rajasthan rather than the national language Hindi right from the start was a daring move politically and aesthetically in contrast to Ngugi who renounced English after building an international reputation and switching over to Gikuyu. It is noticed rightly that during the 1950s and early 80s these dialects flourished in Rajasthani creative writing. It was felt that during the 1940s, Dingal and Pingal were the popular forms of creative expression. Pradeep Trikha, a renowned writer, observed that there are three classifications as proposed by C.P. Deval, a progenitive Rajasthani poet; (1) Works based on folk motifs, whose main exponents are Vijay Dan Detha and Satya Prakash Joshi. (2) Works based on classical Dingal vocabulary, metre and rhythm and the major exponent is Narayan Singh Bhati. (3) Works of recent writers, often experimenting with various forms and use of language. He says, "The literary tradition of Rajasthani short stories implies narrating which dramatizes a situation where a group of people called upon to exchange stories.

Detha, an iconoclast storyteller, infuses his orature with Rajasthan's rich storytelling traditions. He has a gift for picking the most provocative and compelling stories from the landscape of Rajasthan and recreating them in a literary form as engaging and daring as his oral sources. Detha read and was inspired by the great literature of 19th century Russia in 1950-52. By then he had already written 1300 poems and 300 stories, apart from criticism, in Hindi. Detha returned to Borunda and was inspired to "garland the age-old Rajasthani folklore with story writing skills". Writing was so easy for me, dancing for the peacock. It is only after people started liking my stories that I became conscious of my writing,' Detha says. His son Kailash Kabir translated two books – Duvidha and Uljhan – into Hindi which brought recognition for Detha. Detha, the Sahitya Akademi officially recognized Rajasthani language and Detha got the first award. He wrote more than eight hundred short stories in Rajasthani. He used the voices of wise shepherds, foolish kings, crafty ghosts, clever princesses, honest thieves, talking necklaces, and amorous snakes and he tries to manage to make their words come vibrantly alive. His stories grapple with contemporary concerns and age-old dilemmas and blur the lines between rural and urban, ancient and contemporary, to pose situations that find echoes across languages, cultures and ages.

Christi Merrill says that his stories may grow out of a three sentence remark he had heard, a folk remedy for chasing away a fever, as short and enigmatic as the children's English folk song 'London Bridge is Falling Down', or even an idiomatic expression. It becomes very difficult to match and change Detha's oral versions with zesty turns of phrase and lively atmosphere he creates while performing. He tries to combine modern literary technique with traditional storytelling conventions

to create written versions of stories he has heard from friends, family and neighbours, versions compelling and delightful. Christi Merrill who has translated two volumes of Chouboli, says', When I was introduced to Detha's work I volunteered to look for stories to translate into English that would offer young language learners something less alienating than the usual colonial era fare of daffodils and snow. She wanted to create an English language that grew from local knowledge systems. Christi observed that it necessary to challenge the English reader, in much the same way that Kailash Kabir had challenged his Hindi readers, by creating versions of quintessentially Rajasthani colloquial expressions close enough to the literal to indicate the particular context inspiring the readers while still conveying enough of the figurative meaning to communicate more than local colour.

A very significant problem for a story writer like Detha lies in his location and position. It cannot take us away from the main goal and with Detha's stories; the act of translation, says Christi, is done with the purpose to keep storytelling alive and to make the written text as yet one more performance of a story in a tradition necessarily various and multiple. The major problem for a translator of Detha's stories lies in having the ability to combine the rollicking irreverence of folktales with the polish of literary stories with simplicity and elegance that can make sense to young native Rajasthani speakers. The problem lies in capturing the dynamism of folk culture and to make the written version convey all the complexity and energy of oral versions. Performing the story along with a rhyming chougou, a nonsensical sing-song rhyme that pairs falling goats with stolen turbans, simply to put listeners in a storytelling mood, which also marks the transition from everyday speech to the language of performance, beseeching a local deity to bless their proceedings, narrating like an old fashioned storyteller, discourse that makes use of local idioms along with a combination of modern techniques of short story like details to create atmosphere commentary included in the form of stray comments to provide irony, balance between the urban and the rural, the contemporary and the traditional are among the numerous nuances to be taken care of. The major challenge of playing with Rajasthani formulations that somehow make Hindi readers feel close to Rajasthani while also hinting at the distance between the two. There lies the challenge of rendering local idioms and narrative conventions in a manner that retains its unpretentious vibrancy also.

Merrill's success as a translator lies in her skill of new innovative colloquial formulations that actually brings alive the performance. Detha's versions of the stories told by aunts, potters, peasants, servants, thieves, holy men slides into the written. It moves from oral to written and back to oral in the similar fashion of Vaat, a word from the Sanskrit word 'Vaarta' which means dialogue or talk, a category in Rajasthani which transcends the difference between fiction and non-fiction, gossip, moral inquiries, a mixture of story and a personal anecdote. A political activist Shankar Singh narrated the story and concluded, "The freedom to choose between the two penalties has him so muddled…. That's how democracy works in India. We are given two bad choices and then told that we have total freedom." The translator here is no less than an author who instills new life and meaning to the story.

Detha himself heard the story from a politician Khubha Ram who used it to remind people that they were the leaders now and as an elected leader he was merely their servant.

Therefore, it is observed that the story traveled from a politician to a writer, the political activist and back to the translator as writer, always in a peculiar way of carrying and creating newer versions. There is the need to rethink and reshape our reading of folk tales because reducing an ongoing creative process to the text of a single performance does not fully account for the story's multiple origins- oral, or otherwise. He claims that in oral tradition 'the words 'author' and 'original' have either no meaning at all or a meaning quite different from the one usually assigned to them'. Detha's particular writing gift lies in the ways in which he plays with and against the storytelling tradition. He has enough elements of it to create a fuller context for the rhetorical and political transgressions he makes so that the departures represent an analysis of the tradition from within. Such a technique is difficult to appreciate if we cannot tolerate multiplicity. The stories of Detha represent fruitful relationships with the various lok brought together in the stories-lok not only in the sense of people or folk but also in the sense of worlds. The question whether Detha's short stories should be read as folk tales or folktales be read as stories matters less as we try to find answers to the Hindi translation of 'lok katha' wherein the question of who, what and where still remains important. People. Thus folklore functions in part to create a sense of belonging and to know our identity. So we must try to know the identity of the teller of the tale, gradually insisting on holding an individual responsible for the collective.

Most of Detha's stories are evaluated and read in the context of other folk tales in the Rajasthani oral tradition and after it readers read them. These are the certain moments when Detha uses traditional storytelling conventions not only to analyze the events within the story but to analyse the traditions themselves. As an artist, he tries to cross the line between the storyteller and the writer. Stephen Greenblatt in "Towards a Poetics of Culture"says that contemporary theory must fix itself not outside the explanation but in hidden places of negotiation and exchange. Therefore, the potential of translation can be fully felt when we are able to approach literary text as agents as well as participants in a cultural conversation re-presenting the inconclusive parameter of understanding that would make significant strides towards a new domain of culture studies. Better human relations will result from readers with widely differing views sharing and comparing their responses through strategies of interpretation and 'reading'. The main reason for studying texts through appropriating many 'Othernesses' is to expand the mind by introducing it to the immense possibilities in human actions and thoughts, 'to see and feel what other people have experienced, to know what they have known in their own ways'. The process of translation exists everywhere.

It is an important activity of life itself. It extends and defers the implication of the original endlessly. Detha himself says, "The seed of a story was contained not in the words themselves but in something even more intangible, something we each had access to. ......Language is not made by

professors of linguistics but by the illiterate rustic folk. I learnt the art of language from them. I am still paying Guru Dakshina...”

REFERENCES :-

1. Bassnett, S. and Trivedi, H. (eds.). (1999), Post-colonial Translation: Theory and Practice. London: Routledge.
2. Bhabha, Homi, (1991). The Location of Culture, London. Routledge
3. Devy GN. (1993). In Another for Madras Macmillan. Devy, G.N.1992. Translation and Literary History- an Indian View Postcation Leanslation Theirs and Practice Eds. Susan Bassnet and Harish Trivedi. London: Routledge.
4. Greenblatt, Stephen (1989) Towards a Poetics of Culture The New Historicon, Ed. H. Aram Veeser London Routledge.
5. Merrill, A Christi and Kailash, Kabir. (Trans.).(2010). Chouboli and Other Stories Vijaydan Detha, New Delhi:Katha.
6. Merrill, A Christi. (2002). "Are we the "folk" in this lok?; Usefulness of the plural in translating a lok-katha. Translation Poetics and Practice. Ed. Anisur Rahman. Delhi: Creative Books.
7. Mohanty, Sachidanandan. (2001). Literature and Culture. New Delhi: Prestige. Mukherjee, Meenkshi. (2000). The Anxiety of Indianness’ The Perishable Empire: Essays on Indian Writing in English. New Delhi: Oxford University Press.
8. Mukherjee. Sujit, (2004). Translation as Recovery, Delhi: Pencraft International.
9. Pinsky, Robert (2006). On Translation. Literary Review: Fall:50,1:Research Library Core.
10. Piotr, Kuhiwezak and Karin, Littau. Eds. (2007) A Companion to Translation Studies. Clevedon Hall. New York, USA. Multilingual Matters Ltd.
11. Trikha, Pradeep, (2006). Alternative Traditions: Rajasthani Tales as Artefacts' Journal of the School of Language, Literature and Culture Studies, Spring, JNU Autumn. Delhi: Pencraft.
12. Venuti, Lawrence. (2004), ed. The Translation Studies Reader. USA Routledge. Wagner. E. (2006). A tale of two Industries. The Linguist 45 (2).

E-mail:sudhirkr422@gmail.com
Phone No. 8708495525

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 89-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शेखावाटी का सीकर ठिकाना प्राचीनता से नवीनता की ओर

डॉ. पूनम शर्मा
श्रीकृष्ण सत्संग बालिका महाविद्यालय, घंटाघर के पास, सीकर 332001

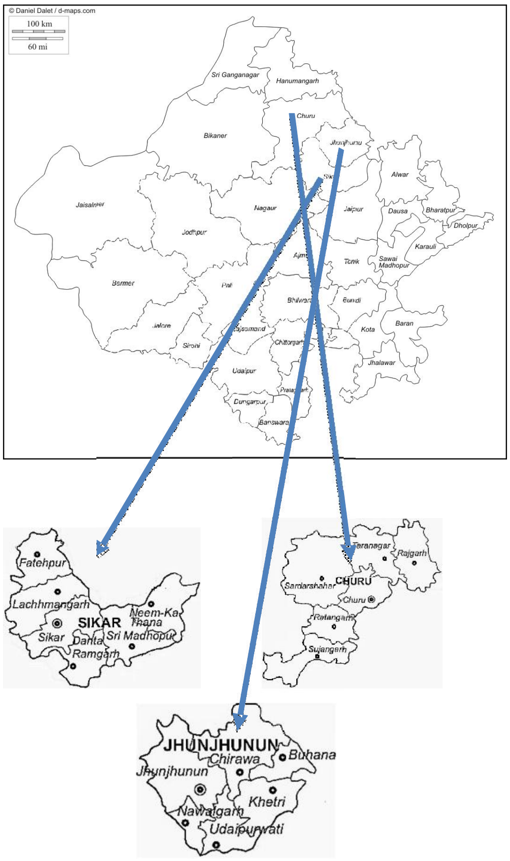

चित्र : राजस्थान, शेखावटी अंचल मानचित्र।

प्रस्तावना :– शेखावत क्षत्रियों के 36 राजवंशों के कच्छावाकुल की एक प्रमुख शाखा है। राजस्थान में आरंभ से ही आमेर कच्छावों का एक मात्र राज्य था। शेखावाटी प्रदेश का नामकरण रावशेखा जी कच्छावा के नाम पर प्रचलित हुआ, रावशेखा नरेश राजा उदय करण के तृतीय पुत्र रावबाला जी के पुत्र और राव मुखर्जी के पुत्र थे। रावशेखा महान प्रतापी प्रचंड पराक्रमी व अद्वितीय पूजक पुरुष हुए। राव शेखा जी और उनकी ख्याति प्राप्त संतति शेखावताओं का भू भाग ही शेखावाटी कहलाता है। शेखा जी की वीर भूमि शेखावाटी राजस्थान प्रदेश का प्रमुख क्षेत्र है इस भू भाग ने अनेकों संस्कृतियों के उत्थान व पतापतन देखे हैं, राजस्थान में शेखावाटी को छोड़कर एक भी सांस्कृतिक इकाई ऐसी नहीं है जिसकी समूची जीवन पद्धति रीति रिवाज रहन–सहन सदियों पुरानी परंपराओं को समाहित करती हुई विद्यमान है।

सीकर की स्थापना :– सीकर शेखावाटी संभाग का सबसे महत्वपूर्ण ठिकाना रहा है रावशेखा से नवीपुस्त में होने वाले राव दौलत सिंह ने सन 1687 ईसवी में सीकर को अपनी राजधानी बनाकर सीकर दुर्ग की आधारशिला स्थापित की और भगवान मोहन जी का मंदिर बनवाकर अपनी धर्मनिष्ठा प्रकट की। जिस स्थान पर आज सीकर बसा हुआ है वह स्थान शेखा जी के पूर्व भी अस्तित्व में था। यह स्थान उस समय वीरभान का बास के नाम से प्रसिद्ध था सीकर के कासली के चंदेलोकेश राज्य में था तब शेखाजी के वंश जो दलों द्वारा शासित प्रदेश शेखावाटी कहलाया इस प्रदेश का नाम शेखावाटी रावशेखा जी कच्छावा के नाम पर प्रचलित हुआ शेखावाटी का भू भाग अपने आप में विविधताओं को संजोए हुए हैं और इसी विभिन्नता के कारण ही यहां सीकर के ठिकानों की उपज खान–पान, रहन–सहन और रीति–रिवाजों का दृष्टिकोण भी भिन्नता पाई जाती है। शेखावत काल के समय धीरे–धीरे सामाजिक ढांचे में परिवर्तन आने लगा

उनके बाहरी जातियां यहां के सामाजिक परिवेश को अपनाकर विलीन होने लगी और इनका प्रभाव भी यहां के सामाजिक जीवन पर भी दिखाई देने लगा जिसके फलस्वरूप अनेकों पुरानी परंपरा एवं मान्यताएं नष्ट होने लगी तथा कुछ के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन आने लगा।

सीकर ठिकाने में आने वाली बाहरी जातियाँ :- इनमें हिंदू, जैन सिख मुस्लिम ईसाई सिख पठान व सैयद और कायम खानी जातियां प्रमुख थी।

प्राचीन समय से चली आ रही जाति–व्यवस्था प्रत्येक स्थान पर विद्यमान थी। हिन्दुओं में ब्राह्मण जाति की उच्चता एवं श्रेष्ठता अन्य जातियों की अपेक्षा उनकी बौद्धिक उत्कृष्टता के कारण सर्वोच्च थी। ब्राह्मण समाज यहाँ उच्च वर्ग में गिने जाते थे। हिन्दुओं का कोई कार्य इनके बिना नहीं हो सकता था।

वेद पढ़ना–पढ़ाना, यज्ञ करना–कराना, दान लेना और देना ब्राह्मणों का प्रमुख काम रहा है लेकिन वर्तमान समय में जाति में परिवर्तनों के फलस्वरूप व्यवसाय भी परम्परागत नहीं रहे। क्षत्रिय और वैश्य भी उच्च वर्ग में आते थे। सीकर ठिकाने में क्षत्रियों को राजपूत और भोमिया नाम से पुकारा जाता था जो कि क्षत्रिय के ही पर्याय शब्द है। शासन से जातीय आधारपर सम्बन्धित होने के कारण समस्त राजपूत चाहे वे राव शेखा के वंश के हो या तंवर राजपूत हो, अभिजात्य वर्ग में माने जाते रहे हैं। व्यापारिक जाति इस क्षेत्र में बनिये रहे हैं जिन्हें इस इलाके (क्षेत्र) में महाजन कहते है। समाज में अपने आपको उच्च–वर्ग में प्रति–स्थापित करने वाले ये तीनों जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सक्षम रहे है।

सीकर ठिकाने का समाज :- जाति–व्यवस्था हिन्दु समाज की एक अनुपम संस्था रही है। विचारकों एवं विद्वानों का कहना है कि इसका प्रारम्भिक स्वरूप वर्ण–व्यवस्था के रूप में था जोकि कर्म पर आधारित था लेकिन धीरे–धीरे इसका रूप जाति–व्यवस्था में परिवर्तित होने लगा। लेकिन पाश्चात्य–शिक्षा, औधोगीकरण, नगरीकरण, धार्मिक व राजनैतिक आंदोलन, यातायात के साधन तथा समाजवादी विचारधारा ने जाति–व्यवस्था के परम्परागत स्वरूप में तीव्र परिवर्तन किए है और इसी जाति–व्यवस्था की वर्तमान स्थिति को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है।

1. **ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट :-** जाति–व्यवस्था में ब्राह्मणों की स्थिति सदैव से ही उच्च रही थी और आज भी ब्राह्मण जाति की स्थिति अन्य जातियों से उच्च ही है परन्तु अब सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में उनका यह महत्व नहीं रहा जो पहले था। आज जन्म ही व्यक्ति की योग्यता का आधार नहीं है वरन् प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता व कार्य कुशलता के आधार पर नवीन सामाजिक स्थिति को प्राप्त कर सकता है।
2. **वैवाहिक प्रतिबंधों में परिवर्तन :-** जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति के सदस्य अपनी ही जाति के अन्तर्गत विवाह करते थे लेकिन आज औधोगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया में स्त्री–पुरुषों को एक साथ काम करने के अवसर प्रदान हुए हैं। जिससे आज अन्तर्विवाह के स्थान पर अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम–विवाह करने की प्रवृति बढ़ी है।
3. **खान-पान के प्रतिबंधों में शिथिलता :-** वर्तमान समय में खान–पान के प्रतिबंधों में भी शिथिलता आने लगी। आज ऐसे बंधन लगभग समाप्त हो गए हैं। आज यातायात के साधनों ने विभिन्न जाति, धर्म के व्यक्ति को एक साथ रहने के अवसर प्रदान किए हैं। ऐसी स्थिति में भोजन व पानी से सम्बन्धित नियंत्रणों का बना रहना किसी भी तरह से संभव नहीं है।

4. **पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता :–** वर्तमान समय की जाति–व्यवस्था में जाति के प्रत्येक सदस्य को किसी भी पेशे द्वारा जीविकोपार्जन करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

5. **जन्म के महत्व में कमी :–** आज शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण यह विश्वास जोर पकड़ता रहा है कि जन्म से ही कोई व्यक्ति दूसरे से ऊँचा या नीचा नहीं हो सकता। आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने वाले योग्य, कुशल एवं साहसी व्यक्ति को श्रेष्ठ माना जाता है चाहे उसकी जाति कोई भी हो, चाहे उसका जन्म किसी भी परिवार में क्यों न हुआ हो।

सारांशत :– स्वतंत्रता के पश्चात् जातीय भेदभाव में अंतर आने लगा। भारतीय संविधान ने सभी जातियों को समानता का अधिकार प्रदान किया। इससे सभी जाति के लोग मनचाहा व्यवसाय कर सकते हैं। सभी जाति के बच्चों को शिक्षा मिल सकती है तथा प्रत्येक जाति का व्यक्ति पंचायत, विधानसभा, लोकसभा, नगरपालिका आदि का चुनाव लड़ सकता है तथा नया कानून बनाकर छुआछूत को भी दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

प्रस्तावित शोध का उद्देश्य :– प्राचीन समय में सीकर ठिकाने की सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत सामान्य वर्ग सदियों से ही सर्वोपरि रहा है। शासक वर्ग अपने ही परिवार के सगे संबंधियों को इस पद पर लिया करते थे। सैनिकों व अन्य अधिकारियों को दी गई भूमि पर सामंतों का नियंत्रण रहता था और इन सामंतों के गांव जागीर के गांव कहलाते थे। इन सामंतों को राजा के द्वारा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हुआ करते थे लेकिन धीरे–धीरे सामाजिक व्यवस्था में तेजी से परिवर्तन आने लगा समाज का नेतृत्व करने वाले तथा राज्य की सुरक्षा और विस्तार करने वाले राजपूत सामंत शिक्षित परिवारों की तुलना में बिछड़ते चले गए इनकी आय के साधन भी सीमित होते चले गए। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय बाद ही राजस्थान सरकार में सीकर का विलय हो गया तथा राजस्थान राज्य सरकार की ओर से भागीदारी उन्मूलन कानून लागू करने पर जागीरदारी प्रथा का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। यदि हम बात करें यहां की बसावट की तो यह ठिकाना कस्बे, गांव और ढाणियों में विभाजित था राजपूत काल में बसे शेखावाटी के 12 शहर प्रसिद्ध थे इन 12 शहरों में सीकर, फतेहपुर, रामगढ़, नवलगढ़, झुंझुनू, लक्ष्मणगढ़, उदयपुर, खेतड़ी, बिसाऊ, चिड़ावा, मंडावा और सूरतगढ़ थे लेकिन वर्तमान समय में यहां शहरों की संख्या बढ़ गई यहां के पुरुषों का मुख्य पहनावा धोती–कुर्ता और सिर पर साफा धारण करना था और स्त्रियों का मुख्य पहनावा घाघरा–कांचली व ओढ़ना था।

चित्र : शेखावटी प्राचीन पहनावा

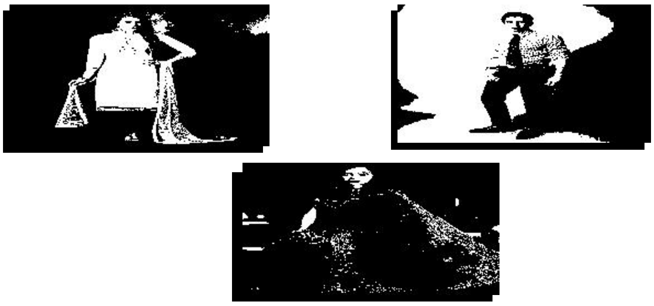

चित्र : शेखावटी वर्तमान पहनावा

प्रस्तावित शोध का निष्कर्ष :– वर्तमान समय के पहनावे व प्राचीन काल के पहनावे में काफी अंतर आया है वर्तमान समय में यहां पर पुरुष पेंट शर्ट व पैरों में जूते पहनते हैं तथा स्त्रियों में भी साड़ी, सलवार, कुर्ता व जींस पहना जाता है।

प्राचीन समाज में बालविवाह, बहुविवाह, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, दास प्रथा, सती प्रथा, दहेज प्रथा, तलाक, मृत्यु भोज, जौहर प्रथा, डाकन प्रथा जैसी कुप्रथा व्याप्त थी लेकिन वर्तमान समय में धीरे–धीरे इनका पुरजोर विरोध हुआ साथ ही साथ कानून बनाए गए और पूर्ण रूप से इन सभी का बहिष्कार किया गया जिसके परिणाम स्वरुप यह सभी को प्रथाएं समाज में जड़ से समाप्त हो चुकी है। समाज में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है हर क्षेत्र में वह पुरुषों की अपेक्षा अव्वल रही है और शैक्षिक जगत में भी शेखावाटी का सीकर ठिकाना अपना परचम लहरा रहा है।

सारांश :– आज सीकर 335 वर्ष का हो गया है इस लंबे सफर के दौरान तरक्की की कई सीढ़ियां चढ़ चुका है विशेषकर शिक्षा और मेडिकल में खूब विकसित हुआ।

चित्र : सीकर शिक्षा नगरी

विकास से शहर का दायरा बढ़ा और शिक्षा ने लोगों की सोच बदली शिक्षा बनी बुनियादी और शहर चढ़ता गया सफलता की सीढ़ियां यहां 407 स्कूल, कॉलेज, अनेकों कोचिंग संस्थान शहर में हर साल डेढ़ लाख स्टूडेंट पढ़ने के लिए बाहर से आते है। 8 किलोमीटर से बढ़कर 45 किलोमीटर हुआ दायरा साथ ही साथ शेखावाटी का यह छोटा सा ठिकाना अब प्रदेश के 7 शहरों में 7 बदलाव की कहानी शिक्षा में दम दिखाने के साथ शुरू हुई अब यह शहर फोरलेन से जुड़ गया है साथ ही साथ ब्रॉडगेज के जरिए दिल्ली, मुंबई से भी जुड़ा हुआ है जिससे लोगों की जीवन शैली में बदलाव आया है।

चित्र : सीकर जयपुर फोरलेन हाइवे

चित्र : सीकर रेल्वे स्टेशन

साथ ही साथ स्वयं का शेखावाटी विश्वविद्यालय बनने से छात्र–छात्राओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जयपुर जोधपुर के चक्कर नहीं काटने पड़ रहे। "शिक्षा आपके द्वार" वाली कहावत चरितार्थ हो चुकी है।

चित्र : शेखावटी यूनिवर्सिटी, सीकर

हर्ष से देवगढ़ रेवासा जीण माता और रघुनाथ गढ़ से शाकंभरी तक रोप वे बनने की पूर्ण संभावना है। इस प्रकार शेखावाटी का यह सीकर ठिकाना अपनी प्राचीनता की कहानी कहता हुआ नवीन आयामों को वर्तमान में छू रहा है। यह ऐतिहासिक शहरों में से एक है जो भारत में राजस्थान राज्य के शेखावाटी क्षेत्र में स्थित है और राजस्थान की शानदार कला संस्कृति और पधारो म्हारे देश की परंपरा को साकार कर रहा है।

चित्र : हर्ष पहाड़ी एवं मंदिर, सीकर

चित्र : सीकर स्थित देवगढ़

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शेखावाटी का भूगोल – नारायण सिंह।
2. मरुभारती – पं. झाबर मल शर्मा।
3. रावशेखा – सूर्जन सिंह शेखावत
4. सीकर का इतिहास– पं. झाबर मल शर्मा।
5. शेखावाटी का इतिहास – रतनलाल मिश्र।
6. शेखावाटी के ठिकानों का इतिहास एवं योगदान–हरफुल सिंह आर्य।
7. राजस्थान का सामाजिक जीवन–गहलोत जगदीश सिंह।
8. राजस्थान की जातियों का सामाजिक व आर्थिक जीवन गहलोत सुखवीर सिंह।

मोबाइल नं. : 9610891566, ईमेल पता : poonamvasu.skr@gmail.com

सत्यनारायण शर्मा, सैनी मंदिर के पास, शेखपुरा मोहल्ला, सीकर, जिला सीकर, राजस्थान, पिन–332001

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 94-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत का दृश्यमान संगीत

रश्मि आर्य
असि. प्रोफेसर, डॉ0 मुक्ति भटनागर सुभारती स्कूल ऑफ फाईन आर्टस एण्ड फैशन डिजाईन, देहरादून, उत्तराखण्ड। पिन कोड़ 248001

कला प्राचीनकाल से ही अनेक स्वरूपों में हमारे समक्ष विद्यमान रही है। प्राचीनकाल से ही मानव अपने विचारों को प्रकट करने के लिए कला को विभिन्न माध्यमों द्वारा अभिव्यक्त करता आ रहा है। इन्हीं विभिन्न माध्यमों ने भिन्न–भिन्न समय पर पृथक–पृथक क्षेत्रों में समाविष्ट होकर भारतीय कलात्मक धरोहर का सृजन किया है।

भारतीय कला में क्षेत्रीय मिट्‌टी की अनहद धुन की भाँति सुगन्ध विद्यमान है। जो ऐतिहासिक समय से हमारे समक्ष विचरण कर रही है। भारतीय धरोहर में राजस्थानी मिट्‌टी का एक अनूठा ऐतिहासिक चित्र है जिसमें नाना प्रकार के कलात्मक रंगो का समावेश है। राजस्थानी मरूथल की सुगन्ध में जिस प्रकार संगीत समाया हुआ है उसी प्रकार यहाँ की चित्रकला का ऐतिहासिक काल वृत्त भी अनेकों वर्षों से इस खिल्य धरा से रस टपका रहा है। चित्रों में संगीत का समन्वय या संगीत में दृश्यमान होते चित्र परस्पर विलेयशीलता को दर्शाते हैं। राजस्थानी धरा की चुनरी अनेकानेक वर्णों[1] द्वारा सुसज्जित है। इसी धरा की कोख में ऐसे कलाकार रूपी बीज का स्फुटन हुआ जिन्होंने राजस्थानी माटी के कण–कण से रस की बूँद–बूँद को दृश्यात्मक रूप से साकार किया। अन्य शब्दों में इस खिल्यधरा में अपने आँचल से एक ऐसा बीज संजोया जिसने स्फुटित होकर राजस्थान के मस्तक को 'तिलक' किया।

26 सितम्बर 1949 को सैंकड़ों मिट्‌टी के टीलों से घिरे मध्य युगीन शहर 'बीकानेर' में तिलक का जन्म हुआ। राजसी घरानों के कलाकारों की आगामी पीढ़ी के रूप में तिलक ने गौरवशाली संस्कृति का विस्तार किया। उनकी संस्कृति ग्राहयता बीकानेर की मध्ययुगीन भव्यता नगर की जीवन शैली से परिलक्षित हो उठती है। तिलक बीकानेर के शासकों द्वारा संरक्षित भाही दरबारी चित्रकार की दूसरी पीढ़ी से सम्बन्धित हैं। नगर में प्रतिष्ठित मंदिरों की भव्यता व मूर्तियों के मौन सौन्दर्य में तिलक के आन्तरिक पटल पर ऐसी छाप बनाई कि यह तिलक से 'तिलक गीताई' हो गये। गीता के सौन्दर्य का वर्णन उनके चरित्र का द्योतक बना। गृहशिक्षा स्वयं की जननी श्रीमती 'मनफूल देवी' व कला दक्षता स्वयं के पिता श्री राम गोपाल अग्रवाल के सानिध्य में सफल हुई। तिलक के थिरकते चित्रों में संगीतात्मक लय उनके दादाजी श्री गुलाबचन्द की गायन कला व कत्थक प्रतिभा को श्रद्धांजलि स्वरूप है। तिलक गीताई को कला पैतृक सम्पति के रूप में प्राप्त आशीर्वाद है। तिलक गीताई ने अभिमन्यु की भाँति गर्भ में ही मीननेत्र में तीर सादना सीख लिया था। जिसका परिचय उन्होंने बाल्यवस्था से ही देना प्रारम्भ कर दिया था। तिलक गीताई एक बहुमुखी प्रतिभाशाली कलाकार हैं। उनकी कलात्मक विशिष्टता

में चित्रकला व मूर्तिकला का समावेश है। तिलक गीताई के चित्रों का सौन्दर्य उनकी तुलिका द्वारा खींची गई सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म रेखायें है। सर्वाधिक छोटें चित्रों का निर्माण तिलक गीताई में भिन्न–भिन्न शैलियों में किया है उदाहरणार्थ जैन, अपभ्रंश, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी, कोटा, बूँदी, कांगड़ा, बसहोली इत्यादि। इन्होंने मूर्तिकला के क्षेत्र में विश्व की सूक्ष्म मूर्तियाँ बनाकर भारतीय गणराज्य की 'प्रधानमंत्री इन्दिरा प्रियदर्शनी गांधी' को भी आश्चर्यचकित किया है। इसके अतिरिक्त इनग्रेविंग, चित्रों व मूर्तियों का जीर्णोद्धार भी इनका कार्यक्षेत्र रहा है।

ऐसे महान कलाकार तिलक गीताई ने लघुचित्रों की रागमाला श्रृंखला का गहन अध्ययन कर लगभग 400 वर्षों के अंतराल के पश्चात् संशोधन कर भारतीय लघु चित्रों को पुनः प्राण प्रतिष्ठित किया है। तिलक गीताई जी ने पौराणिक रागमाला श्रृंखला के लघुचित्रों में त्रुटियों का अवलोकन कर संशोधन क्रिया के आश्चर्यचकित परिणाम को ठाकुरजी के निमित्त कर व्यवहारिक सरलता का परिचय दिया है। किशनगढ़ शैली में रागमाला चित्रों को पुनः चित्रित किया है। इन्होंने राजस्थानी लघुचित्रकला का आजीवन स्पन्दन कर भारतीय कलात्मक धरोहर को गौरवान्वित किया है। परिणामस्वरूप 2017 में तिलक गीताई के व्यक्तित्व को 'पद्मश्री' सम्मान से सुसज्जित किया गया है। भारतीय राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित नेशनल अवार्ड 1982, सूरजकुण्ड कलामणि अवार्ड 1991, शिल्पगुरू अवार्ड 2007, इंदिरा गांधी प्रियदर्शनी अवार्ड 2008, राजस्थान गौरव अवार्ड 2009, क्रेडेन्ट रत्न 2022 इत्यादि सम्मान संक्षिप्त उदाहरण है। इनके चित्रों को जिनेवा के संग्रहालय द्वारा संग्रहित किया गया है।

विश्व स्तर पर जिनेवा व लंदन में कार्यशालाओं का संचालन किया गया है। साथ ही जर्मनी 1985 जिनेवा ज्यूरिख 1987, स्विट्जरलैण्ड, अर्ल्सकोर्ट लंदन 2001, सियोल–दक्षिणी कोरिया 2004 व मस्कट इत्यादि में आयोजित 'फेस्टिवल ऑफ इंडिया' में लघु चित्रों का प्रदर्शन किया है। लघु चित्रों में खनिज रंगों का उपयोग सोने व चाँदी की पत्तियों का उपयोग भली–भाँति किया गया है। अनगिनत छात्रों को लघुचित्रकला का तकीनीकी प्रशिक्षण दिया है तथा वृद्धावस्था में भी कला के क्षेत्र में सतर्क भूमिका प्रदान कर रहे हैं। वैश्विक महामारी के संवेगात्मक वातावरण में भी पद्मश्री तिलक गीताई ने लघुचित्रकला के माध्यम से बनी–ठनी को मास्क पहनाकर जन–जन को संदेश दिया। माहमारी के तीन महा के संवेदनशील समकाल को मुखाकृति, नेत्रों, हाव–भाव इत्यादि द्वारा भावनात्मक रूप से चित्रित किया है। तत्पश्चात् महामारी से संबंधित टीका (वैक्सीन) आने पर 'राम भक्त हनुमान' के संजीवनी बूटी कथा से प्रेरित होकर चित्र के माध्यम से जन–मानस तक संदेश पहुँचाया। वृद्धावस्था में भी पद्मश्री तिलक गीताई कला के प्रति सजग व निष्ठावान हैं। ऐसे महान कलाकार शत् वर्षों में जन्म लेते हैं। राजस्थान की मिट्टी को ऐसे अद्भुद रचियता के स्फुटन हेतु शत बार प्रणाम करती हूँ।

चित्रावली

बनी–ठनी मास्क पहने हुऐ

महामारी के तीनों माह की संवेदनशीलता

जीवाणु को सूर्य के समान निगलते राम भक्त हनुमान

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

नोट :– (1) यहाँ वर्णों का अर्थ दो प्रकार से लिया गया है।
प्रथम जातियाँ, द्वितीय –रंग।
पद्मश्री तिलक गीताई, ragmala the missing सपदा।

ई–मेल– rashmidesign17@gmail.com
मो0 न0– +919997194589

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 97-101

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णिम इतिहास

डॉ. राकेश कुमार किराड़ू
सिस्टर निवेदिता कन्या महाविद्यालय, बीकानेर।

मानव की वह रचना जो जीवन को आनन्द से पूरित कर दे कला कहलाती है, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में दृष्टिगत हैं। "यथा कला, यथा शफ मध शृण से नियामति।" इसी प्रकार कला शब्द का यथार्थ में प्रयोग करने वाले विद्वान भरतमुनि थे। इनके द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में कहा कि :–

"न तत्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सविधा न सा कला।" अर्थात् इस चराचर जगत में ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जिसमें कोई भी प्रकार की कला ना हो। कला शब्द की चर्चा करें तो इस शब्द की उत्पत्ति कल् धातु से मानी गयी है। जिसका अर्थ प्रेरणा देना कहा गया है। कई विद्वान इसकी उत्पत्ति कं धातु से मानते है और कहा गया है कि :–

कं (सुखम्) लाति इति कलम्,
कं आनन्दं लाति इति कला।

अंग्रेजी भाषा में इसे आर्ट और लैटिन में इसे आर्स या आर्टम कहा गया है। इन शब्दों के भी अर्थ संस्कृत भाशा के मूल धातु अर के ही है। जिसका अर्थ होता है रचना करना, बनाना या पैदा करना। इस प्रकार हम कहते है कि मानव की शारीरिक व मानसिक कौशल की विभिन्न माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति जो आनन्द से परिपूर्ण हो, कला के दायरे में आती है। भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति ही कला है। दूसरे अर्थों में शिल्प या कौशल की प्रक्रिया से परिपूर्ण आनन्ददायक रचना ही कला का वास्तविक स्वरूप है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में इसे शिल्प शब्द से भी सम्बोधित किया गया हैं, जिसको वर्तमान में पाश्चात्य विद्वानों ने ललित कला नाम से पुकारा है। ललित कला के पाँच विभेद विद्वानों द्वारा किए गए है, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला, संगीत कला और स्थापत्य कला पाँच भाग है। इनमें चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला दृश्यकलाओं के अन्तर्गत आती है। जबकि संगीत व काव्य कला दृश्य श्रव्य कलाओं के अन्तर्गत आती है, इन समस्त कलाओं का अपने–अपने दायरें में अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें मूर्तिकला भी विशिष्ट गुणों के साथ सदैव ही परिवर्तित व परिवर्द्धित हुई है।

वैसे तो मूर्तिकला को अनेक शब्दों से परिभाषित किया जा सकता है लेकिन फिर भी उनको शब्दों में गढ़ सके तो हम कह सकते है कि किसी भी अनगढ़ पत्थर, लकड़ी, धातु अथवा चट्टान को विविध उपकरणों के द्वारा तराशकर कोई नवीन रूपाकार का मूर्तमान सृजन कर दिया जाए तो इसे मूर्तिकला कहते हैं। मूर्ति को चारों ओर से देखा जा सकता है। यदि बात भारतवर्ष की करें तो मूर्तिकला का सदैव से ही बोलबाला रहा है, क्योंकि मानव

ने अपनी गूढ़तम कल्पनाओं विशेषतौर पर आध्यात्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए उनकों मूर्तमान रूप प्रदान किया और कला का नया कलेवर जगत में मूर्तिकला के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इसके प्रारम्भिक उदाहरण हमें सिंधु नदी घाटी सभ्यता में दिखाई देते हैं जिसका काल निर्धारण 2700 ई.पू. से 1700 ई.पू.[1] के लगभग रहा है। जहाँ पर दो प्रमुख ठिकानों मोहनजोदड़ो और हड़प्पा नगरीय सभ्यता के पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत तो करते ही हैं, साथ ही तत्कालीन समय में मूर्तिकला के सुन्दर व उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है।

यहाँ से प्राप्त मूर्तिशिल्पों में ध्यानमग्न अवस्था में बैठे दाढ़ी वाले योगी की मूर्ति, पुरूष नर्तक का धड़, कांसे से बनी बाल नर्तकी की मूर्ति इत्यादि प्रमुख है। इसके साथ–साथ यहाँ अनेकों मृण्मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं, जिसमें मातृदेवी की मूर्ति अपने आप में अनूठी है। इसी क्रम में प्राप्त ताम्र मुद्राएं व उन पर बने उत्कीर्ण शिल्प अद्भुत है, जिसमें पशुपति शिव की रचना को साकार किया गया है। इसके अलावा उत्कीर्णित मोहरें भी मिली है जो कुकुद युक्त बैल, पीपल वृक्ष व हिरण की मुख्य है। इसके साथ–साथ यहाँ पर पकी हुई मिट्टी के अनोखे खिलौने भी प्राप्त हुए हैं, जो कहीं न कहीं मूर्तिकला का ही अंश है। ऐसे खिलौने पक्षी के रूप में सीटियाँ, पहियों से युक्त चिड़िया और रथ, झुनझुना व पुरूष और नारी आकृतियों के तौर पर प्राप्त हुए हैं।

उक्त समस्त मूर्तिशिल्पों को देखकर प्रारम्भिक भारतीय मूर्तिकला पर दृश्टिपात किया जा सकता है। मान्यता है कि सिंधुघाटी सभ्यता का अंत लगभग 1500 ई.पू.[2] में हुआ और मौर्ययुगीन कला का प्रारम्भ चौथी शताब्दी ई.पू.। इन दोनों सभ्यताओं के मध्य लगभग 1000 साल का अन्तर रहा है लेकिन इनके मध्य में मूर्तिकला के साक्ष्य अनुपलब्ध है अतः मौर्ययुगीन मूर्तिकला को ही सिंधु घाटी सभ्यता की अगली कड़ी के रूप में देखा जाता है। मौर्ययुगीन मूर्तिकला सिंधु घाटी की मूर्तिकला से परिष्कृत रूप को प्राप्त कर चुकी थी। इसके दो रूप मुख्य रूप से उभर कर सामने आते हैं, जिसमें एक राज्याश्रित कला व दूसरी लोक कला। राज्याश्रित कला सदैव ही केन्द्रीय सत्ता से पोषित रही थी, जिसके अन्तर्गत मौर्य राजाओं के द्वारा समय–समय पर बनवाये गये राजप्रासाद, चैत्य, स्तूप, विहार, स्तम्भ व गुफाएं आदि प्रमुख हैं। वहीं लोक कला भी लोक संस्कृति पर आधारित थी जिसमें विशाल यक्ष–यक्षिणियों की प्रस्तर मूर्तियों के साथ–साथ असंख्य मृण्मूर्तियाँ भी साक्ष्य स्वरूप उपलब्ध होती हैं जो तत्कालीन मौर्ययुगीन समाज में मूर्तिकला के उत्कृष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

मौर्ययुगीन स्तम्भों में सारनाथ का स्तम्भ अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण है जो भारत का राष्ट्रीय चिन्ह है और भारतीय मुद्रा पर भी उसका अंकन है। स्तम्भ के शीर्ष भाग पर मुख्य रूप से अश्व, वृषभ, सिंह और गज को मूर्तमान किया है। इन आकृतियों का देश काल परिस्थितियों के आधार पर महत्त्व था। इन स्तम्भों के अलावा अनेक प्रस्तर कलाकृतियों का सृजन मौर्ययुग में हुआ जिसमें बौधगया का वज्रासन, कालसी शिला प्रज्ञापन का हाथी, धोली चट्टान का हाथी इत्यादि प्रमुख है। मौर्य युगीन मूर्तिकला में यक्ष व यक्षिणी प्रतिमाओं का भी सृजन हुआ, जिसमें दीदारगंज से प्राप्त चामर धारिणी यक्षी की प्रतिमा[3] मौर्ययुगीन मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। मौर्ययुगीन परम्परा पश्चात् शुंग काल में स्तूपों के चारों ओर तोरण द्वारों का निर्माण करवाया गया और उनकों मूर्तिशिल्पों से अलंकृत किया गया। ये तोरण द्वार चौपहल हुआ करते थे, जो लगभग 24–25 फीट लंबाई के होते थे। इनके ऊपरी भाग पर वर्गाकार पत्थर के टुकड़ों पर सूचियाँ बनी हुई है जो अलंकृत है। इनके ऊपरी भाग पर धर्मचक्र, त्रिरत्न इत्यादि उत्कीर्णित थे,[4] जो अब खण्डित है। इसके अलावा बुद्ध की जातक कथाओं का मूर्तमान रूप यहां देखने को मिलता है, जिसमें छदंत जातक, वेस्सान्तर जातक, साम जातक, महाकपि जातक

और अलम्बुसा जातक मुख्य है।

गौतम बुद्ध के जीवन दृश्यों में उनके आकाशचारी, जल पर चलने वाले, अंगों से अग्नि प्रकट करने वाले इत्यादि अनेक रूपों को प्रतीकात्मक तौर पर अंकित किया गया है। इन तोरण द्वारों पर बनी शालभंजिकाओं व पशु–पक्षियों की मूर्तियाँ अत्यन्त ही कलात्मक है, जिनमें वृक्ष की डाल को स्पर्श करती हुई, बैठी हुई, वृक्ष का अवगुंठन करती हुई और शोभा यात्रा को देखने के लिए झांकती हुई अनेक शलभंजिकाएँ बनी हुई हैं इनके साथ–साथ अनेक पशु–पक्षी की आकृतियों व वनस्पतियों का भी निरूपण इन तोरण पर कुशलतापूर्वक किया गया है। इन तोरण द्वारों पर मानसी बुद्ध, देव समुदाय, कुलीन व सामान्य व्यक्तियों का भी अंकन देखने में आता है। इनमें सांची, भरहुत और अमरावती इत्यादि के स्तूप और उनके चारों तरफ बने तोरण द्वार मुख्य हैं। शुंग युगीन कला–संस्कृति के पश्चात् कुषाण काल की गांधार और मथुरा के मूर्तिशिल्प भारतीय मूर्तिकला का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते है। मथुरा में बने मूर्तिशिल्पों में बौद्धधर्म के साथ–साथ ब्राह्मण व जैन धर्म पर आधारित मूर्तियाँ भी बहुतायत से प्राप्त होती है। मथुरा को बुद्ध की पूर्णरूपेण भारतीय प्रतिमा बनाने का श्रेय जाता है। इससे पूर्व शुंगकाल तक बुद्ध की प्रतिमा प्राप्त नहीं होती है क्योंकि स्वयं बुद्ध मूर्ति पूजा के विरोधी थे लेकिन इसी समय सनातन व जैन धर्म में मूर्तिपूजा का बोलबाला था। अतः शनैः–शनैः बौद्ध धर्म भी इससे अलग न रह सका और बुद्ध की पूर्ण प्रतिमाओं का सृजन शुरू हो गया।

बौद्ध प्रतिमाओं में स्थानक, आसन दोनों मुद्राओं में खड़ी, पद्मासन व आभामंडल युक्त खड़े बुद्ध की अनेकों प्रतिमाओं का सृजन हुआ। इसके अलावा बुद्ध के जीवन की घटनाओं में धर्मचक्रप्रवर्तन, महाभिनिष्क्रिमण इत्यादि प्रमुख है। मथुरा में सनातन धर्म की अनेकानेक मूर्तियों का सृजन हुआ जिसमें लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय, सूर्य, सरस्वती, दुर्गा के महिषासुर मर्दिनी और सिंहवाहिनी रूप को मूर्तमान किया गया। शिव प्रतिमाओं में शिवलिंग के एकानन व पंचानन रूप है। साथ ही अर्द्धनारीश्वर रूप की भी अभिव्यक्ति हुई है। बौद्ध व सनातन धर्म की मूर्तियों के साथ–साथ जैन धर्म में ऋषभनाथ, संभवनाथ, नेमिनाथ, पाश्वनार्थ और महावीर स्वामी की मूर्तियाँ बनी है। धर्माधारित मूर्तियों के अलावा लौकिक जीवन से जुड़ी मूर्तियों का भी सृजन हुआ, जिसमें यक्ष–यक्षी को त्रिभंगी मुद्रा में पशु–पक्षी इत्यादि के साथ दर्शाया गया हैं। कुषाण काल के उत्कर्ष का समय गांधार मूर्तिकला को माना गया हैं जिसमें भारतवर्ष का साम्राज्य गांधार (अफगानिस्तान)[5] तक पहुँच गया था। इस काल में भी बौद्ध धर्म का बोलबाला रहा और उस पर आधारित अनेकानेक मूर्तिशिल्पों का अंकन हुआ। बुद्ध के पूर्वजन्म की जातक कथाओं इत्यादि के शिलाफलक देखने में आते हैं। इस काल की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इन मूर्तियों के शिल्पकार तो ग्रीक थे लेकिन उनके विषय भारतीय ही थे। इस बारे में डॉ. आनन्द कुमार स्वामी का मत है कि गान्धार मूर्तिकला पर भारतीय मूर्तिशैली की धाक है अर्थात् मूल रूप से यह यूनानी शैली है लेकिन विषय तो सर्वदा भारतीय ही है।

गांधार कला के बाद भारतीय मूर्तिकला के स्वर्णिम युग की शुरूआत हुई और चरमोत्कर्ष तक पहुँची। जहाँ मृण्मूर्तियों से लेकर पत्थर व धातु की मूर्तियों का बहुलता से सृजन हुआ। बुद्ध प्रतिमाओं में धर्मचक्रप्रतर्वन, पद्मासन में बैठे बुद्ध मुख्य है। इस काल में बुद्ध की कांसे व धातु से भी बहुत प्रतिमाओं का सृजन किया गया। बौद्ध प्रतिमाओं के साथ–साथ अनेकों सनातन धर्म की मूर्तियों का सृजन हुआ। इनमें विष्णु मूर्तियों तो बहुतायत से प्राप्त होती है जिनमें अंलकृत प्रभामण्डल प्रलम्बबाहु व उद्बाहु भुजाएं है। मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित

प्रलम्बबाहु विष्णु और राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली[6] में संरक्षित महानारायण विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति इसी के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। विष्णु की इन प्रतिमाओं के अलावा एक मुखी शिवलिंग, चतुर्मुखी शिवलिंग प्रमुख है। गुप्तकालीन मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण अहिच्छत्रा से प्राप्त पार्वती का मृणशिल्प भी है। जो अपने अलंकारिक केश विन्यास तेज व मुख की विशिष्ट भंगिमा के कारण दर्शनीय हैं। पार्वती शीर्ष के अलावा शिव का शीर्ष भी अत्यन्त सुन्दर है, जो सारनाथ संग्रहालय में मौजूद हैं इसके अलावा गंगा यमुना, अर्द्धनारीश्वर शीर्ष, अनन्तशायी विष्णु, महावराह विष्णु इत्यादि मूर्तिशिल्प गुप्तकालीन मूर्तिकला के स्वर्णिम इतिहास की कहानी को बयां करते है। प्रस्तर निर्मित इन मूर्तियों के साथ–साथ अनेकों मृण्मूर्तियों का सृजन हुआ और यह कला भी चरमोत्कर्ष पर पहुँची, गुप्तकाल में प्रस्तर, मृण व धातु निर्मित मूर्तियों के अलावा स्वर्ण, रजत, तांबे व तत्कालीन समाज में व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्मित मृण मुद्राओं पर भी निर्मित राजाओं की आकृतियाँ विविध रूपों में अंकित है। कुछ सिक्कों पर राजा व रानी दोनों की आकृतियों को साथ में उत्कीर्ण किया गया है। सिक्कों के पृष्ठ भाग में देवी की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी है जो अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होती है जिनमें गजलक्ष्मी रूप प्रमुख है।

गुप्तकाल के पश्चात् भारतीय मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण गुप्त मंदिरों में देखे जा सकते है जो अपने आप में अकल्पनीय व अद्भुत है। ऐसा मूर्तमान संसार जो सम्पूर्ण पहाड़ी को ही तराशकर गुहा मंदिरों में परिवर्तित कर दिया गया है। इन गुहा मंदिरों में भी सनातन, बौद्ध व जैन धर्म पर आधारित असंख्य मूर्तिशिल्पों का सृजन हुआ है। गुहा मंदिरों के अलावा भी अनेक कलात्मक मंदिरों का निर्माण समय–दर–समय होता रहा है। गुहा मंदिरों में एलोरा, ऐलीफेन्टा विश्व प्रसिद्ध है तो दूसरी तरफ कलात्मक मंदिरों में कौणार्क का सूर्य मंदिर, खजुराहों, लिंगराज, देलवाड़ा रणकपुरा, होयसलेश्वर, सहस्त्रबाहु, अर्थुणा इत्यादि का भी भारतीय मूर्तिकला में अति महत्वपूर्ण स्थान हैं। भारतीय मूर्तिकला के स्वर्णिम इतिहास की बानगी प्रस्तुत करता है। गुहा मंदिरों में एलीफेन्टा पूर्णतः सनातन धर्म को समर्पित है तो ऐलोरा की कुल 34 गुफाओं में 1 से 12 तक बौद्धधर्म, 13 से 29 तक ब्राह्मण सनातन धर्म, तीसरे समूह में 30 से 34 तक जैन धर्म[7] से संबंधित है।

इनका निर्माण काल लगभग 900 वर्षों तक निरन्तर होता रहा। ऐलीफेन्टा का त्रिमूर्ति महेश, महिषासुरमर्दिनी शिवपार्वती विवाह शिव गंगाधर रूप, अर्द्धनारीश्वर रूप, गणेश रूप अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तो ऐलोरा में ब्राह्मण सनातन गुफाओं में 16 वें गुफा कैलाश मंदिर के नाम से जग विख्यात है। यह गुहा मंदिर लगभग 143 फीट लम्बा, 21 फीट चौड़ा व 100 फीट ऊंचा है जिसमें रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाना, शिवपार्वती विवाह, हिरण्यकश्यप नृसिंह वृतान्त, शिव तांडव अन्य देवी देवताओं का अत्यन्त सुन्दर निरूपण है तो 1 से 12 तक गुफाओं में भगवान बुद्ध की अवलोक्तिेश्वर पद्मपाणि, वज्रपाणि, ध्यानस्थ बौद्ध इत्यादि अति महत्वपूर्ण मूर्तिशिल्प है। इसी क्रम में गुफा संख्या 30 से 34 गुफाओं में जैन तीर्थकरों विशेषकर पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी, बाहुबली गोमतेश्वर इत्यादि को प्रमुखता से मूर्तमान किया गया है।

गुहा मंदिरों के अलावा अन्य कलात्मक मंदिरों में भी भारतीय मूर्तिकला का उत्कृष्ट रूप निखर कर सामने आता है। इनमें जैन व सनातन धर्म मूर्तिशिल्पों की मनोहर छटा दृष्टव्य है। गुप्तकालीन शिखर मंदिर, देवगढ़, उत्तर भारत के कलात्मक मंदिरों में कलिंग मंदिर मुक्तेश्वर मंदिर, लिंगराज मंदिर, परशुरामेश्वर, जगन्नाथ, राजा–रानी, कौणार्क का सूर्य मंदिर इत्यादि प्रमुख है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश में स्थित सास–बहू, तेली का मंदिर, माला देवी मंदिर, बरूआ सागर विष्णु मंदिर आदि का भारतीय मंदिर स्थापत्य मूर्तिकला में मुख्य स्थान है।

मध्ययुगीन भारतीय मंदिरों में खजुराहों, राजस्थान के देलवाड़ा का जैन मंदिर, चितौड़गढ़ का कुंभश्याम व कालिका मंदिर, आभानेरी, हर्षद माता, उदयपुर का रणकपुर, बासंवाड़ा का अर्थुणा दक्षिण भारत के पल्लवकालीन महाबलिपुरम्, मदुरै, मीनाक्षी, रामेश्वरम् मंदिर भारतीय स्थापत्य व मूर्तिकला के उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत करते है। चालुक्य शैली के ऐहोल, लाडखाँ, दुर्ग मंदिर इत्यादि का नाम भारतीय मूर्तिकला स्थापत्य में शामिल है। इसके अलावा कुछ गुहा मंदिर और है जिनमें कन्हेरी, कार्ली व भाजा गुफाएँ प्रसिद्ध है। इसी प्रकार दक्षिण भारत से प्राप्त मूर्तिशिल्प जो भारत के प्रमुख कला संग्रहालयों में संरक्षित है वो भी भारतीय मूर्तिकला के स्वर्णिम इतिहास की कहानी आज भी बयां करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते है कि भारतीय मूर्तिकला अपने शैशव काल (सिंधु घाटी सभ्यता) से लेकर मौर्य, शुंग, कुषाण (गांधार/मथुरा) गुप्तकाल, मध्यकाल, पल्लव काल, चोल काल इत्यादि अनेकानेक कालखण्ड़ों में नित नवीन स्वरूपों में प्रस्फुटित व पल्लवित हुई जिसकी धारा गंगा के समान अविरल नित्य निरन्तर प्रवाहमान है जिसके साक्ष्य भारत ही नहीं, अपितु विश्व के कला संग्रहालयों में संरक्षित हैं जो भारतीय मूर्तिकला के स्वर्णिम इतिहास की आभा को बिखेर रहे हैं। जरूरत है इन पुरातात्विक महत्व से लबरेज कलात्मक मूर्तमान संसार को संरक्षण की जिससे भारत ही नहीं विश्व की इस कलात्मक धरोहर को संरक्षित किया जा सके ताकि युग–युगीन भारतीय मूर्तिकला की यह परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रताप...., भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, सन् 2011, पृ.सं. – 443.
2. पूर्वोक्त – 447.
3. पूर्वोक्त – 457.
4. पूर्वोक्त – 461.
5. पूर्वोक्त – 487.
6. पूर्वोक्त – 506.
7. पूर्वोक्त – 578.

मो.:– 9829794318

ईमेल :– kiradoorakesh@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 102-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में पशुधन एवं डेयरी विकास का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. वेदप्रकाश

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल, किसान पीजी कॉलेज सिंभावली, जनपद – हापुड़ राज्य – उत्तर प्रदेश

सारांश :-

यह शोध पत्र राजस्थान में पशुधन और डेयरी विकास के भौगोलिक अध्ययन से संबंधित है। इस शोध पत्र में हम राजस्थान के पशु संसाधनों और डेयरी विकास के बारे में अध्ययन करेंगे। अर्थव्यवस्था में पशुपालन व्यवसाय का विशेष महत्व है। पशुपालन न केवल राजस्थान के लोगों के लिए आजीविका का आधार है , बल्कि यह उनके लिए रोजगार और आय का एक मजबूत और आसान स्रोत भी है। राज्य के रेगिस्तानी और पहाड़ी क्षेत्रों में , एकमात्र विकल्प बचा है जो भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का सामना करने के लिए पशुपालन व्यवसाय है। जहां एक ओर बारिश के कारण कृषि से जीवन यापन करना मुश्किल है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक रोजगार के अवसर भी नगण्य हैं। ऐसी स्थिति में, ग्रामीण लोगों ने पशुपालन को अपने जीवन के तरीके के रूप में अपनाया है। राज्य की अर्थव्यवस्था पशुपालन व्यवसाय के माध्यम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारकों से लाभान्वित होती है। वर्तमान में , राज्य में पशुपालन की दृष्टि से पशु – भैंस, भैंस – बकरी, ऊँट, घोड़े, टट्टू और गधे हैं। राजस्थान भेड़ और ऊंट की संख्या के मामले में देश में पहले स्थान पर है। यद्यपि अधिकांश पशुपालन का काम राज्य के लगभग सभी जिलों में किया जाता है, लेकिन मुख्यतः रेगिस्तान , शुष्क और अर्ध – शुष्क क्षेत्रों में एक व्यवसाय के रूप में। पशुपालन न केवल ग्रामीण लोगों को स्थायी रोजगार प्रदान करता है, बल्कि पशु आधारित उद्योगों के विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि और पशुपालन पर निर्भर करती है और कृषि के बाद , पशुपालन को आजीविका कमाने का साधन माना जा सकता है। राजस्थान के पशु धन को विशेष आर्थिक महत्व का माना जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्र राज्य के कुल क्षेत्रफल का 61 प्रतिशत है जहां पशुपालन आजीविका का मुख्य साधन है। यह राज्य के शुद्ध घरेलू उत्तराधिकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रदान करता है। भारतीय संदर्भ में पशुधन के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए, कुछ

आंकड़े नीचे दिए गए हैं।

- राजस्थान में देश के कुल दूध उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत है।
- राज्य के पशुओं का वजन 35 प्रतिशत है।
- भारत में भेड़ के मांस में राजस्थान की हिस्सेदारी 30 प्रतिशत है।
- ऊन में भारत का राजस्थान का हिस्सा 40 प्रतिशत है
- वर्तमान में राज्य में भेड़ों की संख्या भारत की कुल संख्या का लगभग 25 प्रतिशत है।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था के बारे में कहा जाता है कि यह पूरी तरह से कृषि पर निर्भर करती है और कृषि को मानसून का जुआ माना जाता है। इस स्थिति में पशुपालन का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

राजस्थान की भौगौलिक स्थिति :–

राजस्थान का क्षेत्रीय विस्तार 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है। जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.41% है, क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का सबसे बड़ा राज्य है। राजस्थान की आकृति विषम चतुर्भुज के समान हैं। राजस्थान की स्थिति 23′3′ उतरी अक्षांश से 30′12′ उत्तरी अक्षांश (अक्षांशीय विस्तार 7′9′) तथा 69′30′ पूर्वी देशान्तर से 78′17′ पूर्वी देशान्तर (विस्तार 8′47) के मध्य स्थित राजस्थान का अधिकांश भाग कर्क रेखा (231/2′ कर्क रेखा अर्थात 23 0 30′ उतरी अक्षांश रेखा के उत्तर में स्थित है। कर्क रेखा राज्य में डूंगरपुर जिले की दक्षिणी सीमा से होती हुई बाँसवाड़ा जिले के लगभग मध्य से गुजरती हैं। बाँसवाड़ा शहर कर्क रेखा से राज्य का सर्वाधिक नजदीक स्थित शहर है। जलवायु की दृष्टि से राज्य का अधिकांश भाग उपोष्ण या शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है।

विस्तार :–

उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई 826 कि. मी. व विस्तार उत्तर में कोणा गाँव (गंगानगर) से दक्षिण में बोरकुण्ड गाँव (कुशलगढ़, बांसवाड़ा) तक है। पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 869 कि. मी. व विस्तार पूर्व में सिलाना गाँव (राजाखेड़ा, धौलपुर) से पश्चिम में कटरा (फतेहगढ़, सम, जैसलमेर) तक है।

राजस्थान में पशुधन :–

राजस्थान पशुपालन की दृष्टि से एक समृद्ध राज्य है। इसमें भारत के कुल पशुधन का लगभग 11.5 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से पशुओं का औसत घनत्व 120 जानवर प्रति वर्ग किलोमीटर है, जो पूरे भारत के औसत घनत्व (प्रति वर्ग किलोमीटर 112 जानवर) से अधिक है। 1988 में राज्य में पशुओं की कुल संख्या 409 लाख थी जो 1992 में बढ़कर 492.67 लाख हो गई और 1996 में 568.19 लाख हो गई। पशुओं की बढ़ती संख्या अकाल और सूखे से पीड़ित राजस्थान के लिए वरदान साबित हो रही है। आज, राज्य के शुद्ध घरेलू मूल का लगभग 15 प्रतिशत पशु धन से

प्राप्त किया जा रहा है। सम्पूर्ण भारत के संदर्भ में, राजस्थान में ऊन उत्पादन में 45 प्रतिशत, पशु वहन क्षमता में 35 प्रतिशत और दुग्ध उत्पादन में 10 प्रतिशत का योगदान है। वर्तमान में, राज्य में पशुपालन की दृष्टि से पशु – भैंस, बकरी, ऊँट, घोड़े, टट्टू और गधे हैं। राजस्थान भेड़ और ऊंट की संख्या के मामले में देश में पहले स्थान पर है। पशुपालन न केवल ग्रामीण लोगों को स्थायी रोजगार प्रदान करता है, बल्कि पशु आधारित उद्योगों के विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। अकाल और सूखे की स्थिति में, पशुपालन ही एकमात्र सहारा है। यह व्यवसाय पौष्टिक भोजन – घी, मक्खन, छाछ, दही, आदि के साथ–साथ डेयरी, ऊन, परिवहन, चमड़े के चारे आदि उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करता है। इसके अलावा, बड़े पैमाने पर मांस उत्पादन के साथ, चमड़े और हड्डियों को भी प्राप्त किया जाता है, जो विदेशों से निर्यात किया जाता है।

राजस्थान में पशुधन विकास :-

अर्थव्यवस्था में व्यापार की उपयोगिता के कारण , राज्य सरकार द्वारा समय – समय पर उचित प्रयास किए गए हैं। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में पशुधन विकास पर व्यय की मात्रा में लगातार वृद्धि हो रही है। यद्यपि यह राज्य पहली योजना अवधि में अपनी एकीकरण समस्याओं से जूझ रहा था और कृषि विकास के साथ पशुधन विकास व्यय शामिल था, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना में पशुधन विकास पर 1.25 करोड़ रुपये खर्च किए गए थे। जो सातवीं योजना में 37.6 करोड़ रुपये और आठवीं योजना में 87.3 करोड़ रुपये हो गया। नौवीं योजना अवधि के दौरान राज्य में पशुधन विकास के लिए लगभग 109.34 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। राज्य में पशुओं की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए, उनकी चिकित्सा सुविधाओं का भी लगातार विस्तार किया जा रहा है। राज्य के पशु चिकित्सालयों और स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या 1951 में केवल 147 थी, जो 1984–85 में बढ़कर 1106 और 1993–94 में 1457 हो गई। इनके साथ – साथ 55 मोबाइल अस्पताल, 8 जिला पशु अस्पताल और 13 रिंडरपेस्ट कंट्रोल सेंटर भी चलाए जा रहे हैं। विभिन्न जानवरों की नस्ल सुधार, रोग नियंत्रण और पौष्टिक भोजन की उपलब्धता के संदर्भ में भी कई कार्यक्रम चलाए गए हैं। जहां बकरी किसानों की मदद के लिए स्विट्जरलैंड सरकार की मदद से अजमेर, भीलवाड़ा और सिरोही जिलों में बकरी विकास और चारे की उत्पादन योजना शुरू की गई है , वहीं दूसरी ओर ऊँट की बीमारी को नियंत्रित करने के लिए कई सार नियंत्रण इकाइयों की स्थापना की गई। है। इसी तरह , सुअर के कारोबार को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से अलवर और भरतपुर जिलों में सुअर विकास फार्म खोला गया है। इसी तरह, गायों की नस्ल में सुधार और संरक्षण के उद्देश्य से लगभग 280 गौशालाएँ चलाई जा रही

हैं। कुछ गौशालाओं को केंद्र सरकार से वित्तीय अनुदान मिलता है और अधिकांश अन्य स्कूलों को राजस्थान गौ सेवा संघ के संरक्षण और निर्देशन में चलाया जा रहा है। गायों और सांडों की नस्ल सुधारने के लिए 58 गौ – प्रजनन शाखाएँ काम कर रही हैं। राजस्थान में पशुपालन व्यवसाय को उन्नत करके ग्रामीण विकास को गति देने के लिए ग्रामधार योजना भी शुरू की गई है। जिसके तहत उन्नत नस्ल के पशुओं की संख्या बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक प्रजनन पर अधिक जोर दिया जा रहा है। दूसरी ओर, संतुलित पशु चारा और चारा उत्पादन प्रणाली विकसित करने के साथ – साथ पशुओं को संक्रामक रोगों से बचाने पर भी ध्यान दिया जा रहा है। इसके अलावा, ग्रामीणों को पशुपालन के वैज्ञानिक तरीकों के लिए प्रशिक्षण दिया जा रहा है और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए उचित विपणन व्यवस्था करने के साथ – साथ कृत्रिम गर्भाधान और चारा विकास केंद्रों के विस्तार के लिए प्रशिक्षण दिया जा रहा है। गोपाल योजना भी 1989–90 से राज्य में पशुधन मालिकों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से लागू की गई है। इस योजना के तहत, ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार शिक्षित युवाओं को कृत्रिम गर्भाधान, निवारक दवाओं का उपयोग, बाँझपन की रोकथाम, संतुलित आहार , पशुओं की आधुनिक देखभाल आदि के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। अब तक यह योजना 45 पंचायत समितियों में चलाई गई है। दक्षिणपूर्वी राजस्थान के 12 जिलों में। राजस्थान में पशुधन का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से देखा जा सकता है।

(1) राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान :–

राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन का लगभग 9% हिस्सा है।

(2) गरीबी उन्मूलन :–

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में पशुपालन के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में, दुधारू पशुओं को देकर गरीब परिवारों की आय बढ़ाने का प्रयास किया गया। लेकिन इसके लिए चारे और पानी की उचित व्यवस्था करनी पड़ती है और लाभार्थी परिवारों को बिक्री की सुविधा भी प्रदान की जाती है।

(3) नौकरी सृजन :–

पशुपालन से उच्च आय और रोजगार की संभावनाएं हैं। पशुओं की खपत बढ़ाकर आय बढ़ाई जा सकती है। राज्य के शुष्क और अर्ध – शुष्क भागों में, कुछ परिवार (विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसान और खेतिहर मजदूर) बहुत सारे पशुपालन करते हैं और वंश परंपरा में उनका काम जारी रहा है। इन क्षेत्रों में, पशुपालन से शुद्ध घरेलू उत्थान का एक उच्च अनुपात उत्पन्न होता है। इसलिए रेगिस्तान की अर्थव्यवस्था मूल रूप से पशु आधारित है।

(4) डेयरी विकास :–

पशुधन की मदद से , ग्रामीण दूध उत्पादन शहरी उपभोक्ताओं के साथ जुड़ा हुआ है, शहरी क्षेत्र की दूध की आवश्यकता और ग्रामीण क्षेत्र की आजीविका की आपूर्ति है। राजस्थान देश के कुल दूध उत्पादन का 10 प्रतिशत उत्पादन करता है। राज्य ने 1989–90 में 42 लाख टन दूध का उत्पादन किया, जो 2003–04 में बढ़कर 80.5 लाख टन हो गया।

(5) परिवहन का तरीका :–

राजस्थान में पशुधन की विशाल क्षमता है। बैल, भैंस, ऊंट, गधे, खच्चर आदि का उपयोग कृषि और कई परियोजनाओं में भार उठाने और ले जाने के लिए किया जाता है। देश की कुल वहन क्षमता का 35 प्रतिशत हिस्सा राजस्थान के पशुओं द्वारा वहन किया जाता है। देश में कुल 300 मिलियन टन माल रेल और ट्रकों द्वारा ले जाया जाता है, जबकि 70 मिलियन टन माल अभी भी बैलगाड़ियों द्वारा ले जाया जाता है।

(6) खाद की प्राप्ति :–

पशुपालन के माध्यम से कृषि के लिए खाद भी प्रदान की जाती है। वर्तमान में , पशु के गोबर से बना "वर्मीकम्पोस्ट" भोजन उच्च परिसंचरण में है।

राजस्थान में पशुधन की संरचना :–

राज्य में विभिन्न प्रकार के जानवर पाए जाते हैं। जिनकी संख्या नीचे दी गई तालिका में दिखाई गई है। 2015 में विभिन्न प्रकार के जानवरों की संख्या :–

– गाय 1.49 करोड़।
– भैंस जाति का 1.44 लाख।
– भेड़ पालकों की 1.10 करोड़ रुपये
– 1.98 करोड़ की बकरी – जाति।
– ऊंट, घोड़े, गधे, सूअर आदि 0.20 करोड़ या 20 लाख।

इस प्रकार संख्या के संदर्भ में, पशु और भेड़ और बकरी जानवरों में प्रमुख हैं। राजस्थान में उपलब्ध विभिन्न जानवरों जैसे गाय, बकरी, भेड़ आदि का निम्नलिखित विवरण।

1. राजस्थान में गाय :–

गाय पशुपालन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। और इसकी निम्न नस्लें राजस्थान में पाई जाती हैं। गौ–वंश के पास कुल पशुधन का 22.8 प्रतिशत है।

नागौरी :–

इसका प्रमुख क्षेत्र नागौर का "सुहालक" क्षेत्र है। इस प्रकार का बैल ज्यादातर जोधपुर, नागौर और नागौर से सटे पड़ोसी जिलों में पाया जाता है। इस नस्ल की गायें कम दूध देती हैं।

छूट :–

बाड़मेर, सिरोही और जालौर जिले राजस्थान के दक्षिण – पश्चिमी भागों में पाए जाते हैं। इस नस्ल की गायें प्रतिदिन 5 से 10 लीटर दूध देती हैं। इस नस्ल के बैल भी अच्छे वजन वाहक हैं। इसलिए, यही कारण है कि इस नस्ल की गाय – संतान को "दोतरफा दौड़" कहा जाता है।

थारपारकर :–

इसका उद्गम स्थल मैलानी (बाड़मेर) है। यह गाय अत्यधिक दूध के लिए प्रसिद्ध है, इसे स्थानीय रूप से "मैलानी नस्ल" के रूप में जाना जाता है।

राठी :–

यह राजस्थान के पश्चिमोत्तर भागों में श्रीगंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर में पाया जाता है।

इस नस्ल की गायें अत्यधिक दूध के लिए प्रसिद्ध हैं, लेकिन इस नस्ल के बैलों में कम असर वाली क्षमता होती है।

गिरना :–

यह गिरबान, सौराष्ट्र , गुजरात में रहने वाला एक जानवर है। ये जानवर दक्षिण – पूर्वी भाग (अजमेर, चित्तौड़गढ़, बूंदी, कोटा आदि) में सबसे अधिक पाए जाते हैं।

2. **भेड़ :–**

देश के कुल झुंडों का लगभग 25 प्रतिशत राजस्थान में पाया जाता है। राज्य के लगभग 2 लाख परिवार पशुपालन के काम से जुड़े हैं।

भेड़ की मुख्य नस्लें इस प्रकार हैं।

1. **जैसलमेरी :–**

यह जैसलमेर में पाया जाता है।

2. **नाली :–**

यह हनुमानगढ़, चुरू, बीकानेर और झुंझुनू जिलों में पाया जाता है। यह अधिक ऊन के लिए प्रसिद्ध है।

3. **मालपुरी :–**

इसे "देशी नस्ल" भी कहा जाता है। यह जयपुर, दौसा, टोंक, करौली और सवाई माधोपुर जिलों में पाया जाता है।

4. **मगरा :–**

यह प्रति वर्ष औसतन 2 किलो ऊन देता है। इस नस्ल की भेड़ें ज्यादातर जैसलमेर, बीकानेर, चूरू, नागौर आदि में पाई जाती हैं।

5. **पुगल :–**

बीकानेर की तहसील "पुगल" के रूप में उनके उद्गम स्थल के कारण, यह पुगल बन गया।

6. **मारवाड़ी नस्ल :–**

राजस्थान में कुल भेड़ों की मारवाड़ी नस्ल (लगभग 45 प्रतिशत) है। यह राजस्थान में जोधपुर, बाड़मेर, पाली, दौसा, जयपुर आदि जिलों में सर्वाधिक पाया जाता है।

7. **चोकला या शेखावाटी :-**

इसे भारत का मेरिनो भी कहा जाता है। यह ऊन देने वाली नस्ल का सबसे अच्छा प्रकार है। यह हर साल 1 से 1.5 किलो ऊन देता है।

8. **सोनाडी :-**

राजस्थान में बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर जिले पाए जाते हैं। जब यह भेड़ जमीन पर घास चरती है, तो इसके कान जमीन को छूते हैं।

समस्याएं और बाधाएँ :-

पशुपालन व्यवसाय के विकास और विस्तार के लिए इन उपायों के बावजूद, , कुछ बुनियादी और संरचनात्मक समस्याओं के कारण, पशुधन बेहतर रूप से विकसित नहीं हो रहा है। पशुपालकों के निरक्षर होने के कारण उन्हें आधुनिक तरीकों से प्रशिक्षित करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। पशुपालक अपनी गरीबी के कारण न तो पशुओं को पौष्टिक आहार दे पा रहे हैं और न ही उनकी बीमारियों का निदान कर पा रहे हैं। कई बार समय पर इलाज न मिलने के कारण सैकड़ों पशुओं के एक साथ मरने से मवेशी गंभीर आर्थिक संकट में फंस जाते हैं। अधिकांश झुंड कमजोर और खराब नस्ल के जानवरों के मालिक हैं। इसके अलावा, कृषि ज्यादातर लोगों की आजीविका का आधार होने के कारण, चारागाहों के लिए पर्याप्त भूमि नहीं बची है। परिणामस्वरूप, जानवरों को सूखे पत्तों और डंठल आदि पर निर्भर रहना पड़ता है। कृषि उत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है , लेकिन अपर्याप्त वर्षा के कारण हर तीन से चार साल बाद पूर्ण या आंशिक अकाल की छाया होती है। जिसके कारण अधिकांश जानवर अकाल से प्रभावित हैं। और झुंड मुसीबत में पड़ जाते हैं। ज्यादातर पशुपालक पारंपरिक और रूढ़िवादी तरीकों से ही पशुपालन करते हैं। इन सभी कारणों से, आज भी पशुपालन के प्रति व्यावसायिक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाया है।

पशुधन विकास की समस्याएं :

1. **मानसून की अनिश्चितता :-**

राजस्थान में लगातार सूखे की समस्या है। इस कारण पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध नहीं हो पाता है।

2. **योजना और समन्वय का अभाव :-**

सरकार अभी तक इस क्षेत्र के विकास के लिए पूरी योजना नहीं बना पाई है। और समन्वय की कमी देखी गई है।

3. **पशु स्वास्थ्य योजना :-**

अक्सर देखा गया है कि किसी बीमारी के कारण सभी जानवर चपेट में आ जाते हैं। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए नियोजन और सुविधाओं का

अभाव देखा गया है।

4. पशु आधारित उद्योगों का अभाव :-

राजस्थान में ऊन, दूध और चमड़ा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, लेकिन राजस्थान में इन पर आधारित उद्योगों की कमी के कारण, राज्य को दूध, चमड़ा अन्य राज्यों या अन्य राज्यों को निर्यात करने का पर्याप्त लाभ नहीं मिलता है।

पशुधन विकास के लिए समाधान :-

1. "गोपाल" कार्यक्रम :-

यह कार्यक्रम 1990 में शुरू किया गया था। यह एनजीओ या गाँव शिक्षित युवाओं (गोपाल) को उचित प्रशिक्षण देने और उनकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें, विदेशी नस्ल के उपयोग को बढ़ाने के लिए क्रॉस ब्रीडिंग के लिए कृत्रिम गर्भाधान की विधि में गोपाल को प्रशिक्षित किया जाता है। किसी क्षेत्र की बेकार सीडल पूरी तरह से डाली जाती हैं। किसानों को प्रशिक्षित किया जाता है कि वे अपने जानवरों को स्टाल पर कैसे खिलाएं और हमेशा बाहर चरने की विधि पर निर्भर न हों।

2. भेड़ प्रजनन कार्यक्रम :-

राज्य में ऊन और मांस के उत्पादन में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार लाने के लिए भेड़ प्रजनन में सुधार के लिए व्यापक प्रयास किए गए हैं। क्रॉस – ब्रीडिंग कार्यक्रम नाली, चोकला, सोनाडी और मालपुरा नस्लों पर लागू किया गया।

3. विपणन प्रणाली :-

एक तरफ पशुओं की खरीद और बिक्री के लिए पशु मेले आयोजित किए जाते हैं, ताकि पशुपालकों को उनके उत्पादन का उचित मूल्य मिल सके। दूसरी ओर , दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों को दुग्ध बिचौलियों के बिना उपभोक्ताओं तक सीधे पहुंच बनाने के लिए स्थापित किया गया है। राज्य में पशु मेले ग्राम पंचायतों, नगर पालिकाओं और पंचायत समितियों के माध्यम से आयोजित किए जाते हैं। वर्तमान में राज्य में 50 पशु मेले हैं, जिनमें से 10 मेले राज्य स्तर के प्रसिद्ध पशु मेलों, पशुपालन विभाग द्वारा आयोजित किए जाते हैं।

4. पशु चिकित्सा :-

पशु रोगों से बचाव और रोकथाम के लिए राज्य में नए अस्पताल खोले गए हैं। जहां 1951 में 147 अस्पताल थे। 2001–02 में राज्य में 12 पशु चिकित्सालय, 22 प्रथम श्रेणी पशु चिकित्सालय, 1386 पशु चिकित्सालय, 285 पशु औषधालय और 1720 उप–केंद्र कार्यरत हैं। इसके अलावा , राज्य में 34 जिला रोग प्रयोगशालाएँ काम कर रही हैं। पशुपालकों को उनके घर पर पशु चिकित्सा सेवाएं प्रदान करने के लिए उपखंड स्तर पर 8 मोबाइल पशु चिकित्सा इकाई स्थापित करने की योजना है।

5. एकीकृत पशु विकास कार्यक्रम :-

आठवीं योजना की शुरुआत में, इसे जयपुर और बीकानेरसम्बाग में शुरू किया गया था, लेकिन वर्तमान में यह कार्यक्रम राज्य के कोटा, जयपुर, बीकानेर, अजमेर, उदयपुर संभाग के 21 जिलों में लागू है जहाँ 749 उप – केंद्र स्थापित किए गए हैं। पशु स्वास्थ्य के अलावा, इस योजना में कृत्रिम गर्भाधान, अपशिष्ट जानवरों की नसबंदी और बेहतर किस्म के चारे के बीज का वितरण शामिल है।

6. पशुपालन और अनुसंधान :-

राज्य में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बीकानेर और जयपुर में दो पशु चिकित्सा कॉलेज स्थापित किए गए हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने बीकानेर और सूरतगढ़ में भेड़ अनुसंधान केंद्र स्थापित किए हैं। जोधपुर में, एक भेड़ और भेड़ प्रशिक्षण स्कूल स्थापित किया गया है। विश्व बैंक की मदद से, पशु चिकित्सकों और अधिकारियों ने जामडोली में राजस्थान पशु धन प्रबंधन संस्थान के विशेष तकनीकी प्रशिक्षण के लिए निर्माण कार्य किया है।

7. डेयरी विकास पर प्रौद्योगिकी मिशन :-

भारत सरकार ने डेयरी विकास पर एक प्रौद्योगिकी मिशन शुरू किया है, जिसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

1. उत्पादकता बढ़ाने और लागत को कम करने के लिए आधुनिक तकनीक को अपनाकर ग्रामीण रोजगार और आय बढ़ाएं
2. दूध और दूध उत्पादों की उपलब्धि को बढ़ाने के लिए।

8. राज्य में डेयरी विकास कार्यक्रम :-

डेयरी या दूध विकास नीति के तहत, राजस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन अमूल के नमूने पर राष्ट्रीय डेयरी विकास के सहयोग से राज्य में एक डेयरी कार्यक्रम चला रहा है। डेयरी फेडरेशन उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण दूध और दुग्ध उत्पाद उपलब्ध कराने में लगी हुई है। यह पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार, पशु आहार की सुविधाओं और दुग्ध उत्पादों को उचित मूल्य प्रदान करने के लिए भी प्रयास कर रहा है। वर्तमान में, दूध का संग्रह 16 जिला डेयरी संघों द्वारा किया जा रहा है, जिनकी क्षमता 9 लाख लीटर से बढ़ाकर 14.30 लाख लीटर प्रतिदिन कर दी गई है। राज्य के सभी 30 जिलों में गहन डेयरी विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्य में 16 दुग्ध उत्पादक संघों का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है। 2006–07 में, दिसंबर 2006 तक डेयरी फेडरेशन का औसत दूध संग्रह 13.49 लाख किलोग्राम प्रति दिन था और इसकी दूध की बिक्री औसतन 12.01 लाख लीटर प्रति दिन थी। मार्च 2006 के अंत में, दुग्ध उत्पादक प्राथमिक सहकारी समितियों की संख्या बढ़कर 8874 हो गई और जिला दुग्ध संघों की संख्या बढ़कर 16

हो गई। सहकारी समितियों के विकास के परिणामस्वरूप दुग्ध उत्पादकों को बहुत लाभ हुआ। विपणन के साथ दूध उत्पादन को जोड़ने से दुग्ध उत्पादकों को उचित मूल्य और मध्यम वर्ग के शोषण से मुक्ति मिली।

सुझाव :-

राज्य के जानवरों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए , एक तरफ पशुपालकों को शिक्षित करना और उन्हें आधुनिक तरीकों से प्रशिक्षित करना आवश्यक है, दूसरी ओर, सभी क्षेत्रों में पशुओं की नस्ल सुधार योजनाओं को लागू करना बहुत महत्वपूर्ण है अधिक प्रभावशाली रुप से। सरकार को पशुओं की संक्रामक बीमारियों को जल्द से जल्द रोकने के लिए चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार करना चाहिए। पशुपालकों को जागरूक कर पशु संवर्धन कार्यक्रमों और योजनाओं को सफल बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। पशुपालकों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए, उन्हें सरल और कम ब्याज दरों पर संस्थागत ऋण मिलना चाहिए और अकाल और सूखे की स्थिति में पशुपालकों को पूरी सुरक्षा दी जानी चाहिए। पूरे वर्ष उपलब्ध होने वाले चारे को विकसित करना भी बहुत महत्वपूर्ण है। पशु बीमा योजना को राज्य के सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रचारित और प्रभावी रूप से लागू किया जाना चाहिए।सभी जिलों में, दूध की बिक्री की तरह , जानवरों से प्राप्त अन्य पदार्थों की बिक्री के लिए सहकारी समितियों की भी स्थापना की जानी चाहिए। अनुत्पादक जानवरों की संख्या के आधार पर, पशुपालकों को सरकार से वित्तीय और चारा अनुदान मिलना चाहिए। पशुपालन के प्रति आजीविका कमाने के बजाय , एक पेशेवर दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि पशुपालन व्यवसाय को पूर्ण व्यवसाय बनाया जा सके। राज्य के पशुपालन व्यवसाय को समृद्ध करने के लिए, यह भी आवश्यक है कि यहां पशु आधारित उद्योग विकसित किए जाएं। ऐसा करने से न केवल राज्य के पशुपालकों की आय बढ़ेगी , बल्कि राज्य के औद्योगिक विकास को भी बढ़ावा मिलेगा।

निष्कर्ष :-

राजस्थान में पशुपालन और डेयरी के विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में आय और रोजगार में वृद्धि हुई है। छोटे और सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूरों को आर्थिक रूप से लाभ हुआ है। समाज के गरीब तबके को फायदा हुआ है, मानव आहार में प्रोटीन की मात्रा बढ़ी है तथा बायो–गैस के द्वारा ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्त्रोत का विकास भी हुआ है। शहरी क्षेत्रों में दूध व दूध से बने पदार्थों से मांग की पूर्ति करने में मदद मिली है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. राजस्थान का भूगोल, प्रोफेसर एच एस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था, प्रोफेसर लक्ष्मीनारायण नाथूराम, कॉलेज बुक हॉउस, जयपुर।

3. राजस्थान का भूगोल, डॉ. हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. राजस्थान सुजस, त्रिमासिक पत्रिका, राजस्थान सरकार, जयपुर।
5. राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लिमिटेड (RIICO)
6. सूचना एवं जनसंचार प्रौद्योगिकी विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।
7. राजस्थान डेयरी विकास संघ, जयपुर।
8. पशुपालन विभाग, राजस्थान सरकार।
9. माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान – राजस्थान अध्ययन।
10. भारत का भूगोल, चतुर्भुज मांमोरिया।

डॉ. वेदप्रकाश, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष – भूगोल
किसान (पी०जी०) कॉलेज, सिम्भावली, जनपद–हापुड़, उत्तर प्रदेश
Email : 2011vaad@gmail.com
मो०न० : 9411611360

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 113-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण पद्धति का मूल्यांकन

डॉ. सुमन जोशी

प्राचार्या, राजस्थान महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर।

उच्च शिक्षा किसी देश की न केवल आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ होती है, बल्कि वह उसके सामाजिक चिंतन की बुनियाद, सांस्कृतिक बनावट की समझ और राजनैतिक प्रतिष्ठा की भी परिचायक होती है। यह अनायास नहीं है कि दुनिया के शैक्षणिक मानचित्र पर अमेरिका, इंग्लैंड पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों और संस्थाओं का वर्चस्व है। एशियाई देश इस मामले में थोड़े पीछे चल रहे है। हालांकि सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, जापान और चीन इस दिशा में कदम बढ़ाने की कोशिश कर रहे है। हमारा भारत भी थोड़ा पीछे चल रहा है। हमारे यहाँ उच्च शिक्षा के स्तर परिवर्तन की अति आवश्यकता है। स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर से लेकर पी.एच.डी. स्तर तक प्रवेश और कार्यप्रणाली में सुधार अपेक्षित है।

शिक्षा किसी राष्ट्र को विकसित करने, उसके उत्थान हेतु, स्थायी ऊर्जा प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण साधन है यह देश तथा समाज के लिए सुयोग्य, उपयोगी, संवेदनशील एवं उत्तरदायी नागरिकों के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा अर्थात् एम.ए., एम.एस.सी., एम.कॉम., एम.एड़, एम. टेक., एम.डी., एम.एस. आदि उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पायदान है क्योंकि इस स्तर पर आकर विद्यार्थी किसी एक विषय में सम्यक्, सम्पूर्ण और श्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है दूसरी तरफ यह रिसर्च एण्ड डेवलपमैंट की आरम्भिक सीढ़ी भी है क्योंकि किसी विषय में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने या उसके बाद उस विषय के बारे में शोधपूरक सवालों, विश्लेषण, चिंतन और अनुसंधान की शुरूआत होती है लेकिन स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा को हमारे शिक्षाविदों ने पूरी गंभीरता से नहीं लिया है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार मध्ययुगीन यूरोप की तरह हमारे देश में शास्त्र शिक्षा ही प्रधान थी। यह शिक्षा विशेष रूप से पाठशालाओं में दी जाती थी लेकिन इस विद्या की पृष्ठ भूमि सारे देश में व्याप्त थी। 1857 ई. में मुम्बई, चेन्नई तथा कोलकता में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। ब्रिटिश शासन काल में आधुनिक शिक्षा का विकास हुआ।

उच्च शिक्षा के परिक्षेत्र को विस्तृत किया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में एक वैशिष्ट्य बोध का अनुभव होता है। आमजन के साथ उनका सामंजस्य नहीं हो पाता है फलतः देश में शिक्षित तथा अशिक्षित वर्ग का विकास हुआ है। शिक्षित तथा अशिक्षित वर्गों में सामाजिक एवं आर्थिक असमानता की स्थिति उत्पन्न हुई। स्वाधीनता के बाद भी यह विभेद मौजूद है।

अतः प्रस्तुत शोध में शिक्षकों के दायित्वों तथा शिक्षण पद्धतियों का मूल्यांकन किया जाएगा। उच्च शिक्षा के सामाजिक सारोकार से जुड़े सवालों को रेखांकित किया जाएगा। सूचना क्रान्ति ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक पैमाने पर बदलाव को उत्पन्न किया। इंटरनेट, ई–मेल, फेसबुक, ब्लॉग तथा अन्य स्रोतों के आधार पर देश और दुनिया के किसी भी हिस्से से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इन सभी पहलुओं के लिए आवश्यक है कि शिक्षा में गुणात्मकता को ध्यान देते हुए माध्यमिक शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन कर इसे सशक्त व जनोपयोगी बनाया जाए जिससे छात्र–छात्राएँ शिक्षणोपरान्त सुयोग्य नागरिक बनकर समाज एवं राष्ट्र की उन्नति कर सके।

परिक्षेत्र एवं मुद्दा :–

(1) विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या अधिक होने पर पठन पाठन सामग्री तथा शिक्षण पद्धति प्रभावित होती है उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप ही छात्रों का नामांकन किया जाना चाहिए।

(2) समय के अनुरूप पाठ्यक्रम होना अपेक्षित है अतः पाठ्यक्रम में लगातार बदलाव होते रहना चाहिए।

(3) विश्वविद्यालय के छात्र सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक प्रखर नहीं दिखाई पड़ते है उनमें आत्म अभिव्यक्ति की क्षमता का अभाव होता है उनमें सामान्य ज्ञान के प्रति अभिरुचि नहीं होती है। अतः उच्च शिक्षण संस्थानों में उपर्युक्त क्षेत्रों में पहल करने की आवश्यकता है।

(4) वर्तमान में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी शिक्षा की अधिक आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध राजस्थान के उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षण पद्धति के गहन एवं गंभीर मूल्यांकन से जुड़ा हुआ है। अतः प्रस्तुत शोध के आधार पर उच्च शिक्षण संस्थानों के शिक्षण पद्धति का मूल्यांकन किया जाएगा।

किसी भी राष्ट्र या समाज की सर्वांगीण उन्नति में उच्च शिक्षा का सबसे अहम् योगदान होता है। शिक्षित व सभ्य नागरिक ही अपने राष्ट्र व समाज के विकास में उचित भूमिका निभा सकते है। चाहे कोई भी युग हो प्रत्येक युग का भविष्य उसकी आगामी पीढ़ी पर ही निर्भर करता है। जिस युग की पीढ़ी जितनी अधिक शालीन, सुसंस्कृत और शिक्षत होती है, उस युग के विकास की सम्भावनाएँ भी उतनी ही अधिक रहती है। राष्ट्र, समाज और परिवार के साथ भी यही सिद्धान्त घटित होता है। वर्तमान युग परिवर्तन का युग है, विज्ञान और तकनीकी के तीव्र विकास के कारण मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में तीव्र एवं दूरगामी परिवर्तन आ रहे है। दूरसंचार यातायात, कृषि, उद्योग तथा चिकित्सा क्षेत्रों में नित नये–नये प्रयोग हो रहे है इन सभी परिवर्ततनों ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाकर नई–नई शैक्षिक चुनौतियाँ प्रस्तुत कर दी है, जिनमें सबसे बड़ी शैक्षिक चुनौति भारतीय शिक्षण पद्धति पर वैश्वीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

2020 में नई शिक्षा नीति की घोषणा की गई। तथ्यों तथा आंकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि राजस्थान में उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं की डिग्री कॉलेज और विश्वविद्यालयों से अलग नहीं किया जा सका है। अधिकांश शिक्षकों तथा छात्रों में कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट की तकनीकी जानकारी नहीं होने के कारण अध्ययन–अध्यापन प्रभावित हो रहा है। परम्परागत पाठ्यक्रम तथा अध्ययन पद्धति को बरकरार रखने के कारण शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। उच्च शिक्षण संस्थानों में लैंगिक विभेद का भी अनुभव किया जाता है। छात्राओं के व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित साधन तथा अवसर उपलब्ध नहीं है। शिक्षण संस्थानों में लम्बे समय से शिक्षकों के पद रिक्त है। अधिकतर पुराने शिक्षण प्रशिक्षित नहीं है फलतः शिक्षण पद्धति प्रभावी होती

है। अतः वर्तमान समय के अनुरुप पद्धति को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :-

शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए जरुरी है कि शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पर्यावरण के आधार पर किया जाए। सीखने के लिए उपयुक्त पर्यावरण का होना अति आवश्यक है और उसके लिए छात्रों के आसपास का वातावरण अधिगम एवं शिक्षा के लिए अनुकूल बनाना आवश्यक है। शिक्षा ही वह सशक्त उपागम है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न संस्कारों के माध्यम से अपने शरीर, मन और आत्मा का समन्वित विकास कर समाज एवं राष्ट्र का योग्य नागरिक बनता है। इसीलिए कहा गया है कि शिक्षा जीवन की प्रयोगशाला है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली राष्ट्र निर्माण से दूर होकर सैद्धान्तिक व सूचनात्मक होती जा रही है समाज और उसकी समस्याओं से शिक्षा का सम्बन्ध विच्छेद सा होता जा रहा है। शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा जैसे कई स्तर बन गए है। जहाँ माध्यमिक शिक्षा के प्रति सरकार का दृष्टिकोण उदासीन है। वही प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण एवं उच्च शिक्षा का वैश्वीकरण हो रहा है। माध्यमिक शिक्षा की नींव ही कमजोर हो तो फिर उच्च शिक्षा का भवन कैसे लगेगा इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उच्च शिक्षा नीति, राजस्थान सरकार।
2. एमएचआरडी (2016). एनुअल रिर्पोट, डिर्पाटमेंट ऑफ हायर एज्युकेशन, गवरमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
3. सिंह, आर. पी. (2010). ऑन ऑपनिंग अ 'वर्ल्ड' क्लास युनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी न्यूज, नई दिल्ली, 48 (37), सितम्बर 13–19, 2010.
4. Singh, J.D. (2015). Higher Education for the 21st Century. University News. 53(26), Pp. 18-23.
5. विभिन्न समाचार पत्र एवं पत्रिकाऐं।

Email: sumanjoshi051966@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 116-121
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

MICROWAVE ASSISTED SYNTHESIS AND MEDICINAL EVOLUTION OF Pr (III) COMPLEXES WITH QUINOLINE DERIVATIVE LIGANDS

NARESH KUMAR HARSH
Department of Chemistry, Binani Girls College, Bikaner.
N. BHOJAK
Green Chemistry Research Centre (GCRC), Department of Chemistry,
Govt. Dungar College (NAAC 'A' Grade), Bikaner – 3340012

ABSTRACT :-

Objective : To synthesize Pr (III) complexes by green methodology and evolution of their biological activities.

Methods : Complexes of Quinoline derivatives with Pr (III) have been synthesized using the green methodology. The spectral characterization of the complexes has been performed by using Uv-Vis, IR, and NMR spectroscopy. The biological activities have been evolved by the disc diffusion method.

Results : The synthesized complexes possess effective stability. The complexes show significant antibacterial and antifungal activity.

Conclusion : The newly developed green method for the synthesis of Pr (III) complexes is simple, less time-consuming, and eco-friendly.

Keywords : Pr (III) Complexes, Quinoline derivatives, Antimicrobial activity, Green Synthesis

INTRODUCTION :-

Microwave irradiation (MWI) effectively heats the reaction mixture by utilizing microwave (MW) energy. A microwave is a type of electromagnetic radiation with wavelengths ranging from about 10-3 m to 1 m and frequencies that fall between infrared and radio waves. Microwave-assisted chemical reactions have been shown to be cleaner and produce fewer byproducts than conventional heating. During ionic conduction, the ions in the solution transmit microwave energy to the solution via ionic drift. The dipole and/or ion fields vibrate in an attempt to align with the MW-induced alternating electric field. The amount and direction of the microwave electric field influence the orientation of

the dipoles. At lower frequencies, the induced field in the material has a smaller heating impact.Because of dipole orientation reorientation, microwave heating does not occur at higher frequencies. The frequency of 2.45 GHz used in all commercial MW systems is somewhere in the middle, allowing the molecule dipole time to align in the field but not precisely follow the alternating field. When the reaction mixture is exposed to MW radiation, the temperature rises steadily [1-6]. Praseodymium is a component of the alloy misch metal, which is used to make cigarette lighters. Praseodymium salts play an important role in the glass and enamel industries. It is also used as a colorant in the production of a type of glass known as didymium glass.The biological activities of complexes of Pr (III) have been reported particularly with quinoline derivates, keeping this fact in mind the present research has been designed and in this paper microwave-assisted synthesis of Pr (III) complexes with quinoline derivatives and their biological activities viz a viz QSAR studies have been reported.

MATERIALS AND METHODS :-

Materials :- All the chemicals and solvents used were of AR grade and purchased from Sigma-Aldrich, CDH, and Merck and used without further purification. Standard solution of the Pr (III) chloride, 8-Hydroxy Quinoline, and 5-Chloro-8-Hydroxy Quinoline have been prepared by dissolving an appropriate amount in double distilled water.

Instruments :- Following instruments have been used during investigations.

(i) EC Double Beam UV-VIS Spectrophotometer (UV 5704SS), with a quartz cell of 10 mm light path was used for Electronic spectral measurement at GCRC Govt. Dungar College Bikaner.

(ii) IR spectra were recorded on Bruker Optic Model Alpha (FT-IR) (Zn-Se Optics, ATR) (4000-400 cm-1) using KBr disc at SIL, Govt. Dungar College Bikaner.

(iii) Microwave synthesis was carried out in domestic microwave oven Model KENSTAR-OM20ACF, 2450MHz, 800W and GMBR (Green Microwave Biochemical Reactor) at GCRC, Govt. Dungar College Bikaner.

(v) All biological activities are carried out with horizontal laminar, BIFR, Bikaner.

(vi) Melting point of all compounds was recorded in a sulphuric acid bath or by using Beckmann Melting Point apparatus.

Microwave Synthesis of complexes of Pr (III) :

In a 100 ml conical flask, a solution of Praseodymium chloride (0.001 moles in 30 ml ethanol-water) was taken, and respective ligands (i.e., 8-Hydroxy Quinoline, and 5-Chloro-8-Hydroxy Quinoline) 0.002 mmol was slowly added with constant stirring. The mixture was then microwaved for 2 to 4 minutes at a medium power level of 600W / 800W, shaking occasionally. After cooling to room temperature, the liquid was placed in ice-cold methanol and vacuum-dried over P2O5.

Antimicrobial activity of complexes of Pr (III) :-

10 ml of each test item was combined with 1 ml of dimethylsulphoxide to form the stock solution (DMS). For the inoculum, we utilized a Mueller Hinton agar slant with a 24-hour-old culture. Each petri dish contained 20 ml of Mueller Hinton agar and a colony of bacteria or fungus. It was permitted to allow the plates to harden before moving forward. As soon as the solidified samples were removed from the Petri dishes, four bore wells were drilled and filled with stock solutions. The Petri dishes were kept in a dimly lit room for optimal results. The MIC was calculated after a thorough examination of the area of inhibition.If an apparent microorganism growth is seen even at low doses, this is known as the MIC value. Fungi/bacteria's drug resistance and the effectiveness of new antimicrobial medicines are measured using this test method.

RESULTS AND DISCUSSIONS :-

Elemental Analysis : All synthesized complexes have been found to be colored crystalline/ powder compounds that were stable under typical laboratory conditions for a long time, non-hygroscopic, and insoluble in most organic solvents and water except DMF and methyl alcohol. Table 1 shows the physical characteristics and elemental analysis results. The analytical data correlates well with the proposed molecular formula of the complexes [11].

Table 1- Physico-chemical Data of Complexes

(C.M. = Conventional method, M.M. = Microwave method)

S. N.	Complexes	Color	MP (°C)	Reaction Period		Yield %		Elemental Analysis Found %					
				C.M. (Hrs.)	M.M. (Min)	C. M.	M. M.	C	H	N	O	Cl	Metal
1	$C_{27}H_{18}N_3O_3Pr$	Brown	255	4.2	3.0	38	68	56.1	3.24	7.83	8.28	-	23.59
2	$C_{27}H_{15}Cl_3N_3O_3Pr$	Yellow	250	3.3	2.5	36	56	47.2	2.42	6.41	7.30	15.70	21.84

FTIR studies :-Vibration bands for ligands and their compounds were registered into KBr at the area 4000-400 cm-1. The assignments to the distinctive bands (FT-IR) spectrum different complexesare abbreviated at table 2. IR spectral for ligand (8-HQ)show wide band in 3180 cm-1, whom has been qualified into stretching vibration for ?(OH) phenol, this band was vanish into the spectra for all generated complexes, whom referred coordination this band for metal ion. Band in1624 cm-1 appointed into?(C=N) stretching frequency, on complexation a shifting for alteration into form were noticed of these bands, whereas growing into density were observe, specified may be a outcome from coordination for metal ion. Bands into IR spectrum to the 8-HQ in 1577 and 1504 cm-1 consequent into stretching vibration for ?(C=C). New bands watched in (435-513) cm-1 are temporarily appointed into ?(M-N),?(M-O) as well ?(M-P) (Metal- Ligands) stretching bands [12-13].

Table 2 Characteristic IR Bands for compounds

S.N.	Ligand/Complex	*v* OH	*v* ArH	*v* C=N	*v* C=C	*v* C-O	*v* C-Cl	*v* M-N	*v* M-O
1	8-HQ	3180	3080, 1037, 735	1630	1577, 1485, 1467	1285	-	-	-
2	$[Pr(8\text{-}HQ)_3]$	-	3048, 1035, 734	1639	1593, 1578, 1507	1225	-	574	544
3	5-Cl-8-HQ	3182	3068, 1035, 738	1623	1573, 1481, 1462	1283	735	-	-
4	$[Pr(5\text{-}Cl\text{-}8\text{-}HQ)_3]$	-	3047, 1031, 737	1643	1595, 1573, 1492	1221	730	567	527

Uv-Vis studies :

The UV–Visible spectrum of 8-hydroxyquinoline derivatives shows three distinct bands at 250–295, 315–380, and 418–450 nm. These observed absorption band positions indicate n ? ?* transition, which may be due to the C–O of the phenolic OH group, the presence of a C-N group in conjugation with an aromatic ring, and can be accounted for p?p* transitions, whereas the latter may be due to n ?p* for the presence of the phenolic hydroxyl group (Auxochrome).To assess covalency in M-L complexes, electronic spectra of formed complexes were recorded. The absorption bands in the spectra of Ln(III) are caused byelectronictransitions from the ground states 3H4, 4I9/2, and 6H5/2 to the excited states, i.e., J-levels of the 4fn-configuration. In the 400-900 nm range, four bands 3H4?3P0, 3H4?3P1, 3H4?3P2, and 3H4?3D2 for Pr(III) systems were found. These are represented in Table 3.[14-15].

Table 2 Characteristic UV-VIS Bands for compounds

S.N.	Ligand / Complex	λmax	ABS	*Wave number* (cm^{-1})	€max ($Lmol^{-1}cm^{-1}$)	Remarks
1	8-HQ	335 367	0.819 0.861	29850 27247	819 861	($\pi\rightarrow\pi^*$) ($n\rightarrow\pi^*$)
2	$[Pr(8\text{-}HQ)_3]$	331 396	0.822 0.722	30212 25252	822 722	($\pi\rightarrow\pi^*$) ($^3H_4\rightarrow{}^3P_2$)
3	5-Cl-8-HQ	331 370	0.820 0.860	30212 27027	820 860	($\pi\rightarrow\pi^*$) ($n\rightarrow\pi^*$)
4	$[Pr(5\text{-}Cl\text{-}8\text{-}HQ)_3]$	329 398	0.825 0.725	30395 25126	825 725	($\pi\rightarrow\pi^*$) ($^3H_4\rightarrow{}^3P_2$)

Antimicrobial studies :-

Antimicrobial activity against microorganisms was tested on a variation of newly synthesized substances. Ampicillin was utilized as a reference medicine for antibacterial action against E. coli, whereas fluconazole was used for antifungal activity against Candida albicans. Following that, the inhibitory concentration (in g/ml) was measured and presented in Table 4.

Table 4 Antimicrobial activity of complexes

S. No.	Sample compound	MIC (μg/ml)	
		Antibacterial E. coli	Antifungal C. Albicans
1	[Pr(8-HQ)$_3$]	24	1.4
2	[Pr(5-Cl-8-HQ)$_3$]	55	3.24
	Ampicillin	110	-
	Fluconazole	-	16.7

CONCLUSIONS :-

In this research,microwave-assisted synthesis, characterization and biological properties of Pr(III) complexes with quinoline derivatives have been reported. The elemental makeup of these newly produced compounds was determined (C, H, N, O, S), IR, and UV-Vis spectroscopy were also used to further understand the chemistry of these molecules.Then, they were tested for their ability to fight off disease-causing microbes. It was discovered that all three complexes have significant biological activity.

REFERENCES :-

1. Katia Martina, Giancarlo Cravotto, Varma R S. Impact of Microwaves on Organic Synthesis and Strategies toward Flow Processes and Scaling Up. The Journal of Organic Chemistry. 2021: 86 (20): 13857-13872.
2. Gorl1er C., Binnemans K., Handbook on the physics and chemistry of Rare Earths; Eds; Elsevier, Amsterdam. 2018: 25: 101-264.
3. Evans C.H.Biochemistry of Lanthanide plenum press.,Newyork. 2020: 8: 2l.
4. Gauthier Hallot, Virginie Cagan, Sophie Laurent, Catherine Gomez, Marc Port. A Greener Chemistry Process Using Microwaves in Continuous Flow to Synthesize Metallic Bismuth Nanoparticles. ACS Sustainable Chemistry & Engineering. 2021: 9 (28) : 9177-9187.
5. Yadav N and Bhojak N. Microwave-assisted. The Int J Eng Sci. 2013: 2 (2): 166-168
6. Sheldon RA,Arends I, Hanefeld U. Green Chemistry and Catalysis, Wiley, Wienheim. 2007: 1-2: 2.
7. Anastas, PT, Warner JC. Green Chemistry: Theory and Practice, Oxford University Press, Oxford, 2000; 2-5
8. Lancaster M. Green Chemistry : An Introductory Text, Royal Society of Chemistry, Cambridge, 2010; 1- 164.
9. Joshi UJ, Gokhale KM, Kanitkar AP. Green Chemistry: Need of the Hour, Indian J PharmEduc Res, 2011; 45(2): 168-174.
10. Arianie L., Widodo, Iftitah E D., Warsito, Natural isothiocyanate anti-malaria: molecular docking, physicochemical, ADME, toxicity and synthetic accessibility study of eugenol and cinnamaldehyde. International journal of applied pharmaceutics, 2021:13(6): 82–88
11. Bhojak N, Gudasaria DD, Khiwani N, Jain R. Microwave assisted synthesis spectral and antibacterial investigations on complexes of Mn (II) with amide containing ligands. E-Journal of Chemistry. 2007: 4 (2): 232-237
12. Verma KK, Gupta PS, Solanki K, Bhojak N. Microwave assisted synthesis, characterisation and

antimicrobial activities of few Cobalt (II) thiosemicarbazones complexes. World J Pharm Pharm Sci. 2015: 4: 1673-1683
13. Ram R, Verma KK, Solanki K, Bhojak N. Microwave assisted synthesis, spectral and antibacterial investigations on comoplexes of Ni (II) with amide containing ligands. International Journal of New Technologies in Science and Engineering. 2015: 2 (6): 92-100.
14. Prajapat G, Gupta R, Bhojak N. Thermal, Spectroscopic and Antimicrobial Properties of Novel Nickel (II) Complexes with Sulfanilamide and Sulfamerazine Drugs. Chemical Science International Journal. 2018: 24 (2): 1-13
15. Jain VK, Mandalia HC, Bhojak N. Azocalix [4] pyrrole dyes: application in dyeing of fibers and their antimicrobial activity. Fibers and Polymers. 2010: 11 (3): 363-371.

Naresh Kumar Harsh
B-75 Murlidhar Vyas Nagar, Bikaner (Raj) PIN- 334001
Binani Girls College, Bikaner.
Mail ID- harshnk21@gmail.com
Mob. 9785001440

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 122-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक समाज में जनसंचार माध्यमों के प्रभाव का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सीमा बिस्सा, शोधार्थी (समाज शास्त्र),
डॉ. आर.के. सक्सेना, शोध निर्देशक (समाज शास्त्र),
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सम्प्रेषण द्वारा मानव अपने विचारों का आदान–प्रदान करता है। यह आदान–प्रदान करने की प्रक्रिया संचार का महत्त्वपूर्ण पहलू है। संचार द्वारा ही मानव अपने सामाजिक सम्बन्धों का निर्वाह, निर्माण एवं विकास करता है। संचार ही मानव समाज की संचालन प्रक्रिया का सफल सोपान है। बालक मौखिक अवस्था से अपने हाव–भाव के माध्यम से आवश्यकता की पूर्ति करता है। इसके लिए प्रेरणा व परिवर्तनशील जैसाकि लायड ने कहा कि प्रेरणा एवं पर्यावरण शिशु में संचार व्यवहार के विकास के लिए परस्पर निर्भर एवं आधारभूत तत्त्व है। मानव शरीर के संचालन में जिस प्रकार से रक्त के प्रवाह का महत्व है उसी प्रकार मानव के सामाजिक अन्तर्संबंधों में संचार की महत्ती भूमिका है, अर्थात् संचार प्रक्रिया में शरीर के अंग सूचना प्रेषक, सूचना ग्राहक, संचार माध्यम, संचार संपादन एवं सूचना नियंत्रक का कार्य करते हैं।

संचार प्रक्रिया का आरम्भ सम्प्रेषक एवं सूचना ग्रहण के मध्य संदेशों के आदान–प्रदान से होता है। सूचना प्रेषक का मुख्य उद्‌देश्य सूचना प्रेषण के द्वारा श्रोता के विचार, व्यवहार, तौर तरीकों को परिवर्तित एवं परिवर्धित करना है। सूचना का सम्प्रेषण मात्र संचार ही नहीं बल्कि उस पर एक प्रभावी प्रतिक्रिया का होना भी है, जिसे संचार प्रक्रिया में फीडबैक के रूप में जाना जाता है।

शोध का उद्‌देश्य :–

शोध का उद्‌देश्य संचार माध्यमों का नगरीय परिवेश में अध्ययन करना है। यह ज्ञात करना भी अध्ययन का उद्‌देश्य है कि आर्थिक विकास, सामाजिक प्रतिमान, सामाजिक संस्थाओं पर संचार माध्यमों का क्या प्रभाव है तथा क्या ये माध्यम सामाजिक विघटन उत्पन्न कर रहे हैं? अध्ययन के प्रारम्भ में ये उपकल्पनाएं भी निर्मित की गयी है कि संचार माध्यमों का नगरीय विकास में सहयोग रहा है, वैश्वीकरण प्रक्रिया को बढ़ाया है, आर्थिक पक्ष प्रभावित हुआ है, सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक प्रतिमानों को प्रभावित किया है साथ ही सामाजिक विघटन को भी बढ़ाया है।

संचार माध्यमों का प्रभाव :–

सामाजिक व्यवहार में संचार महत्त्वपूर्णता से भूमिका निभाता है। संचार प्रवाह भाषा अथवा भावभंगिमा के द्वारा होता है। भाषा स्पष्ट प्रकार का सामाजिक संचार है और यह प्रत्येक मानव समाज में प्रभावी है जबकि

भावभंगिमा अव्यक्त प्रक्रिया तथा संचार का एक रूप है। अतः संचार का विकास व्यक्ति एवं समाज के अनुभवों पर निर्भर करता है। इस प्रकार सामान्य रूप से संचार घटनाओं का ऐसा तालमेल है जिसमें संदेश निहित होता है संचार के अनेक पहलू जिसमें संदेश, उत्पादन, सम्प्रेषण, ग्राह्यता प्रमुख है। जिस प्रकार मानव को जीवित रहने के लिये वायु की आवश्यकता है उसी प्रकार समाज संचालन के लिए संचार व्यवस्था का होना आवश्यक है। संचार मानव स्वभाव का अभिन्न अंग है, जिसके अभाव में मानव के सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। संचार मानव समाज की संचालन प्रक्रिया को संभव बनाता है। संचार प्रक्रिया में सूचना प्रवाह एवं सूचना की ग्रहणशीलता के कार्य में मानव शरीर के अनेक अंग संयुक्त अथवा अलग–अलग रूप में भूमिका निभाते हैं। संचार प्रक्रिया का प्रारम्भ प्रेषक एवं सूचना ग्राहक के मध्य संदेशों के आदान–प्रदान से होता है। समाज में संचार प्रवाह भाषा अथवा भाव–भंगिमा के द्वारा होता है। संचार माध्यमों के विस्तार और प्रसार के समाज अनेक दृष्टि से लाभ प्राप्त कर रहा है। आज जब चारों ओर आधुनिकीकरण की बात की जाती है वह मुख्य रूप से संचार माध्यमों के कारण ही है। संचार माध्यमों ने ग्रामीण विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

वर्तमान समाज में संचार माध्यमों की भूमिका निरन्तर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, संस्था, समूह, व्यक्ति संचार माध्यम की उपेक्षा नहीं कर सकता। संचार माध्यम वर्तमान औद्योगिक युग की एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। जनसंचार माध्यमों का विस्तार वैश्विक स्तर पर हो रहा है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। इन संचार माध्यमों ने निश्चित रूप से मानव जीवन के सभी पक्षों पर प्रभाव ड़ाला है। वर्तमान समय में भारत में बढ़ते हुए जनसंचार माध्यम की उपादेयता का ज्ञान प्राप्त करना, सूचना के अधिकार को जानना है तथा परम्परागत एवं संचार के आधुनिक माध्यम का महत्व विशेषकर शहरी क्षेत्रों में जानना साथ ही यह पता लगाना कि इन संचार माध्यमों ने शहरी क्षेत्र की अध्यापिकाओं को किस प्रकार प्रभावित किया है।

भारतीय समाज में न केवल विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय रहा है वरन् भारतीय समाज सदैव ही परम्पराओं, प्रतिमानों एवं संस्कारों का सम्मान भी करता रहा है। समाज आज भी स्थायित्व को धारण किए हुए हैं, लेकिन समय के साथ कुछ परिवर्तित होता रहता है। इसी कारण परम्पराओं पर आश्रित भारतीय समाज भी परिवर्तन की इस धारा से अछूता नहीं रहा है।

संभवतया मानव जीवन को किसी अन्य माध्यमों ने उतना प्रभावित नहीं किया जितना कि संचार माध्यमों ने। आज स्पष्टतः समाज का एक विकसित रूप हमारे समक्ष हैं जो न केवल नगरीय वरन् गामीण एवं अन्य सभी क्षेत्रों में भी दृष्टिगोचर हो रहा है। संचार प्रत्येक व्यवस्था का नियामक है। संचार के आधुनिक विकास ने समय और दूरी की सीमाओं को समेट लिया है। विश्व एक परिवार का संकल्प विकसित संचार माध्यमों का परिणाम है। जनसंचार माध्यम एक जनक की भांति है। वर्तमान समय में आज जनसंचार माध्यम सूचना के प्रमुख स्रोत के रूप में स्थापित है। संचार सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक एवं आधुनिक विकास व्यवस्थाओं में आधारभूत एवं पर्यावरणीय व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

आधुनिक समाज में संचार की भूमिका परम्परागत समाज में सर्वथा भिन्न है। यह सामाजिक व्यवस्था का शाश्वत अवयव है। समाज की प्रत्येक व्यवस्था में संचार की केन्द्रीय भूमिका है। संचार माध्यमों के प्रभाव से वर्तमान समाज पूर्णतया प्रभावी प्रतीत होता है। समाज की विभिन्न संस्थाओं यथा शिक्षा, परिवार, विवाह आदि सभी को संचार माध्यमों ने प्रभावित किया है। सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं आदि को भी

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संचार माध्यमों ने प्रभावित किया है। संचार माध्यमों द्वारा जहां एक ओर समाज वैश्वीकरण की ओर उन्मुख हो प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, वहीं दूसरी ओर संचार माध्यमों का दुष्प्रभाव भी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, प्रतिमानों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। आज संचार माध्यम चाहे ये प्रिंट हो अथवा इलैक्ट्रॉनिक किसी न किसी रूप में समाज को प्रभावित कर रहे हैं।

संचार माध्यमों का समाज पर प्रभाव न केवल सकारात्मक वरन् नकारात्मक भी है। सकारात्मक इस रूप में कि संचार माध्यमों ने जहां प्रत्येक व्यक्ति को विश्व परिदृश्य से अवगत होने में महती भूमिका का निर्वाह किया है वहीं दूसरी ओर संचार माध्यमों का नकारात्मक पक्ष यह है कि हमारी संस्कृति, परिवार एवं अन्य संस्थाओं को न केवल प्रभावित किया है वरन् इनके विघटन का भी कारक रहा है।

संचार मानव स्वभाव का अभिन्न अंग है, जिसके अभाव में मानव के सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। संचार प्रक्रिया का प्रारम्भ प्रेषक एवं सूचना ग्राहक के मध्य संदेशों के आदान–प्रदान से होता है। समाज में संचार प्रवाह भाषा अथवा भाव–भंगिमा के द्वारा होता है। ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने संचार में मुख्य रूप से 5 तत्त्वों को समाहित किया है – वक्ता, संदेश, श्रोता, अवसर और प्रमाण। लासवेल, गबनर, ब्लैक एक्स, शैनन् तथा वीलर, फोडलर, लेजर्स फील्ड, रोजर, शूमेकर आदि ने विभिन्न आधारों पर संचार के सिद्धांतों को स्पष्ट किया और अपने–अपने दृष्टिकोण से संचार प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

संचार माध्यमों के प्रकार :–

संचार माध्यमों को मोटे–तौर पर जिन दो भागों में बांटा जा सकता है वे हैं – परम्परागत संचार माध्यम तथा आधुनिक संचार माध्यम। परम्परागत संचार माध्यमों के अंतर्गत नाटक, गीत, नृत्य आदि को सम्मिलित किया जाता है, जबकि आधुनिक संचार माध्यमों के अंतर्गत प्रिंट एवं इलैक्ट्रोनिक को सम्मिलित किया जाता है। प्रिंट माध्यमों में पत्र, पत्रिका आदि को सम्मिलित किया जा सकता है जबकि इलैक्ट्रोनिक मीडिया में फिल्म, टी.वी., रेडियो, कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। संचार के संघटकों में द्वारपाल या स्रोत, चयनित सूचना, सम्प्रेषक, संदेश, संचार मार्ग या साधन, संचार माध्यम, श्रोता, विश्लेषण, सूचना सम्प्रेषण, गन्तव्य स्थल, फीडबैक आदि सम्मिलित है। कोई भी सूचना स्रोत से चलकर फीडबैक तक की यात्रा पूर्ण करती है।

जनसंचार माध्यमों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण :–

संचार माध्यमों के विकास की ऐतिहासिकता का वर्णन करते हुए बताया गया है कि संचार माध्यमों में मुद्रण कला और पद्धति का विकास तो चीन में हुआ लेकिन आधुनिक छापेखाने का विकास 1455 में जर्मन के जोन्स गुटेनबर्ग ने बाइबिल को प्रकाशित कर किया। भारत में 1560 ई. में गोआ में सर्वप्रथम प्रेस की स्थापना हुई। दुनिया का पहला समाचार पत्र 1702 ई. में लन्दन से 'डेली करण्ट' के नाम से प्रकाशित हुआ। प्रथम भारतीय समाचार पत्र का प्रकाशन 1766 ई. में विलियम बोल्ट द्वारा किया गया। 1816 ई. में 'बंगाल गजट' का प्रकाशन गंगाधर भट्टाचार्य नामक भारतीय द्वारा किया गया। 1856 ई. से स्वतंत्रता की पहली लड़ाई तक भारतीय प्रेस का तेजी से विकास हुआ। विभिन्न समाचार पत्रों टाइम्स ऑफ इण्डिया (28 सितम्बर, 1861), पायनियर (1865) अमृत बाजार पत्रिका (मार्च, 1872) तथा हिन्दू (1878) आदि का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। 1937 में 32 दैनिक एवं 22 साप्ताहिक अंग्रेजी समाचार पत्र थे जिनकी संख्या 1947 में बढ़कर 51 दैनिक और 258 अंग्रेजी साप्ताहिक

हो गये।

आज संचार माध्यम सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के आधारभूत एवं सशक्त साधन हैं। विद्युतीय संचार माध्यमों का प्रारम्भिक उद्देश्य मनोरंजन था जो बाद में समाचार, शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में भी प्रयोग किए जाने लगे। फिल्म का माध्यम के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग लुइस डाइगुर ने 1860–70 में किया। भारत में सर्वप्रथम चलचित्र का प्रदर्शन ल्यूमेरे बंधु ने 23 अप्रैल, 1896 में किया। 1913 से 1930 के बीच खेलकूद फिल्मों का निर्माण भारत में हुआ, प्रारम्भ में पौराणिक और ऐतिहासिक फिल्मों का ही निर्माण हुआ। 1931 में प्रथम सवाक फिल्म 'आलमआरा का निर्माण हुआ। 1953 में राष्ट्रीय फिल्म समारोह की योजना प्रारम्भ हुई जिसमें 28 श्रेणियों में पुरस्कार की घोषणा की गयी। 1960 में देश में फिल्म एण्ड टेलीविजन इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई। 1973 में फिल्म जर्नलिस्ट सोसायटी की स्थापना हुई।

वायरलैस के माध्यम से 15 सितम्बर 1912 को पहला रेडियो स्टेशन स्थापित किया गया। 14 नवम्बर 1922 को बी.बी.सी. की स्थापना हुई। भारत में 1923 में प्रथम बार रेडियो क्लब बंगाल में प्रारम्भ हुआ। भारत में प्रसारण सेवा का प्रारम्भ 23 जुलाई 1927 को बम्बई मे प्रारम्भ हुआ। 1937 में ऑल इण्डिया रेडियो के निर्देशकों की बैठक हुई। 1941 में सूचना और प्रसारण विभाग बनाया गया। 1943 में ऑल इण्डिया रेडियो को दिल्ली के प्रसारण भवन में स्थानांतरित किया गया। 1957 में ऑल इण्डिया रेडियो का हिन्दी नाम आकाशवाणी किया गया। 1926 में बेयर्ड ने रॉयल इंस्टीट्यूट में टेलीविजन का प्रारम्भ किया। टेलीवीजन का विकास स्तंत्रत भारत में हुआ। 1959 में टेलीवीजन प्रसारण प्रारम्भ हुआ जिसका उद्देश्य सामुहिक शिक्षा था। 1961 में 250 स्कूलों में टेलीवीजन सैट लगाकर प्रसारण प्रारम्भ किया गया। 15 अगस्त, 1965 को दिल्ली में 7 वर्षों हेतु नियमित टेलीवीजन प्रसारण केन्द्र प्रारम्भ हुआ। 15 अक्टूबर 1983 से पूरे देश में अमेरिकी शटल चैलेंजर द्वारा भेजे गए इन्सेट–1 (बी) से पूरे देश में टेलीवीजन प्रसारण संभव हुआ। आज भारत के लगभग सभी स्थानों, चाहे वे ग्रामीण हो अथवा नगरीय पर टेलीवीजन का प्रसारण हो रहा है और आज अनेकों चैनल सफलता से प्रयुक्त हो रहे हैं और लोकप्रियता के साथ जनजीवन का हिस्सा भी बन चुके है।

सामाजिक सम्बन्धों को नियंत्रित और संचालित करने में जनसंचार की अहम् भूमिका है। समाज में अनेक प्रकार के प्रतिमानों का प्रचलन है जो हमारे व्यवहार को नियंत्रित करता है। ये प्रतिमान मानव के विपथगामी व्यवहारों पर नियंत्रण कर समाज की व्यवस्था को बनाए रखते हैं। प्रतिमान किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने का निर्देश देते हैं। प्रत्येक समाज के अपने प्रतिमान होते हैं जो दूसरे समाज से भिन्न होते हैं। जनरीतियाँ, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ, कानून, धर्म, नैतिकता, परिपाटी, शिष्टाचार, फैशन आदि ऐसे ही प्रतिमान है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के संस्कार और पुरुषार्थ हमारी परम्पराओं के अंग रहे हैं। मूल रूप से ये प्रतिमान और परम्पराएं ही समाज की व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करती हैं।

संचार माध्यमों से अन्य साधन जैसे रेडियो, टेलीवीजन, मोबाइल और कम्पयूटर आज अधिकांश लोगों के पास हैं। आज धीरे–धीरे रेडियो की उपयोगिता और प्रभाव कम हो रहा है क्योंकि इसका स्थान टी.वी. ने ले लिया है, फिर भी आज रेडियो प्रचलन है। टी.वी. का प्रचलन सर्वाधिक है और आज इस पर अनेक चैनलों का प्रसारण हो रहा है जिन पर समाचार, मनोरंजन, धर्म, खेलकूद, फिल्म आदि का प्रसारण हो रहा है और लोग इसका प्रयोग सर्वाधिक कर रहे हैं। टी.वी देखने की प्रवृत्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन कार्यक्रमों पर चर्चा भी की

जाती है। लोगों में जागरूकता आयी है और विश्व के बारे में उनकी सोच का विस्तार हुआ है। मोबाइल और कम्प्यूटर का प्रभाव भी लोगों पर स्पष्ट दिखाई देता है।

आज के परिवर्तनशील समाज पर जहाँ एक ओर आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है और दिन–प्रतिदिन समाज उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं दूसरी ओर आज समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। आज संचार माध्यमों ने जहाँ मानव समाज को विश्व की परिस्थितियों से अवगत कराया है वहीं दूसरी ओर उपभोक्तावादी संस्कृति को भी बढ़ावा दिया है। आज मानव भौतिक सुख–सुविधाओं के सारे साधन सहेजना चाह रहा है जिस कारण आए दिन तनावग्रस्त रहता है।

आज समाज वैयक्तिक विघटन, सामाजिक विघटन और सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त है। सुख–सुविधा भोगी होने के कारण आज मानव हर वह चीज येन–केन प्रकारेण पा लेना चाहता है जो उसे समाज में ऊँचा स्थान दिला सके तथा इस होड़ में वह उसी उधेड़बुन में लगा रहता है जिस कारण वह तनावग्रस्त रहता है और एकाकीपन उसे घेर रहा है। इन कारणों से वह सदैव परेशान रहता है। इन चीजों को पा लेने के लिए वह कभी–कभी ऐसे प्रयास भी करता है जिससे समाज को क्षति पहुँचती हैं क्योंकि इन प्रयासों में व्यक्ति सामाजिक नियमों की अवहेलना से भी नहीं चूकता। यही कारण है कि आज समाज में चारों ओर भ्रष्टाचार व्याप्त है और जो व्यक्ति ईमानदारी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है उसकी स्थिति दयनीय है।

निष्कर्ष :–

जब समाज में व्यक्तिगत विघटन और सामाजिक विघटन की स्थिति हो तो निश्चित तौर पर समाज सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त होगा। यही कारण है कि आज समाज के समक्ष अनेक समस्याएं खड़ी हैं। संचार माध्यमों में प्रसारित कार्यक्रम कभी–कभी अपराध की ऐसी–ऐसी नई तकनीक सिखाते हैं कि युवा मन इन्हें शीघ्र आत्मसात कर लेता है ओर ऐसे अवसर की तलाश में रहता है जब इसका प्रयोग कर सके। अपराध सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रसारण निश्चित तौर पर समाज के लिए हानिकारक है। इसे समय रहते नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। संचार माध्यमों में प्रसारित प्रकाशित कार्यक्रम आज अफवाह, भय और दहशत फैलाने का कार्य भी कर रहे हैं जिससे समाज में तनाव का माहौल है और आज साम्प्रदायिकता और जातिवाद को भी इससे बढ़ावा मिल रहा है। संचार माध्यमों की शक्ति, महत्ता और उपयोगिता को देखते हुए उपभोक्तावादी जीवन–शैली का विस्तार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप इसके सकारात्मक प्रभावों में काफी वृद्धि हुई है लेकिन इसके हस्तक्षेत्र से नकारात्मक प्रभाव भी उभर कर सामने आये है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समाज तक पहुंचने और उसे जागरूक कर समक्ष बनाने में संचार माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अशोक कुमार (1974) : थ्योरी ऑफ हयुमन कम्यूनिकेशन, Vol. 1, XXXVIII.
2. कृष्ण सोठी (1980): प्रोबलम ऑफ कम्यूनिकेशन इन डेवलपिंग कन्टरीज, विजन बुक, नई दिल्ली।
3. शर्मा, एस.के., डी. किशोर (1972) : इफेक्टिवनेस ऑफ रेडियो एज ए मास कम्यूनिकेशन मिडियम इन डिसेमिनेशन ऑफ एग्रीकल्चर इन्फॉरमेशन, इण्डियन जनरल ऑफ एक्सटेशन एज्यूकेशन, वॉल्यूम 11।
4. विभिन्न पत्र पत्रिकाऐं एवं समाचार पत्र।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 127-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Internet of Things (IoT) and Security Along with Private Privacy

Mr. Ram Kumar Vyas
Research Scholar, Dept. of Computer Science, Tantia University, Srigangangar (Raj.)

Abstract :-

Internet, It is an enthusiastic and convertor invention. It's everyday transforming some new and fresh kind of hardware and software make unpreventable for each. The way of connecting that we observe today man to man and man to machine but IoT is managed a standard in which machine or device make available with sensors, actuators and method communicate with each other to provide a meaningful intention. In this paper we discussed IoT and Security Along with Private Privacy.

Keywords :- IOT, Edge Computing, Field Protocol, Sensor Device, Security.

Introduction :-

The Internet of Things (IoT) is the network of physical objects-hardware parts of computer, electrical instruments, houses, windows and other different embedded electronics parts, circuits, sensors and network communication that enable these parts to gather and replace data. The Internet of Things allows these parts to be sensed and restricted slightly across existing network area, creating opportunities for more direct mixing of the physical world into computer-based systems, and follow-on in better effectiveness and correctness.

Concept of IoT :-

The IoT describes the next generation of Internet, where the physical things could be accessed and acknowledged throughout the Internet. Depending on various technologies for the execution the definition of the IoT varies. However, the fundamental of IoT implies that object in an IoT can be identified individually in the effective representations. Within an IoT, all things are able to replace data and if needed, process data according to predefined schemes.

This rise in connected objects will inevitably lead to a rise in vulnerabilities; there will be more ways for systems to become compromised. "IoT technology will be a challenge to social, economic and legal norms. Specifically IoT technologies raise a variety of privacy and safety concerns" (Thierer 2015) IoT is in its infancy, and the true security and privacy risks have yet to be fully discovered and mitigated.

The Edge Things :-

In the edge side the things could be sensors, actuators, devices and a important thing called gateway. The vital function this doorway is to set up infrastructure between things and cloud services and also deal with the actions among things. The term edge come from frame computing where data are processed at the outside edge of the network as close to originate data as possible. The edge can be smart city, smart building, a manufacturing floor energy gird, oil rig, planes, trains or automobiles. Field Protocols: As Sensors, actuators and devices are present at the frame, they must communicate with each other and also with Gateway. These types of communication are based on field protocols, the trendiest protocols are: Bluetooth, Zigbee, Wif-Fi, NFC.

Sensor Device :-

A sensor is a device that detects and responds to some type of input from the physical environment. The input can be light, heat, motion, moisture, pressure or any number of other environmental phenomena. Sensors play an important role in creating solutions using IoT. These devices detect external information, replacing it with a signal that humans and machines can distinguish.

1. Temperature Sensors :-

Temperature sensors measure the amount of heat energy in a source, allowing them to detect temperature changes and convert these changes to data. Machinery used in manufacturing often requires environmental and device temperatures to be at specific levels.

2. Humidity Sensors :-

These types of sensors measure the amount of water vapor in the atmosphere of air or other gases. Humidity sensors are commonly found in heating, vents and air conditioning (HVAC) systems in both industrial and residential domains.

3. Pressure Sensors :-

A pressure sensor senses changes in gases and liquids. When the pressure change, the sensor detects these changes, and communicates them to connected systems.

4. Proximity Sensors :-

Proximity sensors are used for non-contact detection of objects near the sensor. These types of sensors often emit electromagnetic fields or beams of radiation such as infrared.

5. Level Sensors :-

Level sensors are used to detect the level of substances including liquids, powders and granular materials. Many industries including oil manufacturing, water treatment and beverage and food manufacturing factories use level sensors.

6. Accelerometers :-

Accelerometers detect an object's acceleration i.e. the rate of change of the object's velocity with respect to time. Accelerometers can also detect changes to gravity.

7. Gyroscope :-

Gyroscope sensors measure the angular rate or velocity, often defined as a measurement of speed and rotation around an axis.

8. Gas Sensors :-

These types of sensors monitor and detect changes in air quality, including the presence of toxic, combustible or hazardous gasses. Industries using gas sensors include mining, oil and gas, chemical research and manufacturing.

9. Infrared Sensors :-

These types of sensors sense characteristics in their surroundings by either emitting or detecting infrared radiation. They can also measure the heat emitted by objects. Infrared sensors are used in a variety of different IoT projects including healthcare as they simplify the monitoring of blood flow and blood pressure. Televisions use infrared sensors to interpret the signals sent from a remote control. Another interesting application is that of art historians using infrared sensors to see hidden layers in paintings to help determine whether a work of art is original or fake or has been altered by a restoration process.

10. Optical Sensors :-

Optical sensors convert rays of light into electrical signals. There are many applications and use cases for optical sensors. In the auto industry, vehicles use optical sensors to recognize signs, obstacles, and other things that a driver would notice when driving or parking. Optical sensors play a big role in the development of driverless cars. Optical sensors are very common in smart phones.

Security :-

The Technologies are rising quickly and so are the machines. This enlargement in the technology leads to Personal and Privacy issues. The smart devices will communicate with each other and switch data in a network. If any device gets despoiled then the whole infrastructure is at hazard. For example, if a machine is hacked, the production can be at stake along with the crucial data involved. Some main security concerns are :

- **Reliability of Data :-** The accuracy of the data transmitted between two nodes is an important issue. Hence, The accuracy of the data should be maintained. For example in a industrialized firm, if the hacker gives instruction for the production to halt then it is a very serious issue.
- **Secrecy of Data :** The data that is transmitted between two nodes should be no access to the data apart from the sender and receiver. For example, if the infrastructure data is hacked, then there can be destruction to the roads and bridges, moreover the security can be on risk.
- **Authenticity of Data :** The process of authentication assures that the data received is original and can be trusted. For example in the medical and health care system, the patient's parameters are sent across to different medical centers. If this data is manipulated by a hacker and then received, the treatment of the patient can be on risk.

- **Accessibility of Data :** Accessibility of data to the users is always a major concern of IoT. If the user is not able to right to use the data, then it is a big issue. It should be rectifying as soon as possible.

Conclusion :-

IoT has emerged as significant technology. The Data that is transmitted from sensors or RFID tags may carry sensitive information which must be protected from unauthorized access. The IoT communication between two nodes is not secure and the physical security of IoT devices should not be compromised. To achieve secure communication, IoT must include services such as encryption, end to en environments and access control for real time and critical infrastructure protection. It is challenging in cybercrime to stay ahead of the attacker. In future, we can expect more security for smart devices & the privacy criteria of IoT communication will increase which will allow the users to automated tasks conveniently using this technology.

References :-

1. Bahekmat, M., Yaghmaee,M.H., Yazdi, A.S., & Sadeghi, S.(212). A Novel Algorithm for Detecting Sinkhole Attacks in WSNs IJCTE, 4(3), 418-421.
2. Charith Perera, Chi Harold Liu, Srimal Jayawardena-The Emerging Internet of Things market place From an Indus Prespective: A Survery" IEEE transactions on emerging topics in computing, 31 Jan 2015
3. Edge computing-http://searchdatacenter.techtarget.com/definition/edge-computing
4. Douceur, J.R.(2002). The Sybil Attack Peer-to-Peer Systems, 251-260.
5. Sklavos, N., & Aarwal, V. (2008) RFID Security, From RFID to the Next-Generation Pervsive Networked System, 107-125.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 131-135

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Legal Aspects of Environmental Protection Act.

Mr. Narendra Sharma

Assist Prof. Political Science, Binani Kanya Mahavidhyalaya, Bikaner.

The legal environment includes the laws passed by the government as well as the decisions rendered by the various commission and agencies at every level of the government. It's important that every business must function according to the law of the area in which it wishes to operate.

The legal environment includes various legislations passed by the government administrative orders issued by government authorities, court judgments as well as the decisions rendered by various commission and agencies at every level of the government center, state or Local level. According to the Environmental laws, the environmental protection Agency (EPA) the comprehensive laws regulated emission from both mobile and stationery sources and allowed the agency to create National Ambient Air Quality standards.

The Legal Aspects relating to Environmental protection in India :-

Environmental laws is a complex and interlocking body of treaties, conventions, statutes, regulations and common law that very broadly operate to regulate the interaction of humanity and the rest of the bio physical or natural environment, towards the purpose of reducing the impacts of human activity both on the natural environment and on humanity itself Environment protection Act may be divided into two major subject 1. Pollution control and remediation 2. Resources conservation and management laws dealing with pollution are often media limited that is pertain only to a single environmental medium, such as air, water, soil etc. and control both emissions of pollutants into the medium, as well as liability for exceeding permitted emission and Responsibility for cleanup-laws regarding resources conservation and management generally focus on a single resources that is natural resources such as forests, mineral deposits or animal species, or more intangible resources such as especially scenic areas or sites of high archaeological value and provide guidelines for and limitations on the conservation, disturbance and use of those resources.

These areas are not mutually exclusive for example, laws governing water pollution in lakes and rivers may also conserve the recreational value of such water bodies furthermore, may laws that are not exclusively environmental hine the less include significant environmental components and

integrate environmental policy decisions. Municipal state and national laws regarding development land use and infrastructure are examples. Environmental law draws from and is influenced by principles of environmentalism, including ecology, conservation stewardship, responsibility, and sustainability. Pollution control laws generally intended with varying degrees of emphasis to protect and preserve both the natural environment and human health. Resource conservation and management laws generally balance. The benefits of preservation and economics exploitation of resources from an economic perspective environmental laws may be understood as concerned with the prevention of present and future externalities and preservation of common resources from individual exhaustion. The limitations and expenses that such laws may impose on commerce and the often unquantifiable benefit of environmental protection, have generated and continue to generate significant controversy.

Air (prevention and control of pollution Act, 1981 :-

An Act to provide for the prevention, control and abatement of air pollution for the establishment, with a view to carrying out the aforesaid purposes of boards for conferring on and assigning to such boards powers and functions relating there to and for matters connected there with. Decisions were taken at the united nations conference on the Human environment held at Stockholm in June 1972, in which India participated to take appropriate steps for the preservation of the natural resources of the earth which among other things includes the preservation of the quality of air and control of air pollution. Therefore it is considered necessary to implement the decisions a fore said insofar as they relate to the preservation of the quality of air and control of air pollution.

Penalties for Violation of Various provisions the Air Act 1981 :-

Failure to comply with the provisions of section 21 or section 22 or with the directions issued under section 31-A whoever fails to comply with the provisions of section 21 or section 22 or directions issue under section 31-A shall in respect of each such failure, be punishable with imprisonment for a term which shall not be less than one year and six months but which may extent to six years and with fine.

Preventions, control and abatement of Envornmental Pollution :-

Under section 7:- No person carrying on any industry operation or process shall discharge or emit or permit to be emitted any environmental pollutants in excess of such standards as may be prescribed.

Under section-8 :- No person shall handle or cause to be handled any hazarders substance except in accordance with such procedure and after complying with such safeguards as may be prescribed.

Under section-9 :- Where the discharge of any environment pollutant in excess of the prescribed standards occurs or is apprehended to occur due to any accident or other unforeseen act or event, the person responsible for such discharge and the person in charge of the place at which such discharge occurs or is apprehended to occur shall be bound to prevent or initiate the environmental pollution.

Under section-10 :- The Central Government and its officers have the power to enter and inspect any place for the purpose of performing any function entrusted under the legislation.

Under section-11 :- The Central Government and its officers have the power to take samples of air, water, soil or substances from factory or place, for analysis according to the laid down procedures in the act.

Under section-12 :- The Central Government has the power.

(a) Establish one or more environmental laboratories :-

(b) Recognize one or more laboratories or institutes as Environmental laboratories to carry out the functions entrusted to an environmental laboratory under this Act .

Under section-13 :- The Central Government may appoint or recognize Government Analysis for the purpose of analysis of samples of air, water, soil or other substance.

Under section-14 :- Report signed by a Government analyst may be used as evidence of the facts stated therein in any proceeding under the legislation.

Water (prevention and control of pollution) Act 1974 :-

Pollution means such contamination of water such alteration of the physical, chemical or biological properties of water or such discharge of any sewage or trade effluent or of any other liquid, gaseous or solid substance into water weather directly or indirectly as may or is likely to I create a nuisance or render such water harmful or injurious to public health or safety or to domestic commercial, industrial, agricultural or other legitimate uses or to the life and health of animals or plants or of aquatic organizers.

Constitution of Central pollution Control Board :-

A full time chairman, have special knowledge or practical experience in respect of matters relating to environmental protection or a person having knowledge and experience in administering institutions dealing with the matters afore said to be nominated by the Central Government.

Constitution of State pollution Control board :-

According to section 4 the state pollution Control Board may be constituted having same constitution as the Central pollution Control Board.

Joint pollution Control Board :-

According to section 14 of the act under agreement between two or more contiguous states, Joint pollution Control Board may be constituted for those states by Central or state government.

Functions of pollution Control Board :-

1. Advising the government on any matter concerning the prevention and control of water pollution.
2. Co-coordinating the activities of the state Boards and resolve disputes among them.
3. Providing technical assistances and guidance to the state Board carry out and sponsor investigations and research relating to problems of water pollution and prevention, Control or abatement of water pollution.

Wild life protection Act 1972 :-

Hunting with its grammatical variations and cognate expression includes.

a) Capturing, killing, poisoning, sharing and trapping of any wild animal and every attempt to do so.
b) Driving any wild animal for any of the purposes specified in sub clause.
c) Injuring or destroying or taking any part of the body of any such animal or, in the case of wild birds or reptiles damaging the eggs of such birds or reptiles or disturbing the eggs or nests of such birds of reptiles.

The Central Government may for the purposes of this Act appoint :-

a) A Director of Wild life preservation.
b) Assistant Directors of Wild life preservation.
c) Other officers and employees as may be necessary.
d) The state government may for the purposes of this Act appoint A Chief wild life warden.

Under section-18 :- The government may, by notification declare its intention to constitute any area comprised with in any reserve forest or the territorial waters as a sanctuary.

Under section-27 :- A person who has been permitted by the chief wild life warden or the authorized officers to reside within the limits of the sanctuary.

Under section-35 :- If the state government feels that an area of adequate ecological, faunal, floral, geomorphological or Zoological association or importance, needed to be constituted as National part for the purpose of protecting or developing wild life therein or its environment.

Forest conservation Act 1980 :-

An Act provide for the conservation of forest and for matters connected there with or ancillary or incidental there to It extends to the whole of India except the state of Jammu and Kashmir. It shall be deemed to have come into force on the 25th day of Oct. 1980.

Reference :-

1. Environmental protection Act 1974.
2. Air prevention and control Act 1981.
3. Water prevention and control Act 1974
4. Wild life protection Act 1972.
5. Forest conservation Act 1980.
6. Environmental protection Act 1986.
7. Pollution control Report 2006.
8. Water harvesting and Projection of purifying policies 2009.
9. UNDP Report 2017, 2018, 2019.

Narendra Sharma s/o Mahesh Kumar, Mundhara Sewgo Ka Chowk, Bikaner 334001,
Mail ID - sharmans4741@gmail.com
Mobile No. 7597743312, 9358595346

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 136-140

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में सांस्कृतिक वैविध्य

भूपेन्द्र कुमार सिंह, शोधछात्र
डा० निर्मला जोशी (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग),
S.P.S. Govt. P.G. College, Rudrapur (U.S. Nagar), Uttarakhand.

सांस्कृतिक विविधता मूल रूप से समाज के विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों को एक साथ जोड़ती है। उदाहरण के लिए यदि चार अलग–अलग धार्मिक और स्थान पृष्ठभूमि के चार परिवार एक समुदाय में एक साथ रहते हैं तो उनके पास साझा करने के लिए कई चीजें हो सकती है जैसे कि भोजन, पोशाक, प्रार्थना, जीवन शैली आदि।

मारीशस जैसे लघु द्वीप में विभिन्न धर्मावलम्बी निवास करते हैं जैसे हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, इसाई, कंफ्यूशियस। मारीशस की राजधानी पोर्टलुई में भ्रमण करते हुए बौद्ध पैगोडा हिंदू मंदिर, चर्च और मस्जिद दिखलाई पड़ते हैं। इनको देखने से धार्मिक वैविध्य स्पष्ट होता है। भारत की तरह मारीशस भी बहुधर्मीय, बहुजातीय, बहुभाषी देश है और वह भी भारत की तरह विविधता में एकता का उपासक है। मारीशस के विभिन्न धर्मावलम्बियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :–

ईसाई धर्म के लोगों ने सर्वप्रथम मारीशस की धरती पर कदम रखा। मारीशस में डचों ने, फ्रांसीसियों ने तथा अंग्रेजों ने शासन किया। अपने सत्ता विस्तार के लिए उन्होने उपनिवेशवासियों के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने का प्रयास किया। ईसाई मतावलम्बी जिसे मजदूर बनाकर मारीशस द्वीप पर लाते थे उन्हे सामूहिक रूप से कैथोलिक बना लेते थे।

मारीशस भी भारत की तरह बहुधर्मीय, बहुजातीय और बहुभाषीय देश है और वह भी भारत की तरह विविधता में एकता का उपासक है। मारीशस में हिंदू समाज का बाहुल्य है। मारीशस में हिंदुत्व की दो प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती है। सनातन धर्म हिंदू, आर्य समाजी हिंदू। इन दोनों में प्रवृत्तियों में बहुत सी समानतायें एवं अंतर भी हैं, सनातनी धर्म विभिन्न भाषाई समूहों से समृद्ध है। ये लोग भारत के विविध भाषा बोलने वाले क्षेत्रों से आकर मारीशस में बसे हैं। सबसे अधिक संख्या हिंदूभाषी लोगों की है। इनके अतिरिक्त मराठी, तमिल, तेलगु, गुजराती, सिंधी इत्यादि भाषी लोग मारीशस में रहते हैं।

मारीशस में दूसरी मुख्य धारा आर्य समाज की है जिसने बीसवीं शताब्दी के मध्य में मारीशस की धरती पर अपने पैर जमाए। सनातनी हिंदू चालीस संस्कार को मानते है जबकि आर्य समाज के लोग सोलह संस्कारों में विश्वास करते हैं।

मारीशस में भारत की तरह हिंदुओं के प्रमुख पर्व होली, दीपावली, महाशिवरात्रि, गंगा स्नान, रक्षाबंधन इत्यादि पर्वों को मनाया जाता है। जिसमें महाशिवरात्रि का विशेष महत्व है। भारत की तरह यहां भी कांवर यात्रा

निकाली जाती है। तदुपरांत परी तालाब में स्नान करके तालाब के जल से भगवान शिव का अभिषेक किया जाता है।

इस्लाम मारीशस का तीसरा प्रमुख धर्म है। मारीशस में इस्लामी समुदाय में भी विविधता है। यहां पर इस्लाम की कई धारायें हैं – जैसे सुन्नी, अहमदिया इत्यादि। मारीशस में इस्लामी चिंतन के स्कूल हैं जिनकी अलग–अलग विचारधारा है। कट्टर मुसलमान इस्लाम के पांच नियमों के प्रति समर्पित रहते हैं। यहां के अधिकांश मुसलमान बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से मारीशस पहुंचे थे।

मारीशस का चौथा धर्म बौद्ध धर्म है। मारीशस में बौद्ध मंदिर और पैगोडा दिखलाई पड़ते हैं। मारीशस में तीन मई को बुद्ध का जन्मदिन मनाया जाता है। मारीशस में चीनी लोग भी रहते हैं। ये लोग भी बौद्ध मतावलम्बी हैं। इनमें से कुछ लोग कंफ्यूशियस मत के भी अनुयायी हैं।

मारीशस में सभी धर्मों के पर्वों को हर्षोल्लास से मनाया जाता है। कई धर्मों का संगम होने के कारण मारीशस के पर्वों में विविधता है। गंगा स्नान मारीशस के हिंदू, समुद्र के किनारे जाकर देवी गंगा की पूजा करते हैं। गंगा स्नान के पीछे मारीशस वासियों की मान्यता है कि इससे पापों का नाश होता है तथा दैवीय पवित्रता की प्राप्ति होती है।

इदुल जुहा मुसलमानों का प्रमुख पर्व है। मुसलमानों की मान्यता है कि प्रत्येक अच्छे मुसलमान को एक बार हज के लिए मक्का अवश्य जाना चाहिये। चंद्रपर्व के अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति केक खाता है। सबसे अधिक लोकप्रिय केक मून केक है जो कि चावल से बनता है। होली हिंदी भाषी सनातनी हिंदुओं द्वारा मनाया जाता है। यह रंगो का त्यौहार मारीशस में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। गणेश चतुर्थी मराठियों का प्रमुख पर्व है। दीपावली प्रकाश का पर्व है। यह अधर्म के ऊपर धर्म की विजय का पर्व है। अंधकार पर प्रकाश की विजय का पर्व है। यह कार्तिक मास के अमावस्या को मनाया जाता है।

सनातनी हिंदू में तमिल भाषी लोग कावदी पर्व को मनाते हैं। भक्त लोग अपने कंधों पर कावदी लेकर चलते हैं जो कि धनुष के आकार का होता है। मारीशस हिंदू मतावलम्बी रक्षाबंधन जो कि भाई–बहन के प्रेम का त्यौहार को है। हिंदू बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं।

मारीशस में कई भाषाएं बोली जाती है जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, भोजपुरी, क्रियोल, चीनी, तमिल, गुजराती और मराठी आदि। क्रियोल मारीशस की सबसे प्रचलित भाषा है। राजेन्द्र अवस्थी के अनुसार 'जो सर्वसाधारण की बोली है वह वास्तव में क्रियोली है। क्रियोली यानि फ्रेंच और भोजपुरी की खिचड़ी।'[1] मारीशस की भाषा में भी विविधता है। अंग्रेजी यहां की राज्य भाषा है। यह शिक्षा का माध्यम भी है लेकिन भोजपुरी यहां के हिंदी की जननी है। अब भी मारीशस में अधिकांश लोग भोजपुरी बोलते हैं।

मारीशस में फ्रेंच अभिजात वर्ग की भाषा है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए यह एक अनिवार्य भाषा है। मारीशस में विभिन्न प्रकार की भाषा बोली जाती है। मारीशस के प्रत्येक गांव में हिंदू तुलसीकृत रामायण का पाठ करते हैं। मारीशस के हिंदू पुरोहित संस्कृत का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। यहां के वयस्क लोगों का पहनावा भी भारत से मिलता है। यहां के लोग सफेद धोती, गांधी टोपी पहनते हैं और बच्चे हाफ पैंट पहन सकते हैं।

अभिमन्यु अनत जी ने मारीशसीय समाज में होने वाले विवाह का भी उल्लेख अपने उपन्यासों में किया है। 'लाल पसीना' उपन्यास में अनत जी ने सोमा एवं संतू के प्रेम विवाह का वर्णन किया है। अनत जी ने अपने

उपन्यासों में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों द्वारा निभाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के रीति रिवाजों संस्कारों एवं परम्पराओं का उल्लेख किया है। अनत जी ने हिंदू और मुसलमान त्यौहारों को एक साथ मनाये जाने की परम्परा का वर्णन भी किया है। अभिमन्यु अनत ने अपने अधिकांश उपन्यासों में मारीशस की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाया है। अनत जी ने अपने उपन्यास 'लाल पसीना– में किसन के माध्यम से विभिन्न धर्मों से सम्बन्ध रखने वाले सभी मजदूरों को एकजुट करने का प्रयास किया है। इन्होने अपने उपन्यास 'गांधीजी बोले थे', 'और पसीना बहता रहा', 'एक उम्मीद और', 'मेरा निर्णय', 'अस्ति–अस्तु', 'हम प्रवासी' आदि उपन्यासों में सांस्कृतिक विविधता को अभिव्यक्त किया है। भारत की ही तरह मारीशस में भी बच्चे के जन्म के अवसर पर बस्ती के लोगो द्वारा ढोलक आदि वाद्य यंत्र बजाये जाने और ललना गीत गाये जाने की परम्परा विद्यमान है। इस अवसर पर पंवरियों को बुलाया जाता है और पड़ौस की औरतें इकट्ठा होकर सोहर गाती हैं। 'लाल पसीना' उपन्यास में किसन के पुत्र मदन के जन्म के माध्यम से सांस्कृतिक विविधता को दर्शाया गया है। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में हरि की बहन देवी की शादी के समय हरि आर्थिक तंगी से जूझ रहा था। लेकिन बस्ती के लोगो के सहयोग से हरि अपनी बहन की शादी करने में सफल हो जाता है। गांव वालों की इस परोपकारी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए हरि परकाश से कहता है– 'देवी का व्याह लगता है मैं या मेरी मां नही कर रहे है बल्कि गांव वाले मिलकर कर रहे हैं ... । गांव का प्रायः यह आदमी इन पांच सात दिनों में कुछ न कुछ हमारे घर जरूर पहुंचा गया है।'[2]

मारीशस की संस्कृति विविधताओं से भरी हुई है और विभिन्न रीति रिवाजों, विचारों और सामाजिक मान्यताओं से युक्त है। मारीशस में विभिन्न संस्कृतियों के लोग और समुदाय है जो अपने भोजन, कपड़ों, भाषाओं और परम्पराओं में भिन्न है। भारत से सम्बंद्ध होने के कारण मारीशस की संस्कृति प्राचीनतम संस्कृतियों में अपना स्थान बनाती है। मारीशस के हिंदी साहित्य में वहॉ के विभिन्न समुदायों, परम्पराओं, रीति रिवाजों और धर्मों का मेल स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भारत से मारीशस जाने वाले भारतीय गिरमिटिया मजदूर अपने साथ भारतीय संस्कृति और परम्परा को भी मारीशस में लेकर गये थे। मारीशस में भारतीय दर्शन, कला, संगीत आदि देखी जा सकती है। मारीशस बहु–सांस्कृतिक और बहु–पारम्परिक त्यौहारों का एक वैश्विक केंद्र है। यहां पर हर धर्म के त्यौहार मनाये जाते हैं जैसे– दशहरा, दीपावली, होली, महाशिवरात्रि, क्रिसमस, रमजान, ईद, गुरूनानक जयंती आदि। यहां पर हर एक त्यौहार का अपना–अपना सांस्कृतिक और राष्ट्रीय महत्व है और प्रत्येक त्यौहर अलग–अलग रीति रिवाजों और परम्पाराओं के साथ मनाए जाते हैं। अभिमन्यु अनत ने अपने अनेक उपन्यासों में मारीशस की सांस्कृतिक एकता और विविधता को दिखाया है।

मारीशस की एकता का सबसे सुदृढ स्तम्भ इसकी संस्कृति है। रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा और त्यौहारों उत्सवों के विविधता के पीछे सांस्कृतिक समरसता का तत्व परिलक्षित होता है। अभिमन्यु अनत जी के उपन्यासों में सामाजिक नैतिकता और सदाचार के प्रति समान आस्था के दर्शन होते हैं। अनत जी ने एक साक्षात्कार के दौरान स्वयं स्वीकार किया था कि मानव जीवन के लिए शुद्ध आचरण, शिष्टाचार, नैतिकता और जीवन दर्शन की अविचल एक रूपता देश की सांस्कृतिक एकता का सुदृढ आधार है। भाषाओं के बीच पारस्परिक सम्बंध व आदान–प्रदान साहित्य के मूल तत्वों, स्थाई मूल्यों और ललित कलाओं की मौलिक सृजनशील प्रेरणाएं आदि हमारी सांस्कृतिक एकता की परिचायक है। यही 'सत्यम्', 'शिवम्' और 'सुंदरम्' की अभिव्यक्ति का माध्यम है। मारीशस की गहरी और आधारभूत एकता का कारण यहां की सांस्कृतिक विविधता ही है। यहां के हिंदी

साहित्य में धरती, नदियों, पहाड़ों, हरे–भरे खेतों, लोकगीतो, लोक–रीतियों और जीवन–दर्शन के प्रति लोगो में भावनात्मक लगाव है और अपनापन है। अनत जी की साहित्यिक पृष्ठभूमि भारत की मिट्टी से जुड़ी हुई है। अनत जी के उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की विविधता सर्वत्र देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति में धान के पौधे जैसी जीजिविषा है जिसको यदि कहीं भी रोपा जाये तो अपनी सहस्त्र गुना शक्ति से पुष्पित और पल्लवित होता है। इतिहास गवाह है कि भारतीय संस्कृति को मिटाने के लिए हजारों प्रयास किये गये हैं, लेकिन वे निष्फल रहे हैं। मारीशस में भी भारतीय संस्कृति को मिटाने के अनेकों प्रयास किये गये लेकिन भारतवंशियों के अभूतपूर्व सांस्कृतिक प्रेम ने उसे अक्षुण्य बनाये रखा।

अभिमन्यु अनत के उपन्यासत्रयी 'लाल पसीना', 'गांधीजी बोले थे', 'और पसीना बहता रहा' में गोरे शासकों और कोठी मालिकों के द्वारा भारतीय मजदूरों के संस्कृतियों को नष्ट करने के लिए अनेकों प्रयास किये गये, लेकिन भारतीयों ने अपने अदम्य उत्साह और शिवसंकल्प के बल पर अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित बनाये रखा। मारीशस की संस्कृति भारत की संस्कृति के समान ही 'सर्वे भवंतु सुखिनः' और विश्वबंधुत्व के आदर्शों को लेकर चली है। अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'एक उम्मीद और' में विश्वबंधुत्व की भावना चरितार्थ हुई है। 'एक उम्मीद और' उपन्यास का एक उदाहरण विचारणीय है– 'प्रकृति अगर सृष्टि की शुरूआत से मानव की सेवा करती रही है तो हम उसे उजाड़ने में क्यों लगे हुए हैं? रही बात आदमी–आदमी के बीच के अंतर और नफरत तो जैसा कि भैया बता रहा था यह तो मजहबी पागलपन हुआ। जिस तरह एक डॉक्टर के लिए सभी रोगी, रोगी होते हैं। आनंद भैया का शुरू ही में यह कहना कितना जायज था कि डाक्टर के लिए मरीज न तो हिंदू होता है न मुसलमान और न ही ईसाई। तो फिर आदमी धर्म और राजनीति के नाम पर क्यों लड़ाते रहते हैं?'[3]

जिस देश में जितने अधिक धर्म, समुदाय और देश के लोग होते हैं उस देश में सांस्कृतिक विविधता उतनी ही अधिक पायी जाती है। मारीशस में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, चीनी, क्रियोली आदि निवास करते हैं इसलिए यहां सांस्कृतिक विविधता अधिक पायी जाती है। अनत जी ने 'कुहासे का दायरा', 'चौथा प्राणी', 'मुड़िया पहाड़ बोल उठा', 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' आदि उपन्यासों में सांस्कृतिक विविधता को दिखाया है। 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' उपन्यास का एक कथन दृष्टव्य है – 'इस देश की धरती को स्वर्ग बना लेने वाला हर व्यक्ति किसी दूसरे देश से यहां पहुंचा है। कोई भारत से आया है, कोई चीन से कोई अफ्रीका से, कोई फ्रांस से। सबकी संस्कृति को फूलने–फलने को समान अधिकार होना चाहिए किंतु यहां तो एक संस्कृति दूसरी संस्कृति पर हावी है। मैं भारतीय वंशज हूँ। अपनी संस्कृति के साथ अंग्रेजी, फ्रेंच साहित्य, उनके रहन–सहन को भी मैने अपनाया है, लेकिन उस दूसरी ओर से हमारे संस्कृति साम्राज्यवाद में हम जी रहे हैं।'[4] अनत जी ने मारीशस में व्याप्त सांस्कृतिक विविधता का वर्णन बहुत ही तर्कपूर्ण ढंग से किया है जिसमे उनको पूर्ण सफलता मिली है।

आधार ग्रंथ सूची :–

1. प्रह्लाद रामशरण, मॉरिशस का इतिहास, पृष्ठ सं०– 41
2. अभिमन्यु अनत, और पसीना बहता रहा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं०– 234–235
3. अभिमन्यु अनत, एक उम्मीद और, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं०– 122

4. अभिमन्यु अनत, मार्क ट्वेन का स्वर्ग, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं०– 86

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. रामशरण प्रह्लाद, भारतीय वाङ्मय में मारीशस की संस्कृति, आत्माराम एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1964
2. श्रीधर प्रदीप, प्रवासी हिंदी साहित्यरू दशा एवं दिशा, लक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
3. चक्रवात (अभिमन्यु अनत विशेषांक), संपादक–निशांत केतु, दिल्ली, संयुक्तांकः 36–38 अप्रैल 2016– दिसंबर 2016
4. समकालीन भारतीय साहित्य (अभिमन्यु अनत विशेषांक), संपादक– ब्रजेन्द्र कुमार त्रिपाठी, दिल्ली, जनवरी–फरवरी 2014
5. बहुवचन (प्रवासी साहित्य विशेषांक), संपादक–अशोक मिश्रा, वर्धा, जनवरी–मार्च 2018
6. प्रेरणा (अभिमन्यु अनत विशेषांक), संपादक–अरूण तिवारी, भोपाल, अप्रैल–जून 2013
7. आजकल (प्रवासी साहित्य विशेषांक), संपादक–फरहत परवीन, दिल्ली, जनवरी 2016
8. गगनांचल (दशवां विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक), संपादक–अशोक चक्रधर, दिल्ली, जुलाई–अक्टूबर 2015
9. आलोचना, संपादक–अपूर्वानंद, प्रधान संपादक–नामवर सिंह, दिल्ली, जनवरी–मार्च 2012
10. स्मारिका (दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक), सम्पादक–मनोहर पुरी, दिल्ली, 10–12 सितंबर 2015 तिवारी श्यामधर, अभिमन्यु अनतः व्यक्तित्व और कृतित्व, अभिनव प्रकाशन, आगरा, 1984
11. निर्मम हेमराज, मारीशस के हिंदी उपन्यासों का मूल्यांकन, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1992
12. गंभीर सुरेन्द्र, प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017
13. तिवारी श्यामधर, मारीशस में हिंदी साहित्य क उद्भव और विकास, विनसर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1997
14. तिवारी श्यामधर, अभिमन्यु अनतः व्यक्तित्व और कृतित्व, अभिनव प्रकाशन, आगरा, 1984
15. निर्मम हेमराज, मारीशस के हिंदी उपन्यासों का मूल्यांकन, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1992
16. गंभीर सुरेन्द्र, प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017
17. तिवारी श्यामधर, मारीशस में हिंदी साहित्य क उद्भव और विकास, विनसर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1997

मो० +91–7651817742

Email id - singhbhupatrajput566@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 141-144

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समय के साथ बदलती पत्रकारिता

डॉ. अशोक कुमार मीणा

अतिथि व्याख्याता, हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

सारांश :–

भारतीय पत्रकारिता के जन्म से लेकर आज तक पत्रकारिता में कई नये आयामों का प्रादुर्भाव हुआ, जो देशकाल, वातावरण एवं सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की देन रही हैं। जेम्स ऑकस्टस हिक्की ने जब समाचार पत्र को प्रकाशित किया था, उस समय से लेकर आज तक विषय–वस्तु, भाषा, शीर्षक, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी दृष्टि से समाचार पत्रों के प्रकाशन एवं विषय–सामग्री में काफी परिवर्तन आया है और दिन–प्रतिदिन इसमें नये प्रतिमान जुड़ते जा रहे हैं। मसलन, पहले समाचार मूलरूप से साहित्यिक होते थे उसकी विषय सामग्री साहित्यिक अर्थात् कहानी, उपन्यास आदि से सम्बन्धित रहती थी, लेकिन आज वह बात नहीं हैं।

शब्द संकेत :– बदलते प्रतिमान, गांव–देहात, साहित्यिक, समाचार पत्र, अन्तरराष्ट्रीय समाचार, मीडिया प्रतिष्ठान, औद्योगीकरण।

प्रस्तावना :–

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भारत में समाचार पत्रों का काफी विकास हुआ, क्योंकि उस समय पत्रकारों एवं समाचार पत्रों का एक मात्र उद्देश्य अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों का विरोध करना और जनता को उनके प्रति विरोध करने हेतु जागरूक करना था, ताकि अंग्रेजों की दासता से देश को मुक्ति मिल सके। इसलिए समाचार पत्रों में कांग्रेस एवं अन्य राष्ट्रभक्तों की गतिविधियों पर आधारित समाचारों को महत्व मिलता था तथा राष्ट्रहित की भावना पर आधारित समाचार ही छपते थे। लेकिन वर्तमान समय में समाचार पत्रों के विषयवस्तु एवं कलेवर बदल गए और गाँधीयुग आते–आते इस तरह के असंख्य समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। स्वयं गाँधी जी ने ही 'नवजीवन', 'यंगइण्डिया' एवं 'हरिजन' नामक पत्रों का प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त, उस समय के समाचार पत्रों के संदर्भ में एक बात और गौर करने वाली है, कि उस समय राष्ट्रीय भावना जागृत करने के साथ–साथ समाचार पत्रों द्वारा समाज हित एवं लोकहित की समस्याओं को ही विशेष रूप से प्रकाशित किया जाता था एवं उसका समाधान खोजा जाता था, क्योंकि आदर्श समाज एवं आदर्श राष्ट्र बनाना ही उनका एक मात्र सपना था। मसलन 'हरिजन' नामक पत्र से गाँधीजी ने भारतीय समाज में व्याप्त भयावह सामाजिक समस्या 'अस्पृश्यता' को दूर करना चाहते थे। इसी तरह बालगंगाधर तिलक ने अपने समाचार पत्र 'केसरी' के माध्यम से लाखों लोगों को जोडने का कार्य किया। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् पत्रकारिता एवं पत्रकारों का मूल उद्देश्य बदल गया और वे

पाश्चात्य देशों के समाचार पत्रों की शैली, भाषा, प्रवृत्ति आदि की नकल करने लगे। परिणामस्वरूप समाचार पत्र के मालिकों द्वारा व्यावसायिक दृष्टि से सभी पाठकों के लिए उनकी रूचि के समाचार देना प्राथमिकता बन गया। फलस्वरूप, समाचार पत्रों का स्वरूप पूर्णतया बदल गया और उसमें राजनीति से लेकर, खेल, अपराध, आर्थिक एवं वाणिज्य जगत, स्थानीय, क्षेत्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समाचारों का प्रकाशन होने लगा और उसके लिए मालिकों द्वारा अखबारों में पृष्ठों का भी आवंटित कर दिया गया। इसलिए आज समाचार पत्रों में पाठकों के लिए विविध प्रकार के समाचार प्रकाशित होने लगे हैं।

सनसनीखेज न्यूज एवं पत्रकारिता :-

पत्रकारिता के बदलते प्रतिमान में यह तत्व विशेष एवं प्रमुख रूप से उभर कर सामने आया है। बाजार में अपनी पकड़ बनाये रखने तथा प्रसार संख्या के विस्तार के लिए पाठकों को आकर्षित करने के उद्देश्य से समाचार पत्रों ने पत्रकारिता की आचार संहिता को ताक पर रख कर इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। मैं यह नहीं कहता कि सभी समाचार पत्र इसके उदाहरण है, लेकिन छोटे एवं भाषायी समाचार पत्रों में यह विशेष रूप से देखने को मिलता है। परिणामस्वरूप पाठकों की नजरों में धीरे–धीरे समाचार पत्र अपनी विश्वसनीयता खोते चले जा रहे हैं। जो एक सभ्य एवं विकासशील समाज के लिए शुभ लक्षण नहीं है।

समाचार संस्थानों में विभिन्न विभागों का गठन :-

पहले समाचार पत्रों में प्रकाशक, स्वामी तथा सम्पादक आदि मात्र एक या दो व्यक्ति हुआ करते थे। जिन पर प्रकाशन, संपादन से लेकर वितरण तक के दायित्व हुआ करते थे। लेकिन जब समाचार पत्रों ने एक उद्योग का रूप ले लिया, तो यह कार्य एक या दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं रहा। इसे सही उद्योग का स्वरूप देने के लिए विभिन्न विभागों का गठन किया गया, जिससे सही मायने में उसका प्रबंधन कोवार्डिनेशन एवं नियंत्रण किया जा सके। अभी भी प्रायरू साप्ताहिक कुछ समाचार पत्रों अथवा लघु समाचार पत्रों में स्थिति प्रायरू कुछ ऐसी ही है, लेकिन बड़े समाचारपत्रों में अब ऐसी बात नहीं है, वहाँ विभिन्न प्रकार के विभागों का गठन एवं सही प्रबंधन देखने को मिलता है। समाचारपत्रों के प्रकाशन में जो प्रमुख विभाग कार्य करते हैं, वे हैं।

सम्पादकीय विभाग– जो समाचारों के सम्पादन एवं सम्पादकीय का कार्य देखते हैं।

वित्त विभाग– इस विभाग का कार्य वित्तीय व्यवस्थाओं को देखना तथा कर्मचारियों के वेतन आदि का भुगतान करना है।

प्रसार विभाग– इस विभाग के ऊपर प्रसार संख्या को बढ़ाने, उसका हिसाब आदि रखने तथा समय से विभिन्न स्थानों पर समाचार पत्र को पहुँचाने का दायित्व होता है।

विज्ञापन विभाग– यह विभाग विज्ञापन को प्राप्त करने, उसको प्रकाशित कराने तथा उसका रेट तय करने आदि का कार्य करता है।

कार्मिक एवं स्थापना विभाग– यह विभाग लोगों की नियुक्ति, सेवा शर्तों का निर्धारण, अवकाश ग्रहण करने आदि कार्यों का सम्पादन करता है।

मुद्रण विभाग– इस विभाग का कार्य समाचार पत्रों का सही समय से प्रकाशन कर प्रसार विभाग को देना है। क्योंकि सबसे पहले पाठक के हाथों में समाचार पत्र को पहुंचाना सभी समाचार पत्रों का परम दायित्व है। इससे न केवल समाचार पत्र के प्रसार में वृद्धि होती है, बल्कि उससे समाचार पत्र की लोकप्रियता भी बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त और भी कई बड़े—बड़े विभाग समाचार पत्रों में देखने को मिलते हैं।

व्यावसायिकता का प्रभाव :–

स्वतंत्रता के पूर्व पत्रकारिता एक मिशन थी। स्वतंत्रता संग्राम एवं आजादी के समय भी समाचार पत्रों का एक निश्चित उद्देश्य हुआ करता था। लेकिन उसके बाद सभी समाचार पत्र निजी मालिकों के हाथों में चले गये, जिनका उद्देश्य पैसा कमाना प्रमुख एवं समाज सेवा गौण हो गया। ऐसा करना उनके लिए बहुत हद तक अपरिहार्य हो गया था, क्योंकि समाचार पत्र का प्रकाशन एक खर्चीला व्यवसाय हो गया है। इसलिए उस खर्च को निकालना तथा लाभ प्राप्त करना उनका प्रमुख उद्देश्य हो गया है। क्योंकि, समाचार पत्र पहले एक या दो व्यक्ति भी निकाल सकते थे। उसका प्रसार क्षेत्र सीमित था, लेकिन अब यह एक उद्योग बन जाने के कारण काफी लोगों का व्यवसाय बन गया। अतरू इन सब के चलते पैसे के प्रति प्रकाशकों का झुकाव स्वाभाविक रूप से बढ़ गया है। इसीलिए, विज्ञापन आदि के प्रति समाचार मालिकों का झुकाव ज्यादा बढ़ गया है, जो स्वतंत्रता के पूर्व नहीं था। उस समय समाचार पत्र के प्रकाशक राष्ट्रभक्त एवं स्वतंत्रता सेनानी हुआ करते थे और देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने पर तुले रहते थे। लेकिन अब वह सोच नहीं है। यही प्रतिमान प्रायरू अब हमें सभी समाचार पत्रों में देखने को मिलते हैं।

सीटिजन या नागरिक पत्रकारिता :–

यह तत्व भी पत्रकारिता के एक नये प्रतिमान के रूप में उभर कर सामने आया है, जो एक सफल एवं स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक है। न्यू मीडिया या इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि को इसके लिए साधुवाद देना चाहिए, जिसने समाचारों के आदान—प्रदान को एक विशेष गति प्रदान की है। क्योंकि समाचार पत्रों की अपनी सीमाएँ हैं, वे हर जगह न तो अपने संवाददाताओं को रख सकते हैं, न ही ऐसा स्रोत है जिससे कि वे समाचारों को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए यह एक शुभ लक्षण है जो समाज और लोगों के लिए हितकारी है। लेकिन यह तभी तक हितकारी एवं लाभकारी है, जबकि स्रोत एवं समाचार की वस्तुनिष्ठता को जाँच—परख कर समाचारों का प्रकाशन किया जाय। असम एवं मेघालय के कई बहुप्रसारित समाचार पत्रों ने इस प्रयोग को कार्यान्वित किया और कई ऐसे समाचार प्रकाश में आये जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

विकासशील पत्रकारिता :–

यद्यपि भारत जैसे विकासशील एवं प्रगतिशील देश के लिए विकासशील पत्रकारिता एक संजीवनी का कार्य करेगी। लेकिन दुर्भाग्यवश द्वितीय प्रेस आयोग की संस्तुतियों के बावजूद निजी क्षेत्रों में होने के कारण बहुतायत समाचार पत्रों ने इसे कोई ज्यादा महत्व नहीं दिया। फिर भी कुछ समाचार पत्रों ने विशेष रूप से इसके ऊपर ध्यान देकर विकास से सम्बन्धित समाचारों को प्रकाशित किया, जिसमें प्रमुख है 'भास्कर' 'राजस्थान पत्रिका', 'दी हिन्दुस्तान टाइम्स', 'हिन्दू' एवं अन्य भाषायी पत्र 'ईस्टर्न पनोरमा' 'शिलांग टाइम्स' आदि। यद्यपि इन समाचार पत्रों को एरेस्ट्रोकेट टाईप के समाचार पत्रों द्वारा व्यंग्य एवं आलोचना का भी सामना करना पड़ा और विकासात्मक समाचार पत्रों के प्रकाशन के लिए उन्हें 'गोबरगैस' नामक पत्र की संज्ञा से सम्बोधित किया गया। उन्हें यह पता नहीं कि इस तरह के समाचारों के प्रकाशन से देश एवं लोगों को कितना लाभ होगा, क्योंकि आज भी मूलतः भारत गाँवों में बसता है। दुर्भाग्यवश व्यावसायिकता के दौर में प्रायरू सभी समाचार पत्र विकासवादी पत्रकारिता को कम महत्व देते हैं, फिर भी 'हिन्दू', 'भास्कर' व 'राजस्थान पत्रिका' जैसे राष्ट्रीय

समाचार पत्रों ने इस प्रावृत्ति को बरकरार रखा है और उसी के साथ कुछ और भी समाचार पत्र हैं, जो समय–समय पर ऐसे समाचारों को विशेष स्थान देते हैं। लेकिन आज ऐसे समाचारों का प्रतिशत बहुत ही कम है। आज राजनीति, अपराध, खेल आदि समाचारों की ही समाचार पत्रों में बहुलता है।

निष्कर्ष :–

आज परिस्थितियां पूरी तरह से बदल गई है। मीडिया की महत्ता पूरे समाज के सामने हैं। अब मीडिया का उद्देश्य मिशन कम 'कमीशन' ज्यादा हो गया है। वर्तमान में समाचार पत्र पत्रिकाओं की भारी भीड़ हो गई है। हर दूसरे दिन में नया समाचार माध्यम खबरों के बाजार में नए तेवर और कलेवर के साथ ताल ठोक रहा है। अब समाचार पत्र पत्रिकाएं भी उद्योगों की तरह सरपट दौड़ने लगी हैं। अब नई परिस्थियां पनपी हैं। जहां पहले पत्रकारों का एक वर्ग ही संपादक, प्रकाशक व कर्ता–धर्ता होता था वहां अब मंजर बदल गया है। अब संचालक कोई अलग व्यक्ति है, संपादक कोई अलग। और पत्रकार वेतनभोगी कर्मचारी बन गया है। हालांकि अब मुद्रण की नई व्यवस्था भी हुई है और मीडिया में नई–नई तकनीकों को अपनाया गया है लेकिन प्रतिस्पर्धा के इस युग में मीडिया का अपना मूल उद्देश्य, अपना मूल मकसद कही पीछे छूटता सा नजर आ रहा है

संदर्भ :–

1. पाधी, एस. के. एण्ड साहू, आर. एन., दि प्रेस इन इंडिया प्रस्पेक्टिव इन डेवलप्मेंट एण्ड रेलिवेन्स, कनिष्का पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्युटर्स, नई दिल्ली, 1997।
2. तिवारी, अर्जुन, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010।
3. नीलिमा, बी. एन., ब्लागिंग एण्ड जर्नलिज्म–ट्रेन्ड इन ऑन लाइन न्यूज रिपोर्टिंग, कम्युनिकेशन टुडे, अक्टूबर–दिसम्बर, 2010, पृ. 1–9, जयपुर।
4. चटर्जी, मृणाल, इमजिंग ट्रेन्ड्स इन मीडिया एजुकेशन, कम्युनिकेशन टुडे, अप्रैल–जून, 2011, पृ. 12–19, जयपुर।
5. राजपुत, मधु, अन्डरस्टैडिंग नार्थ ईस्ट इंडिया, मानक पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2011।
6. सिंह, देवव्रत, सिटिजन जर्नलिज्मरू ए केस स्टडी ऑफ सीएनएन–आईबीएन, कम्युनिकेशन टुडे, अप्रैल–जून, 2011, पृ. 1–10, जयपुर।
7. गौतम, नवीन, सोसल मीडियारू न्यू टूल फॉर कम्युनिकेशन, कम्युनिकेशन टुडे, 2013, पृ. 103–108, जयपुर।
8. ओगरा, अशोक, दी रिपब्लिक ऑफ सोसल मीडिया, कम्युनिकेशन टुडे, 2013, पृ. 88–92, जयपुर।
9. उपाध्याय, किरन कुमार, पेड न्यूजरू समाचार विज्ञापन, कम्युनिकेशन टुडे, जनवरी–मार्च, 2014, पृ. 142–144, जयपुर।
10. खत्री, नीरज, लोकतंत्र और सोसल मीडियारू वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, कम्युनिकेशन टुडे, जनवरी–मार्च, 2014, पृ. 129–134, जयपुर।
11. रमा शंकर, जनमत निर्माण में मीडिया की भूमिकारू चुनाव के विशेष संदर्भ में, कम्युनिकेशन टुडे, जनवरी–मार्च, 2014, पृ. 149–152, जयपुर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 145-151

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकासशील एवं प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का देश भारत

डॉ. महेन्द्र कुमार खारड़िया
सहायक आचार्य – एबीएसटी, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज.)

एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था, एक और श्रम शक्ति और दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के कमावेश कम अनुपात में उपभोग द्वारा जाना जाता है। ऐसी परिस्थिति तकनीकों में विकास के अभाव तथा कुछ अवरोधक सामाजिक आर्थिक तत्वों के कारण होती है जो अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति शक्तियों को उभरने में रूकावट बनती है। यह बात उभर कर आयी कि जिन देशों में प्रति व्यक्ति की आय चौथाई से कम है उन देशों की अल्प विकसित देशों के वर्ग में रखे जाते हैं। हाल के वर्षों में इन अर्थव्यवस्थाओं को अल्प विकसित कहने के बजाय संयुक्त राष्ट्र के प्रकाशनों में इन्हें विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के रूप में सम्बोधित किया गया है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के शब्द से यह बोध होता है कि चाहे ये अर्थव्यवस्थाएं अल्पविकसित हैं। विश्व बैंक ने वर्ष 2009 में प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय आय के आधार पर विभिन्न देशों का वर्गीकरण किया तथा विकासशील देशों को तीन भागों में बांटा गया (1) निम्न आय वाले देश जिनमें 2009 में प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय आय 936 डालर या इससे कम है। (2) मध्यम आय वाले देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 936 डालर से 11455 डालर की अभिसीमा के बीच है और (3) उच्च आय वाले देशों में आर्थिक सहयोग एवं विकास संस्था के सदस्य एवं कुछ अन्य देश हैं जिनमें प्रति व्यक्ति उत्पाद 11456 डालर या इससे अधिक है।

मध्यम आय वाले देशों के दो उप–वर्ग हैं– निम्न मध्यम आय वाले देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 936 डालर से 3705 डालर के बीच है और उच्च मध्यम आय वाले देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 3706 डालर और 11455 डालर के बीच है।

शोध कार्य की उपादेयता एवं उद्देश्य :–

भारत देश विकासशील एवं प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का देश है तथा भारत 130 करोड़ की जनसंख्या का देश है। इसके लिए देश की अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करके लोगों का जीवन स्तर, प्रति व्यक्ति आय तथा पूंजीगत निर्माण आदि के विश्लेषण करने में मदद मिलेगी। इस शोध कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1. भारत की अर्थव्यवस्था का विश्लेषणाात्मक अध्ययन करना।
2. भारत की अर्थव्यवस्था के लक्षणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
3. अर्थव्यवस्था के वर्गीकरण के आधारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

साहित्यावलोकन :–

किसी भी शोध कार्य को सम्पादित करने से पूर्व उससे सम्बन्धित साहित्य व शोध कार्य का अवलोकन

करने से शोध कने में मदद मिलती है। भारत की अर्थव्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन किये जाने से पूर्व इस विषय पर पूर्व में किये गये शोध कार्य के अध्ययन से इस शोध कार्य को ज्यादा प्रभावी तथा लाभकारी बनाया जा सकता है।

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के उपाय सुझाने के उद्देश्य से नियुक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों के दल ने कहा है ''अल्पविकसित देश का अर्थ समझने में कुछ देशों के अर्थ में किया है, जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम है।

द इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1857–1947 में लेखक ने भारतीय आर्थिक विकास के बारे में विस्तृत रूप से बताया है कि विकास के मुख्य कृषि, खनन, उद्योग, बैंकिंग तथा व्यापार के साथ–साथ आधारभूत ढाचे पर ज्यादा बल दिया गया है।

संजीव वर्मा ने ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' में भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में विस्तृत अध्ययन किया है तथा अर्थव्यवस्था को बेहतर तरीके से समझने का प्रयास किया है। भारत सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए नये कदमों की विस्तृत चर्चा की गई है।

दत्त महाजन द्वारा लिखित भारतीय अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में विस्तृत विश्लेषण करते हुए बताया है कि पूर्व प्रचलित शब्दों के स्थान पर अल्पविकसित तथा विकसित शब्दों का प्रचलन शुरू हो गया है।

किसी भी देश को किस वर्ग की अर्थव्यवस्था में रखा जाये यह प्रति व्यक्ति आय के साथ–साथ जनसंख्या, क्रय शक्ति, विनिमय दर, आधारभूत ढांचागत विकास के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के आधार पर परखा जा सकता है।

विश्व बैंक विकास रिपोर्ट – 2009

वर्ग प्रतिव्यक्ति कुल आय।

निम्न आय वाले देश 936 डालर या इससे कम।

मध्यम आय वाले देश 936 डाल से 11455 डालर।

उच्च आय वाले देशों में आर्थिक सहयोग एवं विकास संस्था OECD एवं कुछ अन्य देश।

मध्यम आय वाले देश

1. निम्न मध्यम आय वाले देश – प्रति व्यक्ति आय 936 से 3705 डालर के बीच।
2. उच्च मध्यम आय वाले देश – जिनकी प्रति आय 3705 डालर से 11455 के बीच।

इस प्रकार विकासशील अर्थव्यवस्था के अधिकतर लक्षण भारत की अर्थव्यवस्था में दिखाई देते हैं इसका विश्लेषण निम्न प्रकार से है –

विकासशील एवं विकसित देशों के बारे में निम्न आधार पर भेद किया जा सकता है –

1. विकास मान अर्थव्यवस्थाओं के विकसित अर्थव्यवस्थाओं से भेद का आधार निम्न प्रति व्यक्ति आय है। यद्यपि प्रति वर्ष आय एकमात्र आधार नहीं है किन्तु फिर भी विभिन्न अर्थव्यस्था की तुलना के लिए अकेला यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।
2. विकासशील देशों की केन्द्रीय समस्या इनमें विद्यमान 'व्यापक निर्धनता है जो इनके विकास के निम्न स्तर का कारण भी है और परिणाम भी।

3. व्यापक निर्धनता गरीबों के निम्न सघन आधार का परिणाम है। निर्धनों के पास भूमि, पूंजी, ग्रह सम्पति आदि के रूप में कुल परिसम्पति का बहुत थोड़ा भाग होता है। निम्न सघन आधार के कारण गरीब लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा और प्रशिक्षण दिलाने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में परिसम्पति के वितरण में असमानता एक ओर आय के वितरण में असमानता प्रधान कारण है और दूसकी ओर अवसरों के असमान वितरण का।

4. विकासशील देशों में व्यापक निर्धनता का कारण दीन प्राकृतिक संसाधन नहीं अपितु उत्पादन और सामाजिक संगठन के पुराने और प्रचलित तरीकों का व्यवहार है।

भारत एक निम्न आय वाली विकासशील अर्थव्यवसथा है इसमें सन्देह नहीं कि भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग दीनता की अवस्था में रह रहा है। भारत में निर्धनता का रोग तीव्र होने के साथ चिरस्थायी भी है। इसके साथ ही भारत को विश्व के विकासशील देशों में एक मानते हुए इसकी मूल विशेषताओं को समझना बहुत महत्वपूर्ण है।

विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण :-

भारत एक निम्न आय वाली विकासशील अर्थव्यवस्था है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग दीनता की अवस्था में रह रहा है। भारत में निर्धनता का रोग तीव्र होने के साथ चिरस्थायी भी है। इसके साथ ही भारत में अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन विद्यमान हैं इसलिए भारत को विश्व के विकासशील देशों में से एक मानते हुए इसकी मूल विशेषताओं को समझना बहुत महत्वपूर्ण है।

1. **निम्न प्रति व्यक्ति आय** – निम्न प्रति व्यक्ति आय अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशिष्टता है। 2013 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 1570 डालर थी। कुछ देशों को छोड़कर भारतवासियों की प्रति व्यक्ति आय विश्व में निम्नतम है। 1960–80 के दौरान विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि दर भारतीय अर्थव्यवस्था के अपेक्षाकृत अधिक थी परन्तु 1990–2013 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में तेज गति से बढ़ी है। फिर भी भारतीय अर्थव्यवस्था से विकसित अर्थव्यवस्था की प्रति व्यक्ति आय में बहुत अधिक है।

तालिका – 01

चुने हुए देशों की प्रति व्यक्ति आय (2013)

देश	विनिमय दर के आधार पर	क्रय शक्ति के आधार पर
स्विट्जरलैण्ड	90680	59610
संयुक्त राज्य अमेरिका	53470	53750
जापान	46330	37550
जर्मनी	47250	45010
इंग्लैण्ड	41680	37970
भारत	1570	5350
चीन	6560	11850

स्रोत : World development Indicators, The world Bank - 2014

तालिका–01 में चुने हुए देशों की प्रति व्यक्ति आय को दो आधार पर विनिमय तथा क्रय शक्ति पर दिखाई गई है। तालिका से स्पष्ट है कि अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय जो औपचारिक विनिमय दर पर भारत की आय का 34 गुना थी, चाहे इसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय के अन्तर कुछ हद तक कम हो गए हैं परन्तु फिर भी विकसित देशों और भारत जैसे विकासशील देश के जीवन स्तर में अन्तर काफी बड़ा एवं महत्वपूर्ण है।

तालिका–02

वर्तमान अमेरिकी डॉलर ट्रिलियन में जीडीपी के सन्दर्भ में दुनिया की शीर्ष अर्थव्यवस्था

क्र.सं.	देश	2017	2018	2019 (E)	2019 में स्थान में परिवर्तन
1	संयुक्त राज्य अमेरिका	19.5	20.6	21.4	.
2	चीन	12.1	13.4	14.1	.
3	जापान	4.9	5.0	5.2	.
4	जर्मनी	3.7	4.0	3.9	.
5	भारत	2.7	2.7	2.9	.
6	यूनाइटेड किंगडम	2.6	2.8	2.7	.
7	फ्रांस	2.6	2.8	2.7	.
8	इटली	2.0	2.1	2.0	.
9	ब्राजील	2.1	1.9	1.8	.
10	कोरिया	1.6	1.7	1.6	.

स्रोत : विश्व आर्थिक आउटलुक : अक्टूबर 2019 व आर्थिक समीक्षा 2020

तालिका–02 में वर्तमान अमेरिका डॉलर ट्रिलियन में जीडीपी के सन्दर्भ में दुनिया की शीर्ष अर्थव्यवस्था को दिखाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि भारत एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था है। भारत की अर्थव्यवस्था में निरन्तर प्रगति हुई है, जो बाकी विकासशील देशों की तुलना में ज्यादा है। 2019 में भारत की अर्थव्यवस्था विकसित देशों के बाद 5वें स्थान पर पहुंच रही है जो यूनाइटेड किंगडम व फ्रांस से भी ज्यादा है।

2. **भारत का व्यावसायिक ढांचा प्राथमिक उत्पादनशील है :–** अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्षण इसका प्राथमिक उत्पादनशील होना है। प्राथमिक उत्पादन का इस प्रसंग में अर्थ उत्पादन के ढांचे में कच्चे माल तथा खाद्य उत्पादन का प्रधान होना है। दूसरे शब्दों में कार्यकारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि में लगा रहता है। भारत में 2012 में कार्यकारी जनसंख्या का 51.1 प्रतिशत कृषि में लगा हुआ था और राष्ट्रीय आय में इसका योगदान लगभग 14 प्रतिशत था। एशिया, अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों में 66 प्रतिशत से लेकर लगभग 80 प्रतिशत से कुछ अधिक जनसंख्या कृषि से अपनी जीविका अर्जित करती है और बहुत से लेटिन अमेरिकी देशों में दो तिहाई से तीन चौथाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है जबकि विकसित देशों की कृषिरत जनसंख्या का अनुपात विकासशील देशों के कृषिरत जनसंख्या के अनुपात से कम है।

3. **भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है :–** जन्म और मृत्यु दर की ऊंची दर अल्पविकसित देश की मुख्य समस्या है जबकि किसी देश की अर्थव्यवस्था में जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों ऊंचे

होते हैं तो इस कारण जनसंख्या की वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है तो इस कारण जनसंख्या की वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है किन्तु स्वास्थ्य सुविधाओं और उत्तम सफाई व्यवस्था के प्रसार और विरोधात्मक तथा उपचारात्मक औषधियों के प्रयोग के कारण मृत्यु दर कम होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि की दर बढ़ जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 1941–50 के दौरान जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग 1.31 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी किन्तु 1981–2001 की अवधि में यह दर 1.93 प्रतिशत हो गई। हालांकि 2001 से 2011 के दौरान भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर कम होकर 1.64 प्रतिशत हो गयी।

जनसंख्या की वृद्धि दर की तीव्रता के कारण विकास दर उन्नत करने की आवश्यकता पड़ती है ताकि जनता का पहले सा जीवन स्तर बनाये रखा जा सके।

4. **भारतीय अर्थव्यवस्था पूंजी के अभाव से ग्रस्त है :–** भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकसित का एक अन्य मूल कारण पूंजी का अभाव है जो दो रूपों में प्रकट होती है– प्रथम प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूंजी की निम्न मात्रा और द्वितीय पूंजी निर्माण की प्रचलित निम्न दर। अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूंजी की कमी का महत्वपूर्ण सूचक बिजली का प्रति व्यक्ति उपभोग है।

तालिका–03

सकल पूंजी निर्माण और संकल देशीय बचत

(सकल देशीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप में)

देश	सकल पूंजी निर्माण		सकल देशीय उत्पादन	
	1990	2013	1990	2013
अमेरिका	18	19.8	16	16.8
इंग्लैण्ड	20	17.0	18	15.1
जापान	33	21.1	34	18.3
जर्मनी	24	19.0	24	24.8
चीन	35	49.3	38	51.8
भारत	24	32.5	23	29.8

स्रोत : World Bank - World development Indicators

तालिका 03 में कुल पूंजी निर्माण के आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि विकसित देशों की तुलना में अल्प विकसित देशों में कुल पूंजी निर्माण कम है। प्रोफेसर कोलिन क्लार्क के अनुसार यदि किसी देश की जनसंख्या एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही हो तो उसे अपने वर्तमान जीवन स्तर को कायम रखने के लिए 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता पड़ेगी। भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या की वृद्धि दर 1.5 प्रतिशत से अधिक है। 2000–2005 के दौरान बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अतिरिक्त भार को सम्भालने के लिए लगभग 16 प्रतिशत तक पूंजी निर्माण की आवश्यकता है। इस प्रकार भारत जैसे निर्धन देश को मूख्य ह्रास की पूर्ति और पूर्ववत् जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए 14 प्रतिशत तक पूंजी निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। अतः आर्थिक विकास के लिए कुल पूंजी निर्माण की दर को और अधिक ऊंचा उठाना आवश्यक है ताकि जनता के जीवन स्तर को उन्नत किया जा सके। बढ़ती हुई जनसंख्या के सन्दर्भ में चाहे

वर्तमान पूंजी निर्माण दर काफी ऊंची है पर यह पर्याप्त नहीं।

5. भारतीय अर्थव्यवस्था में चिरकाल से चली आ रही बेरोजगारी और अल्प रोजगार की विद्यमानता :- भारत में श्रम प्रचुर तत्व होता है परिणामतः समस्त कार्यकारी जनसंख्या को लाभकारी रोजगार दिलाना बहुत कठिन होता है। विकसित देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीक होती है और समर्थ मांग के अभाव में ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है। अल्पविकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप संरचनात्मक होता है तथा इसका कारण पूंजी की कमी होना है। अर्थव्यवस्था अपने उद्योगों का इतना विस्तार करने के लिए कि उनमें सम्पूर्ण श्रम शक्ति खपाई जा सके पर्याप्त पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती है।

11वीं योजना के आरम्भ (अर्थात् 2004–05) में कुल श्रम शक्ति का 8.3 प्रतिशत दैनिक स्थिति बेरोजगारी के आधार पर बेरोजगार थे। इसमें खुली बेरोजगारी और अल्प बेरोजगार प्राप्त दोनों का समावेश है। इस प्रकार 350 लाख बेरोजगार व्यक्तियों की प्रत्याशा थी।

6. औसत भारतीय का नीचा जीवन स्तर, भारत में अल्प विकास का विशेष लक्षण :- भारत में अधिकतर जनता को सन्तुलित भोजन प्राप्त नहीं होता है। इसकी अभिव्यक्ति कैलोरी तथा प्रोटीन के निम्न उपभोग में मिलती है, जहां अधिकतम विकसित देशों में खाद्य का औसत कैलोरी उपयोग 3400 से अधिक है वहां भारत में 2100 कैलोरी के न्यूनतम स्तर से थोड़ा से अधिक है। इसलिए इस बात में भी बहुत सन्देह है कि गरीब जनता 2100 कैलोरी का न्यूनतम उपभोग भी प्राप्त नहीं कर पाती है। जनता के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाला एक और महत्वपूर्ण कारण है कि भारतीय भोजन अनाथ प्रधान है इसके विरूद्ध विकसित देशों में लोगों के भोजन में पुष्टिकर पदार्थों की अधिक मात्रा होती है। उन्नत देशों की तुलना में प्रोटीन का उपभोग भी लगभग आधे से कम ही है।

तालिका– 04

विकसित देशों व भारत के रहन–सहन के सामाजिक सूचक

देश	प्रति व्यक्ति चर्बी (ग्राम)	दैनिक उपभोग प्रोटीन (ग्राम)	प्रत्येक 1000 जनसंख्या के लिए		
			कैलोरी	टेलीविजन	डॉक्टर
भारत	45	59	2496	69	0.4
चीन	71	77	2897	272	2.0
जापान	83	96	2932	707	7.3
संयुक्त राज्य अमेरिका	143	112	3699	847	2.5
इंग्लैण्ड	141	93	3276	695	1.5

स्रोत : मानव संसाधन रिपोर्ट (1999–2000)

अल्पविकसित की अभिव्यक्ति कई सामाजिक सूचकों द्वारा होती है। अर्थात् प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग, प्रति हजार जनसंख्या के लिए डॉक्टर, मोटर–गाड़ियों, टेलीविजन या टीवी सेटों की मात्रा आदि। तालिका से स्पष्ट है कि भारत रहन–सहन के स्तर के सूचकों की दृष्टि से विकसित देशों से बहुत पीछे है।

निष्कर्ष :-

एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में पिछले पांच दशकों के विकास के परिणामस्वरूप भारत अपनी

सकल देशीय उत्पादन की विकास दर जो 1950–51 से 1970–71 के दौरान 3.5 प्रतिशत थी जिसे बढ़ा कर 2000–01 से 2014–15 के दौरान 7 प्रतिशत तक पहुंचा सके हैं। यह अपने गरीबी के स्तर को 1960–61 में 54 प्रतिशत था कम करके 2004–05 में 37.2 प्रतिशत तक ले आया है तो भी यह बहुत कम है। यह अपने पूंजी निर्माण की दर जो 1960–61 में सकल देशीय उत्पादन का 10 प्रतिशत थी बढ़ाकर 2015–16 तक 34.2 प्रतिशत तक पहुंच गया है। चाहे भारतीय अर्थव्यवस्था ने बहुत से क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है परन्तु इसे गरीबी दूर करने, कुपोषण पर नियन्त्रण करने और अपने समग्र जनसंख्या को आवास तथा सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने में मीलों का सफर तय करना अभी बाकी है। वर्ष 2019 में वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए एक कठिन वर्ष था जहां वर्ष 2009 के वैश्विक वितीय संकट के बाद विश्व की उत्पादन वृद्धि दर 2.9 प्रतिशत की अपनी सबसे मन्द गति पर प्राक्कलित की गई जो कि 2018 में 3.6 प्रतिशत तथा 2017 में 3.8 प्रतिशत की नियन्त्रण दर से और नीचे गई है।

इसी के साथ वर्तमान में कोरोना वायरस के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा है तथा भारत की विकास दर अपने निचले स्तर पर पहुंच गई है तथा लाखों लोगों के रोजगार चले गये हैं। इसलिए हमें बहुत सफर तय करना अभी शेष है।

निवेश बढ़ाने के लिए विशेष रूप से राष्ट्रीय अवसंरचना रूपरेखा के तहत अमल में लाए गए महत्वपूर्ण उपायों से वर्ष 2019–20 के लिए 5 प्रतिशत विकास दर की सम्भावना व्यक्त है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था से कम है परन्तु बहुत तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था है।

सन्दर्भ :–

1. आर्थिक समीक्षा 2015–16, 2019–20, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, नये केन्द्रीय बजट 2019–20
3. आम बजट 2020, वित्त विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. संजीव वर्मा – ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', यूनिक दिल्ली 2018
5. दत्त, महाजन – ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली 2018
6. पुरी, मिश्र ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' हिमालय पब्लिकेशन हाउस 2016
7. The Economic Times, बिजनेस स्टैंडर्ड, राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, नव भारत टाइम्स।

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

वर्तमान में **डॉ. बिन्दु भसीन** (सह आचार्य) राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर के इतिहास विभाग में कार्यरत हैं। राजस्थान के इतिहास एवं कला संस्कृति में गहरी रूचि होने के कारण ही आपने इतिहास विषय के शिक्षण कार्य का चयन किया। 1997 से राजकीय सेवा प्राप्त कर शैक्षणिक कार्य में संलग्न है। विभिन्न शैक्षणिक कार्यशालाओं में आप विषय विशेषज्ञ के रूप में अपनी सेवाएँ दे चुकी हैं। कार्यानुभव में 10 माह तक राजकीय महाविद्यालय लूणकरणसर में प्राचार्य पद पर भी रह कर प्रशासनिक निपूर्णता का भी सदुपयोग छात्र हित में किया हैं। आपके निर्देशन में 6 से अधिक लघुशोध कार्य एवं शोध पत्रों का कार्य विद्यार्थियों ने किया है। आपके अनेक शोध पत्र जो भारत एवं राजस्थान की ऐतिहासिक गौरवगाथा का वर्णन करते है, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

वर्तमान में माँ करणी बी. एड़ महाविद्यालय, नाल, बीकानेर में प्राचार्या पद पर कार्यरत **डॉ. मुदिता पोपली** पिछले 17 वर्षो से अध्ययन अध्यापन क्षेत्र में सक्रिय है। अंग्रेजी, हिंदी, शिक्षा एवं पत्रकारिता में स्नाकोत्तर उपाधि अर्जित कर चुकी डॉ. मुदिता शैक्षणिक अनुभव के साथ साथ स्वतंत्र पत्रकार के रूप में भी लेखन क्षेत्र में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती रही है। इन्होने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों में सहभागिता एवं पत्र वाचन किया है। इसके साथ ही विभिन्न विश्वविद्यालय में शोध कार्य में डॉ. मुदिता सह शोध पर्यवेक्षक के रूप में भी निरंतर सेवाएँ दे रही है। शोध पत्रों के अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में विभिन्न सामाजिक शैक्षिक विषयों पर इनके आलेख लगातार प्रकाशित होते रहते है।

डॉ. अशोक कुमार व्यास (सहायक प्राध्यापक), वाणिज्य विभाग, बिनानी कन्या महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) में कार्यरत, अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में 12 वर्षों से निरन्तर कार्य कर रहे है। साथ ही ज्योतिष एवं दर्शन शास्त्र में विशेष रूचि रखकर समाज कल्याण के लिए प्रयत्नशील है। 20 से अधिक शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित, आर्थिक चिंतन एवं ज्योतिष पर भी अनेकों आलेख समाचार पत्रों में भी प्रकाशित, 10 वर्षो से पूष्टि मीमांसा पत्रिका के सह सम्पादक के रूप में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र से जुडें है। पूर्व में प्रकाशित पुस्तक : व्यावसायिक सांख्यिकी, ग्रामीण विकास में गैर सरकारी संगठन, शीघ्र प्रकाशित पुस्तकें : प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र,'' ''आत्मनिर्भर भारत में महिलाओं का योगदान,'' ''व्यावसायिक अनुसंधान'' ''कृषि सांख्यिकी,'' ''अष्टादश पुराण में ज्योतिष,'' ''श्रीकृष्ण का अर्थशास्त्र'' कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्र वाचन का श्रेय प्राप्त है। बोहल शोध मंजूषा (पीयर रिव्यूड जर्नल) पत्रिका के 3 विशेषांक में सह सम्पादक के रूप में कार्य, जिला स्तर पर शिक्षा मंत्री राजस्थान सरकार **डॉ बी.डी. कल्ला** एवं जिलाधीश महोदय द्वारा ग्रामीण विकास पर किये शोध कार्यों के लिए 15 अगस्त 2022 को सम्मानित होने का श्रेय प्राप्त, गीना देवी शोधश्री सम्मान, पुष्करणा गौरव सम्मान, राष्ट्र गौरव सम्मान, श्रेष्ठ अध्येता अवॉर्ड से भी सम्मानित।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115